हमारी बा

(उनकी जीवन-कस्तूरी)

लेखिका

वनमाला परीख

सुशीला नय्यर

...न प्रकाशन मंदिर

अहमदाबाद

बा

हमारी बा

(उनकी जीवन-कस्तूरी)

लेखिका

वनमाला परीख

सुशीला नय्यर

अनुवादक

काशिनाथ त्रिवेदी
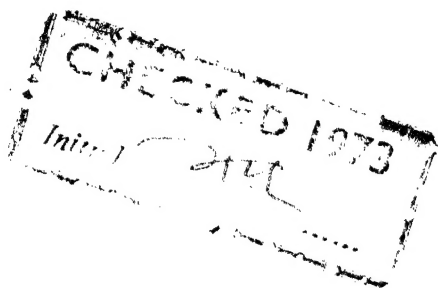
नवजीवन प्रकाशन मंदिर

अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहली बार, प्रत २,२००

मूल्य २)

जनवरी १९४६

पूज्य महादेवकाकाके
चरणोंमें

विषयसूची

दो शब्द

कोचरबमें सत्याग्रह आश्रमकी स्थापना हुई, तभीसे भाई नरहरि परीख उसमें शामिल होनेवालोंमें हैं। इसलिए चिरंजीव वनमालाको जो मिला है, सो आश्रममें ही मिला है। वह सरकारी मदरसेसे और वहाँ मिलनेवाली शिक्षासे अछूती रही हैं, इसलिए यह माना जा सकता है कि वह मजदूरी करना जानती हैं। लेकिन उन्होंने तो कस्तूरबाके जीवन-वृत्तान्तकी सामग्री इकट्ठा करनेका साहस किया है। इसमें उन्होंने दूसरोंकी मदद ली है। यह लिखते समय मैंने दूसरे लेखोंको देखा नहीं है। चिरंजीव वनमालाका आग्रह था कि उनके अपने लेखको मैं देख जाऊँ। बेचारी लिखने तो बैठीं कस्तूरबाके बारेमें, लेकिन बचपनमें मेरे साथ दौड़ी और खेली थीं, सो मुझे कैसे भूलतीं? देखता हूँ कि उन्होंने इधर-उधरसे बहुतसी अप्राप्य हक़ीक़त इकट्ठी की है और उसे ठीक-ठीक सजाया है। उनकी भाषा घरेलू और सादी है। मुझे उसमें कहीं भी बनावट नहीं दिखाई दी। चिरंजीव वनमालाका यह पहला प्रयत्न कुल मिलाकर सफल हुआ है या निष्फल, इसका फैसला तो पाठकोंको ही करना होगा।

चिरंजीव प्यारेलालकी बहन चिरंजीव सुशीलाबहनने जेलमें उन्हें मिले हुए बाके अनुभव लिखे थे। चिरंजीव वनमालाने सोचा था कि उनमेंसे कुछ वह अपने लेखमें ले लेंगी। लेकिन पढ़ने पर उन्हें लगा कि बहन सुशीलाकी लिखावटमें एक सहज कला है। उसका अंगभंग करनेकी उनकी हिम्मत न हुई। मूल हिन्दीमें है। इस संग्रहमें उसका पूरा

गुजराती दिया गया है। बहन सुशीलाने डॉक्टरीकी आख़िरी डिग्री हासिल की है। साथ ही उनको गानेका, बजानेका, चित्र निकालनेका और साहित्यका शौक़ है। वह सार्वजनिक जीवनमें दिलचस्पी लेती हैं। स्वर्गीय महादेवने उनके इस गुणको देखा था और इसे बढ़ानेमें ख़ूब दिलचस्पी ली थी। लेकिन वह तो सबको छोड़कर चले गये। यह जीवन पूरा किया। पाठक चि० सुशीलाके लेखको इस दृष्टिसे देखें।

यह तो हुआ लेखिकाओंके बारेमें।

लेकिन दोनों कहती हैं कि मैं बाके विषयमें कुछ न कहूँ, तब तक यह पुस्तक अधूरी ही मानी जायगी। जब मैं ही इस संग्रहका परिचय दे रहा हूँ, तो मेरे लिए बाके विषयमें कुछ लिख देना शायद उचित माना जायगा। समय मिला तो विस्तारसे लिखनेका मेरा इरादा है। यहाँ तो जिस कारणसे बाने जनतामें इतना सारा आकर्षण पैदा किया था, उसकी जड़को मैं ढूँढ़ सकूँ, तो ढूँढ़ूँ। बाका जबरदस्त गुण सहज अपनी इच्छासे मुझमें समा जानेका था। यह कुछ मेरे आग्रहसे नहीं हुआ था। लेकिन समय पाकर बाके अन्दर ही इस गुणका विकास हो गया था। मैं नहीं जानता था कि बामें यह गुण छिपा हुआ था। मेरे शुरू-शुरूके अनुभवके अनुसार बा बहुत हठीली थीं। मेरे दबाव डालने पर भी वह अपना चाहा ही करतीं। इसके कारण हमारे बीच थोड़े समयकी या लम्बी कड़ुवाहट भी रहती, लेकिन जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे बा खिलती गईं, और पुख़्ता विचारोंके साथ मुझमें यानी मेरे काममें समाती गईं। जैसे दिन बीतते गये, मुझमें और मेरे काममें—सेवामें—भेद न रह गया। बा धीमे-धीमे उसमें तदाकार होने लगीं। शायद हिन्दुस्तानकी भूमिको

यह गुण अधिक-से-अधिक प्रिय है। कुछ भी हो, मुझे तो बाकी उक्त भावनाका यह मुख्य कारण मालूम होता है।

बामें यह गुण पराकाष्ठाको पहुँचा, इसका कारण हमारा ब्रह्मचर्य था। मेरी अपेक्षा बाके लिए वह बहुत ज्यादा स्वाभाविक सिद्ध हुआ। शुरूमें बाको इसका कोई ज्ञान भी न था। मैंने विचार किया और बाने उसको उठाकर अपना बना लिया। परिणाम-स्वरूप हमारा सम्बन्ध सच्चे मित्रका बना। मेरे साथ रहनेमें बाके लिए सन् १९०६ से, असलमें सन् १९०१ से, मेरे काममें शरीक हो जानेके सिवा या उससे भिन्न और कुछ रह ही नहीं गया था। वह अलग रह नहीं सकती थीं। अलग रहनेमें उन्हें कोई दिक़्क़त न होती, लेकिन उन्होंने मित्र बनने पर भी स्त्रीके नाते और पत्नीके नाते मेरे काममें समा जानेमें ही अपना धर्म माना। इसमें बाने मेरी निजी सेवाको अनिवार्य स्थान दिया। इसलिए मरते तक उन्होंने मेरी सुविधाकी देखरेखका काम छोड़ा ही नहीं।

सेवाग्राम, १८-२-'४५

मोहनदास करमचन्द गांधी

भाग पहला
जीवनकी कहानी

१
जन्म और विवाह

काठियावाड़के पोरबन्दर नगरमें सन् १८६९के अप्रैल महीनेमें बाका जन्म हुआ था। बापूजीसे बा क़रीब छह महीने बड़ी थीं। पिताका नाम गोकुलदास मकनजी था और माताका नाम व्रजकुँवर। कुल पाँच भाई-बहनोंमें तीन भाई और दो बहनें थीं। इनमेंसे एक बहन और एक भाई बचपनमें ही गुज़र गये थे। बड़े भाई जवानीमें चल बसे। फिर एक बा और एक उनके छोटे भाई माधवदास दो ही रह गये। माधवदास मामा सबसे छोटे और बा तीसरी थीं।

उस ज़मानेमें, और सो भी काठियावाड़में, लड़कियोंको कोई पढ़ाता नहीं था। इसलिए बचपनमें बा बिलकुल निरक्षर थीं। लेकिन उनको घरके काम-काजकी अच्छी तालीम मिली थी और पिताके संस्कारी वैष्णव परिवारके कुछ उत्तम गुण उन्हें विरासतमें मिले थे। धार्मिक वातावरणमें एक खास संकल्प-बल और संयमका विकास होता है, और ये दोनों बातें बामें ठेठ बचपनसे ही पाई जाती थीं।

बाके पिताजी पोरबन्दरमें व्यापारी थे। आर्थिक स्थिति साधारण ही थी। पोरबन्दर राज्यकी दीवानगीरी करनेवाले गांधी परिवारके साथ उनका अच्छा सम्बन्ध था। इसलिए उन्होंने सात सालकी उमरमें ६॥ सालके बापूके साथ बाकी सगाई कर दी और तेरह सालकी उमरमें उनका विवाह हुआ।

आज हमको इस तरहके बाल-विवाहकी बात विचित्र और विनोद-पूर्ण मालूम होती है । बापूजीने भी आत्मकथामें उसका रोचक चित्र खींचा है । वे लिखते हैं : "मुझे याद नहीं पड़ता कि सगाईके समय मुझसे कुछ कहा गया था । इसी तरह ब्याहके वक़्त भी कुछ पूछा नहीं गया । सिर्फ़ तैयारियोंसे ही पता चला कि ब्याह होने वाले हैं । उस समय तो अच्छे-अच्छे कपड़े पहनेंगे, बाजे बजेंगे, जुलूस निकलेंगे, अच्छा–अच्छा खानेको मिलेगा, एक नई लड़कीके साथ हँसी-खेल करेंगे, वग़ैरा इच्छाओंके सिवा और कोई विशेष भाव मेरे मनमें रहा हो, ऐसा याद नहीं आता ।" ब्याहके अवसरका वर्णन करते हुए बापू लिखते हैं : "मण्डपमें बैठे, फेरे फिरे, कसार खाया–खिलाया और वर-वधू तभीसे साथमें रहने लगे । दो अबोध बालक बिना जाने, बिना समझे, संसार–सागरमें कूद पड़े . . . । कुछ ऐसा ख़याल होता है कि हम दोनों एक-दूसरेसे डरते थे, एक-दूसरेसे शरमाते तो थे ही । बातें किस तरह करना, क्या करना, सो मैं क्या जानूँ ? धीरे-धीरे एक-दूसरेको पहचानने लगे, बोलने लगे ।"

उस समयकी अपनी भावनाओंका और बाके स्वभावका बापू यों वर्णन करते हैं : "मुझे अपनी पत्नीको आदर्श स्त्री बनाना था । वह साफ़ बने, साफ़ रहे, मैं जो सीखूँ, सीखे; जो पढ़ूँ, पढ़े; और हम दोनों एक-दूसरेमें ओतप्रोत रहें, यह मेरी भावना थी । मुझे याद नहीं पड़ता कि कस्तूरबाईकी भी यह भावना थी । वह निरक्षर थीं, स्वभावकी सीधी, स्वतंत्र, मेहनती और मेरे साथ कम बोलनेवाली । उन्हें अपने अज्ञानसे असंतोष न था । मैंने अपने बचपनमें उनको कभी यह इच्छा करते हुए नहीं पाया कि जिस तरह मैं पढ़ता हूँ, उस तरह वह ख़ुद भी पढ़ें तो अच्छा हो . . . । उन्हें पढ़ानेकी मेरी बड़ी इच्छा थी । लेकिन उसमें दो कठिनाइयाँ थीं । एक तो बाकी अपनी पढ़नेकी भूख खुली नहीं थी, दूसरे, बा अनुकूल हो जातीं, तो भी उस ज़मानेके भरे–पूरे परिवारमें इस इच्छाको पूरा करना आसान नहीं था ।"

बापूजी ख़ुद उस ज़मानेका वर्णन यों करते हैं : "एक तो मुझे ज़बर्दस्ती पढ़ाना था, और सो भी रातके एकान्तमें ही हो सकता था ।

घरके बड़े-बूढ़ोंके सामने पत्नीकी तरफ़ देख तक नहीं सकते थे। बातें तो हो ही कैसे सकती थीं? उस समय काठियावाड़में घूँघट निकालनेका निरर्थक और जंगली रिवाज था। आज भी बहुत-कुछ मौजूद है। इसलिए पढ़ानेके अवसर भी मेरे लिए प्रतिकूल थे। चुनाँचे, मुझे क़बूल करना चाहिये कि जवानीमें मैंने बाको पढ़ानेकी जितनी कोशिशें कीं, वे सब क़रीब-क़रीब बेकार गईं। जब मैं विषयकी नींदसे जागा तब तो सार्वजनिक जीवनमें पड़ चुका था, इसलिए मेरी स्थिति ऐसी नहीं रह गई थी कि मैं ज़्यादा समय दे सकूँ। शिक्षकके ज़रिये पढ़ानेकी मेरी कोशिशें भी बेकार हुईं। नतीजा यह हुआ कि आज कस्तूरबाई मुश्किलसे पत्र लिख सकती हैं और मामूली गुजराती समझ लेती हैं। मैं मानता हूँ कि अगर मेरा प्रेम विषयसे दूषित न होता, तो आज वह विदुषी स्त्री होतीं। उनके पढ़नेके आलस्यको मैं जीत सकता।"

२

बाका बाल-गृहस्थाश्रम

इस प्रकार बचपनमें ही बा और बापूजीके गृहस्थाश्रमका आरम्भ हुआ। बाल-वयके इन पति-पत्नीकी गृहस्थीका और नादानीसे भरे झगड़ोंका वर्णन बापूजीने बहुत ही मार्मिक शब्दोंमें किया है। उससे हम देख सकते हैं कि जो भी बा निरक्षर थीं, तो भी ऐसी नहीं थीं कि अपनी स्वतन्त्रताको न समझें। वे लम्बी बहस या दलील नहीं कर पाती थीं, लेकिन अपने मनकी करनेमें वे किसीके दाबे दबती नहीं थीं। बापूजी लिखते हैं:

"जिन दिनों शादी हुई, उन दिनों निबन्धोंकी छोटी-छोटी पुस्तिकायें निकला करती थीं। उनमें दाम्पत्य प्रेम, किफ़ायतसारी, बाल-विवाह वग़ैरा विषयोंकी चर्चा रहती थी। उनमेंसे कुछ निबन्ध मेरे हाथ पड़ जाते और मैं उन्हें पढ़ जाता। यह आदत तो थी ही कि पढ़ना, जो पसन्द न आये उसे भूल जाना और जो पसन्द पड़े, उस

पर अमल करना। पढ़ा था कि एकपत्नीव्रत पालना पतिका धर्म है, और यह बात हृदयमें बसी रही।

"लेकिन इस सद्विचारका एक बुरा परिणाम हुआ। अगर मुझे एकपत्नीव्रतका पालन करना है, तो पत्नीको एकपतिव्रतका पालन करना चाहिये। इस विचारकी वजहसे मैं ईर्ष्यालु पति बन गया। 'पालना चाहिये,' परसे मैं 'पलवाना चाहिये' के विचार पर पहुँच गया और अगर पलवाना है, तो पत्नीके उपर निगरानी रखनी चाहिये। मुझे पत्नीकी पवित्रता पर शक करनेका कोई कारण न था, लेकिन ईर्ष्या कब कारण देखने बैठती है? मुझे यह जानना चाहिये कि मेरी स्त्री कहाँ जाती है, इसलिए मेरी इजाज़तके बिना वह कहीं जा ही नहीं सकती। यह चीज़ हमारे बीच दुःखद झगड़ेका कारण बन गई। इजाज़तके बिना कहीं न जा सकना तो एक तरहकी क़ैद हुई। लेकिन कस्तूरबाई इस तरहकी क़ैद सहन करनेवाली थीं ही नहीं। जहाँ जाना चाहतीं, वहाँ मुझसे बिना पूछे ज़रूर जातीं। जितना ही मैं दबाता, उतनी ही ज्यादा वह आज़ादी लेतीं और मैं ज्यादा चिढ़ता।"

बापू ईर्ष्यालु और शंकाशील (वहमी) पति थे। इसके खिलाफ़ बा बराबर आज़ादी लेती ही रहीं, और फिर भी बापूके वहम और उनकी ईर्ष्याको उन्होंने सह लिया। ऐसा न किया होता, तो गृहस्थी वहीं खतम हो जाती। हिन्दू गृहस्थाश्रमोंमें बालक पति-पत्नीके बीच अक्सर ऐसे कलह होते हैं, लेकिन उनमें कुल मिलाकर स्त्रियाँ ही ज्यादा समझदारी, धीरज और सहनशीलताका परिचय देती हैं। यही वजह है कि गृहस्थीकी नैया टकरा कर चूर होनेसे बच जाती है। फिर तो दोनों सयाने हो जाते हैं, और गृहस्थी सरलतासे चलती है। इस प्रकार उसको सरल और सफल बनानेमें अधिक हिस्सा स्त्रियोंका होता है। ऐसे समय स्त्री ग़म खाती है और सहन कर लेती है। पुरुषको तो उस वक़्त अपनी सत्ता जमाने, स्वामित्व सिद्ध करनेका जोश चढ़ा रहता है। लेकिन स्त्रीकी समझदारीके कारण गृहस्थी निभती है।

बापूजी आत्मकथा में लिखते हैं: "कस्तूरबाईने जो आज़ादी ली थी, उसे मैं निर्दोष मानता हूँ। एक बालिका, जिसके मनमें पाप नहीं,

वह देवदर्शनको जानेके लिए या किसीसे मिलने जानेके बारेमें ऐसा दबाव क्यों सहन करे? अगर मैं उस पर दबाव रखता हूँ, तो वह मुझ पर क्यों न रखे? किन्तु यह तो अब समझमें आता है।"

लेकिन ऐसा नहीं हुआ कि बा हरबार चुप ही रह गई हों। बापूके गर्विष्ठ (घमण्डी) पति होते हुए भी जब ज़रूरत मालूम हुई, बा उन्हें चेतावनी देनेमें पीछे नहीं रहीं। बापूजीने लिखा है कि एक बुरे मित्रकी सोहबतके सिलसिलेमें मेरी माताजी, बड़े भाई और मेरी पत्नीने मुझको चेताया था। उस मित्रकी सोहबतमें रहनेके जिस खतरेको बापूजी नहीं देख सके थे, उसे बा अपनी सहज बुद्धिसे ताड़ गई थीं और खास बात यह थी कि ऐसा करके वह चुप नहीं बैठ गईं। अनपढ़ और कम उम्रकी बामें उस समय भी विवेकशक्ति और स्वतन्त्र विचारशक्ति थी। अपने लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है, सो तो बा समझती ही थीं। इसके सिवा, उन्हें इस बातका भी खयाल था कि अपने पतिके लिए क्या अच्छा है और क्या खतरनाक है। इसीलिए "पत्नीकी चेतावनीको मैं गर्विष्ठ पति क्यों मानने लगा!" — इन शब्दोंमें अपने दुःखको व्यक्त करनेके साथ ही साथ बापूजीने बाकी समझदारीको भी स्वीकार किया है।

* * *

इस समयके बाके जीवनकी दूसरी घटनाओंको मैं एकत्र नहीं कर सकी। सन् १८८८में बापूजीके विलायत जानेसे पहले बाके एक बालक जन्मा था, जो दो या चार ही दिनमें मर गया और उसके बाद हरिलालभाईका जन्म हुआ। उस समय उनकी उमर क़रीब १९ सालकी थी। बापूजीने लिखा है कि विलायत जानेके समय उन्होंने सबसे बिदा वग़ैरा माँगी थी, लेकिन बासे बिदा माँगनेके बारेमें और उनकी भावनाके बारेमें कहीं कुछ भी नहीं लिखा है। अलबत्ता, बाको यह अच्छा तो नहीं लगा होगा। बहुत-बहुत तो बाने इतना पूछा होगा कि वापस कब आयँगे और बापूने प्रेमपूर्वक कुछ आश्वासन दिया होगा। बापूजी विलायतमें थे, तभी उनकी माताजी यानी बाकी सास गुज़र गईं। बाकी जेठानी घंटों पूजामें रहती थीं। उस समय उनके बच्चोंको नहलानेधुलाने और

सँभालनेका सारा काम बा ही दिन-रात किया करती थीं। रसोईघर तो समूचा बाके ही ज़िम्मे था। बाने सासके जैसी ही जेठानीकी भी सेवा की है।

विलायतसे वापस आनेके बाद भी बापूजी अपने ईर्ष्यालु स्वभावको छोड़ नहीं पाये थे। वे लिखते हैं: "हर मामलेमें मेरी नुक्ताचीनी और मेरा वहम क़ायम रहा। इसकी वजहसे मैं अपनी चाही हुई मुरादोंको पूरा नहीं कर पाया। मैंने सोचा था कि मेरी पत्नीको अक्षरज्ञान होना ही चाहिए और वह मैं उसे दूँगा। लेकिन मेरी विषयासक्तिने मुझे वह काम करने ही न दिया, और अपनी ख़ामीका ग़ुस्सा मैंने पत्नी पर उतारा। एक वक़्त तो ऐसा आया कि मैंने उसे उसके मायके ही भेज दिया और बहुत ज़्यादा तकलीफ़ देनेके बाद फिर साथ रहने देना क़बूल किया। बादमें मैं देख सका कि इसमें मेरी निरी नादानी ही थी।"

इस घटनाके बारेमें बापूजीसे ज़्यादा जानकारी प्राप्त की जा सकती थी। लेकिन उनकी बीमारी और दूसरे महत्त्वके कामोंमें उनकी व्यस्तताके कारण मैं इस सम्बन्धका ब्यौरा उनसे प्राप्त नहीं कर सकी।

हिन्दुस्तानमें बापूजीकी बैरिस्टरी अच्छी तरह नहीं चली और उन्हें एक मुकदमेके सिलसिलेमें अफ्रीका जाना पड़ा। उस समयकी अपनी और बाकी भावनाकी थोड़ी झाँकी बापूजीने हमें दी है। वे लिखते हैं: "विलायत जाते समय जो वियोग-दुःख हुआ था, वह दक्षिण अफ्रीका जाते वक़्त नहीं हुआ। माता तो चली गई थीं, इसलिए इस बार सिर्फ़ पत्नीके साथका वियोग दुःखदायी था। विलायतसे लौटनेके बाद दूसरे एक बालककी प्राप्ति हुई थी। हमारे बीचके प्रेममें अभी विषय तो था ही, फिर भी उसमें निर्मलता आने लगी थी। मेरे विलायतसे लौट आनेके बाद हम बहुत कम समय एक साथ रहे थे। और चूँकि मैं स्वयं, कैसा भी क्यों न होऊँ, एक शिक्षक बना था, और मैंने अपनी पत्नीमें कुछ सुधार कराये थे, इसलिए उन्हें क़ायम रखनेके ख़यालसे भी हमारे एक साथ रहनेकी ज़रूरत हम दोनोंको मालूम होती थी। लेकिन अफ्रीका मुझे खींच रहा था। उसने वियोगको सरल

बना दिया। "'एक सालके बाद तो हम मिलेंगे ही न?' — इस प्रकार ढाढ़स बँधाकर मैंने राजकोट छोड़ा और बम्बई पहुँचा।" लेकिन बापूजी तो दक्षिण अफ्रीकामें एकके बदले तीन साल रह गये। बाके ये साल भी राजकोट ही में बीते। १८९६ में बापूजी छह महीनोंके लिए अपने परिवारको ले जानेके इरादेसे देशमें आये। लेकिन छह महीने पूरे होनेसे पहले ही अफ्रीकासे फ़ौरन वापस आनेका तार आया और बापूजी, बाको अपने दो बालकोंको और अपने स्वर्गीय बहनोईके एक पुत्रको लेकर अफ्रीकाके लिए रवाना हो गये।

३

आदर्श सहधर्मचारिणी

बापूजीने एक जगह लिखा है: "अगर मैं अपनी पत्नीके बारेमें अपने प्रेम और अपनी भावनाका वर्णन कर सकूँ, तो हिन्दूधर्मके बारेमें अपने प्रेम और अपनी भावनाओंको मैं प्रकट कर सकता हूँ। दुनियाकी दूसरी किसी भी स्त्रीके मुक़ाबले मेरी पत्नी मुझ पर ज़्यादा असर डालती है।"

कहा जा सकता है कि बापूजीको अपने जीवनमें जो भी ऊँचीसे ऊँची चीज़ मिली है, जो भी प्रेरणा प्राप्त हुई है, जो कुछ मार्गदर्शन मिला है, वह जिस तरह हिन्दूधर्मसे मिला है, उसी तरह बासे भी मिला है। इन दोनों जीवनदायी और प्रेरणा पहुँचानेवाले बलोंके बारेमें रहस्यकी बात यह है कि बापू इन दोनोंमेंसे किसी एकको भी पसन्द करने नहीं गये थे। हिन्दूधर्म जन्मके साथ मिला। विलायत जाते समय माताकी इच्छासे एक जैन साधुके सामने ली हुई प्रतिज्ञाओंका वहाँ पूरा-पूरा पालन किया, सो उन प्रतिज्ञाओंके महत्त्वको समझकर नहीं, बल्कि इसलिए किया कि ली हुई प्रतिज्ञाका पालन विकटसे विकट परिस्थितिमें भी करना ही चाहिये। हिन्दूधर्मकी इस भावनाका माँके दूधकी तरह

उन्होंने बचपनसे पान किया था। इसी तरह पत्नीको भी उन्होंने चुना नहीं था। जिस तरह धर्म माता-पिताका मिला उसी तरह पत्नी भी माता पिताने ही ला दी। आत्मकथामें वे कहते हैं: "किसी लड़कीके साथ शादी होनेवाली है, और वह मुझे पसन्द है या नहीं, सो सब कुछ मुझसे पूछा नहीं गया था, बल्कि सारा प्रबन्ध मेरे माता-पिताने ही किया था।"

दूसरी एक रहस्यमय घटना यह है कि अपने जीवनके आरम्भमें इन दोनोंके बारेमें, यानी हिन्दूधर्मके बारेमें और पत्नीके बारेमें, बापू साशंक थे। दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दूधर्मके बारेमें उन्होंने एक मित्रसे कहा है: "जो भी मैं जन्मसे हिन्दू हूँ, फिर भी हिन्दूधर्मके बारेमें बहुत जानता नहीं। दूसरे धर्मोंके बारेमें तो और भी कम जानता हूँ। धर्मके मामलेमें मेरी धारणा क्या है, किस धर्ममें मुझे श्रद्धा है और किस धर्ममें मुझे श्रद्धा रखनी चाहिये, सो मैं कुछ भी नहीं जानता।" जिस तरह बापूने हिन्दूधर्मके पूरे-पूरे महत्त्व और सच्चे रहस्यको जाने बिना धार्मिक जीवनका आरम्भ किया था, उसी तरह पत्नीके महत्त्व और उनके सच्चे गुणोंकी किसी कल्पनाके बिना ही उन्होंने अपने गृहस्थ जीवनका श्रीगणेश किया था। बापूजी ख़ुद ही कहते हैं: "मैं ईर्ष्यालु और वहमी पति था। पत्नी कहाँ जाती है और क्या करती है, इस पर मैं अंकुश रखना चाहता था।"

ऐसा होते हुए भी बापूजीने आख़िर इन दोनोंको समझनेकी ख़ूब कोशिश की। दोनोंको अपनाया और दोनोंकी मददसे अपने जीवनको धन्य किया! हिन्दूधर्मके गहरेसे गहरे रहस्यको ख़ुद खोज निकाला और उसके प्रभावसे स्वयं दुनियाकी एक धार्मिक विभूति बने — सन्त और महात्माके नामसे मशहूर हुए। इसी तरह जैसे-जैसे बाके सच्चे गुणोंको वे समझते गये, वैसे-वैसे अपने गृहस्थ-जीवनको धन्य बनाते गये और बापू सच्चे 'बापू' बने।

बापूजीको तपश्चर्याका शौक़ है। तप और संयमके बड़े-बड़े प्रयोग वे करते ही रहते हैं। जीवन को उन्होंने तपोमय बना दिया है। फिर भी तपस्वीमें जो शुष्क वैराग्य और कर्कशता आ जाती है, सो

उनके जीवन में नहीं आ पाई है। प्रेम और करुणा मूल ही से उनके स्वभावमें रहे हैं। इस प्रेम और करुणाके स्रोतको उनकी तपःपरायणता शायद सुखा डालती, लेकिन यह सोता न सिर्फ़ सूखा ही नहीं, बल्कि बढ़ते तपके साथ ख़ुद भी बढ़ता ही गया है, सो बाका प्रताप समझना चाहिये।

बापूजीके समान उग्र तपस्वीके जीवन पर इस तरहका असर डालना किसी मामूली योग्यताका काम नहीं है। बापूकी तपस्याकी भट्टीके नज़दीक कुछ देरके लिए रहना भी कितना कठिन है, सो तो अनुभवी ही जानते हैं। श्रीमती पोलाक ब्याहके बाद तुरन्त ही बापूजीके एक परिजनके नाते उनके घर ही में रही थीं। वहाँ उनको कितनी कठिनाइयाँ सहनी पड़ी होंगी, इसके बारेमें हमें सहृदय बननेकी सलाह देते हुए श्री एण्ड्रयूज़ लिखते हैं: "ऐसे एक सन्तके साथ, जो हमेशा किसी–न–किसी शारीरिक कष्टको भोगनेका आग्रह रखता हो, जो ज़िद्दी और धुनका पक्का हो, और इतना होने पर भी जिसे प्यार करनेकी मनमें इच्छा होती हो, उसके एक परिजनकी तरह रोज़का बहुत निकटका जीवन बिताना श्रीमती पोलाकके लिए कितना कठिन हुआ होगा?"

श्रीमती पोलाकको तो कुछ महीने या एक-दो साल ही बापूके घरमें रहना पड़ा होगा, और वह भी उन्हें कठिन मालूम हुआ, तो फिर जिनके जीवनका गठबन्धन ही ऐसे 'सन्त'के साथ हुआ हो, उन बाकी क्या हालत हुई होगी, सो सोच लीजिये। अलबत्ता, बाको बहुत-सी मुश्किलोंका सामना करना ही पड़ा होगा। लेकिन उन्होंने उन तमाम मुश्किलोंको गौरवके साथ न सिर्फ़ पार किया है, बल्कि बापूजीको भी उनकी तपश्चर्याके जोशमें ज़रूरतसे ज्यादा कठोर या शुष्क नहीं बनने दिया, बाके जीवनका यही सच्चा रहस्य है। बापू ख़ुद कहते हैं: "हमारे बीच झगड़े तो खूब हुए हैं, लेकिन परिणाम हमेशा शुभ ही रहा है। बाने अपनी अद्भुत सहनशक्तिसे विजय प्राप्त की है।"

दक्षिण अफ्रीकामें बापूजीके जीवनने करवट लेना शुरू किया और सन् १९०४ में तो उन्होंने जीवनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन कर डाला। जीवनके परिवर्तनका उनका आग्रह इतना तीव्र और उत्कट था कि उन

दिनों उनके साथ निभना मुश्किल था । एक दफ़ा गोखलेजीने बापूजीको हँसी-हँसीमें, लेकिन सच ही कहा था : "तुम बड़े ज़ालिम हो । एक ओरसे तुम्हारा प्रेम और दूसरी ओरसे तुम्हारा आग्रह दूसरे पर इतने ज़ोरका असर करते हैं, कि बेचारा तुम्हारी इच्छाके अनुसार चलने और तुम्हें .खुश करनेको मजबूर हो जाता है ।" श्रीमती सरोजिनी नायडू भी बापूजीको अक्सर ज़ालिम ('टायरण्ट') कहतीं और अपने पत्रोंमें उन्हें 'माय डीयर टायरण्ट' (मेरे प्यारे ज़ालिम) लिखा करती थीं । बापूके ऐसे अत्याचारी प्रेममें और जीवनपरिवर्तनकी उत्कट तीव्रतामें बा किस तरह निभी होंगी ? बापूजीके जीवनका प्रवाह त्याग, वैराग्य, संन्यासकी तरफ़ ज़ोरसे बहा जा रहा था । बाने उसको अनुकूल और इष्ट मार्गसे बहने दिया है, उसमें कोई रुकावट नहीं डाली, और फिर भी जहाँ-जहाँ ज़रूरत हुई, वहाँ-वहाँ नम्र सूचनाके रूपमें बाँध बाँध कर, सविनय प्रतिकारके रूपमें इष्ट रुकावटें खड़ी करके, प्रवाहको प्रतिकूल या अनिष्ट दिशामें बहनेसे रोका है और हमेशा योग्य दिशामें रखा है । काव्यप्रकाशके कर्ता मम्मटने कविताके बोध अथवा उपदेशकी कान्ताके उपदेशके साथ तुलना की है । बाने इस उपमाको भलीभाँति चरितार्थ किया है । अपनी नम्रतापूर्ण समझाइश, सौम्य आग्रह और निरुपाय हो जाने पर आँसुओंके ज़रिये बाने बापूजीको कठोर बनने, कर्कश बनने और ज़ालिम बननेसे रोका है । उनको प्रेमल और सरस बनाये रखा है ।

इससे कोई यह न समझे कि बाने बापूजीको जीवनमें आगे बढ़नेसे रोका है । बापूजी कहते हैं : "बामें एक गुण बहुत बड़ी मात्रामें है, जो दूसरी बहुतसी हिन्दू स्त्रियोंमें न्यूनाधिक मात्रामें पाया जाता है । इच्छासे हो या अनिच्छासे, ज्ञानसे हो या अज्ञानसे, मेरे पीछे-पीछे चलनेमें उन्होंने अपने जीवनकी सार्थकता मानी है, और शुद्ध जीवन बितानेके मेरे प्रयत्नमें मुझे कभी रोका नहीं । इसके कारण, जो भी हमारी बुद्धिशक्तिमें बहुत अन्तर है, तो भी मुझे यह लगा है कि हमारा जीवन सन्तोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी है ।" बापूजीके धार्मिक महाव्रतोंमें और देशसेवाके महाव्रतोंमें बा हमेशा उनके साथ ही रही

हैं। उन्होंने बापूको बराबर आगे ही बढ़ने दिया है। उदाहरणके लिए, बापू .खुद कहते हैं: "ब्रह्मचर्य व्रतके पालनमें बाकी तरफ़से कभी विरोध नहीं उठा। अथवा बा कभी ललचानेवाली नहीं बनीं। मेरी अशक्ति अथवा आसक्ति ही मुझे रोक रही थी।" सादगी भी बामें सहज थी, स्वभावसिद्ध थी। कपड़ों वग़ैराके ठाठ-बाटको छोड़नेमें किसीको थोड़ा भी प्रयत्न करना पड़ा हो, तो कपड़ोंकी टीम-टामके शौक़ीन और चिकन-पोश बापूको ही करना पड़ा होगा। अपरिग्रह बाके लिए अवश्य ही कठिन रहा होगा। लेकिन उसके सम्बन्धमें भी बाने अपने लिए तो अपने मनको बहुत जल्द मना लिया था। परिग्रहका जो थोड़ा मोह या इच्छा बामें थी, सो लड़कोंकी बहुओं और बेटियोंके लिए ही थी। मनको मना लेनेके सम्बन्धकी बाके जीवनकी एक घटना पूज्य रावजीभाई मणिभाई पटेलने — जिनको अफ्रीकामें बा और बापूकी गृहस्थीमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था — मुझे लिख भेजी है, और वह इस प्रकार है:

"बात फिनिक्स आश्रमकी है। सन् १९१३का साल था। एक दिन सबेरे भोजनके बाद कोई ११ बजे मैं खानेकी मेजके पास बैठा था। बापूजी हमेशा सबको जिमा कर जीमते थे। वे भोजन कर रहे थे और उनके पास उनके परिवारके एक बु.जुर्ग कालिदास गांधी बैठे थे। वे टूँगाट नामक गाँवमें रहते थे और वहाँसे कुछ दिनके लिए आये थे। बा खड़ी-खड़ी रसोईघरमें सफ़ाईका काम कर रही थीं। श्री कालिदासभाई कुछ पुराने विचारोंके थे।

"दक्षिण अफ्रीकामें एक मामूली व्यापारीके यहाँ भी रसोईघरका और दूसरा सफ़ाई वग़ैराका काम करनेके लिए नौकर रहते थे। यहाँ बाको अपने हाथों सब काम करते देखकर श्री कालिदासभाईने बापूजीको सम्बोधन करके कहा: 'भाई, तुमने तो जीवनमें बहुत हेरफेर कर डाला। बिलकुल सादगी अपना ली। इन कस्तूरबाईने भी कोई वैभव नहीं भोगा।"

"'मैंने इन्हें वैभव भोगनेसे रोका कब है?' — बापूने खाते-खाते जवाब दिया।

"'तो तुम्हारे घरमें मैंने क्या वैभव भोगा है?'—बाने हँसते-हँसते ताना मारा।

"'बापूजीने उसी लहजेमें हँसते-हँसते कहा, 'मैंने तुझे गहने पहननेसे या अच्छी रेशमी साड़ियाँ पहननेसे कब रोका है, और जब तूने चाहा, तब तेरे लिए सोनेकी चूड़ियाँ भी बनवा लाया था न?'

"'तुमने तो सभी कुछ ला कर दिया, लेकिन मैंने उसका उपयोग कब किया है? देख लिया कि तुम्हारा रास्ता जुदा है। तुम्हें तो साधु-संन्यासी बनना है। तो फिर मैं मौज-शौक़ मनाकर क्या करती? तुम्हारी तबीयतको जान लेनेके बाद मैंने तो अपने मनको मना लिया।'—बा कुछ गंभीर होकर बोलीं।"

"मैंने तो अपने मनको मना लिया"—इस कथनमें बाके समूचे जीवनकी सफलताकी कुंजी हमें मिल जाती है। लेकिन इस प्रकार मनको मना लेनेके बाद भी बाने बापूको कठोर और शुष्क बन जानेसे तो रोका ही है। 'महात्मा' बननेके बाद भी अथवा महात्मा बननेमें मदद करते हुए भी उनको अपने विशाल परिवारके प्यारे बापू बने रहनेमें बाने बापूकी मदद की है, या यों कहिये कि उनको आम जनताके सच्चे और बड़े बापू बनाया है और इस प्रकार बापूकी महत्तामें वृद्धि की है। बाके जीवनका यह रहस्य है। अवश्य ही बाको 'बा' बनाने में बापूका हिस्सा कोई मामूली नहीं रहा है। इस विभूतिमय दम्पतीके जीवनका सच्चा रहस्य ही यह है कि दोनोंने एक दूसरेको ऊपर उठाया और महान् बनाया।

गुरुदेव टागोर एक जगह लिखते हैं: "उन दिनों भारतके तपस्वी गृहस्थ थे, क्योंकि तब घर मुक्ति-मार्गमें बाधा रूप नहीं था।" बाके जीवनका भी यही बोध है। बा बापूजीकी साधनामें और उनके महाव्रतोंके पालनमें बाधक तो बनीं ही नहीं, उल्टे धीमे-धीमे वे बापूके व्रतों, आदर्शों और सिद्धान्तोंको अपनाती गई हैं, और वैसे-वैसे उनका अपना विकास होता गया है। इस दृष्टिसे बाको महान् पतिव्रता कहा जा सकता है – पतिव्रता शब्दके प्रचलित अर्थ में तो वे पतिव्रता थीं ही, लेकिन उससे बहुत विशाल अर्थमें भी वे पतिव्रता थीं। बाने

पतिके सभी व्रतोंको अपना कर उन पर आचरण किया था। इसमें बाकी विशेषता यह है कि ये सारे व्रत, सिद्धान्त और आदर्श कुछ बाके अपने नहीं थे। बाकी महत्त्वाकांक्षा बापूके समान अपने जीवनको पूर्ण बनानेकी, मोक्षकी साधना करनेकी नहीं थी। जिसको ख़ुद ऐसी महत्त्वाकांक्षा होती है, वह तो अपनी अंदरकी प्रेरणासे प्रेरित होकर ऐसा जीवन बिताता है। बाकी तो ऐसी भी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। उनका एक सहज स्वभाव था, बापूके अनुकूल होकर रहने का। यद्यपि अपनी समझके क्षेत्रकी बातोंमें बाके अपने ही स्वतंत्र विचार रहा करते थे और उन विचारोंमें वे दृढ़ भी होती थीं, तो भी सार्वजनिक कामों, आश्रमके आदर्शों आदिके बारेमें वे निष्ठापूर्वक बापूका अनुसरण करती थीं और इस तरह अनुसरण करते-करते उन्होंने अपना विकास किया था अथवा ज़्यादा सच तो यह है कि उनका विकास हुआ था। क्योंकि उन्होंने तो ऐसे विकासकी भी आकांक्षा नहीं रखी थी। उनका जीवन तो सहज भावसे बीता है। उनके सामने एक ही ध्रुव तारा था: जो बात समझमें न आये, उसमें पतिका अनुसरण करना।

बापूके समान परम सत्याग्रही और ध्येयवादीका अनुसरण करनेके लिए बाने कुछ कम त्याग नहीं किया था। बापू जैसे तपस्वी पुरुषके साथ चलनेमें तो बीच-बीचमें भूकम्पके-से कठोर धक्के सहनेके मौक़े आते हैं। ज्वालामुखीके खौलते हुए लावामें भी चलना पड़ता है। इतना होने पर भी बा अखीर तक पीछे नहीं हटीं। अपनी इच्छा-अनिच्छाका त्याग करके अनेक कठिनाइयों और परिवर्तनोंको सहकर पतिके रास्ते चलना आसान नहीं है। इसके लिए विपुल आत्मबल और अपूर्व समर्पणकी भावना ज़रूरी है। बामें ये दोनों बातें थीं, या बाने इन दोनों का विकास किया था और यही वजह है कि वे गृहस्थ जीवनके दुस्तर समुद्रको कुशल तैराककी छटासे पार कर गईं।

बापू बहुत पढ़े-लिखे और बड़े नेता और बा अनपढ़; तिस पर बापू अपने जीवनमें एकके बाद एक बड़े हेर-फेर करते रहे हैं, और अपने विचारोंके अमलका ख़ूब आग्रह रखते हैं। इसलिए इस सबके बीच बाकी तो पूरी-पूरी कसौटी ही हो जाती थी। इससे कुछ लोगों-

को यह भी लगता कि बाको इन बातोंका दुःख रहता होगा। लेकिन बा इस कसौटीमेंसे कितने आनन्द और उत्साहके साथ पार होती थीं, इसका सबूत उनके लिखे एक पत्र से मिलता है। बा तो चाहती थीं कि यह पत्र ऐसी टीका करनेवाली एक बहनको भेजा जाय और अखबारोंमें भी छपनेको दिया जाय। लेकिन बापूने वह पत्र उन बहनको भेजा ही नहीं; अखबारोंमें तो वह छपता ही कैसे? सेवाग्राममें मैं महादेव काकाके कुछ पत्रोंकी नक़ल कर रही थी, उन्हींमें यह पत्र मुझे मिल गया। बापूकी इजाज़तसे उसे यहाँ देती हूँ। असल पत्रका चित्र सामनेवाले पृष्ठ पर दिया है। सुधार कर पढ़ने से वह इस तरह पढ़ा जाता है:

शुक्रवार

" अ० सौ० लीलावती,

तुम्हारा पत्र मुझे बहुत खटकता रहता है। तुम्हारे और मेरे बीच तो कभी बातचीतका भी बहुत मौक़ा नहीं आया। फिर तुमने कैसे जाना कि गांधीजी मुझे बहुत दुःख देते हैं? मेरा चेहरा उतरा रहता है, वे मुझे खानेके बारेमें भी दुःख देते हैं, सो तुम देखने आई थीं? मेरे जैसा पति तो दुनियामें भी किसीके नहीं होगा। सत्यके कारण वह सारे संसारमें पूजा जाता है। हज़ारों उसकी सलाह लेने आते हैं। हज़ारोंको सलाह देते हैं। कभी, किसी दिन, बिना मेरी भूलके मेरा दोष नहीं निकाला। मैं दूरकी सोच न सकूँ, मेरी दृष्टि संकुचित हो, तो कहते हैं कि यह तो सारी दुनियामें ऐसा ही होता आया है। गांधीजी अखबारोंमें चर्चा करते हैं। दूसरे घरमें कलह मचाते हैं। अपने पतिके कारण तो मैं सारे संसारमें पूजी जाती हूँ। मेरे सगे-सम्बन्धियोंमें ख़ूब प्रेम है। मित्रोंमें मेरा बहुत मान है। तुम मुझ पर झूठा आरोप लगाती हो, सो कोई मानेगा नहीं। मैं तुम्हारी तरह आजकलके ज़मानेकी नहीं हूँ। ख़ूब आज़ादी लेना, पति तुम्हारे ताबेमें रहे तो ठीक, नहीं तो तेरा और मेरा रास्ता अलग है। लेकिन सनातनी हिन्दूको यह शोभा नहीं देता।

पार्वतीजीका तो यह प्रण था कि 'जन्मोजन्म' शंकर मेरे पति हैं।

लि० कस्तूर गांधी

४

संकटकी साथिन

पिछले प्रकरणमें यह कहा जा चुका है कि, सन् १८९६के अखीरमें जब बापूजी दूसरी बार अफ्रीका गये, तो बा उनके साथ थीं। बापू जो थोड़ा वक्त हिन्दुस्तानमें रहे, उस बीच उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी हालतके बारेमें यहाँ कुछ भाषण किये थे। इन भाषणोंकी खबरें तोड़-मरोड़कर और बढ़ा-चढ़ाकर दक्षिण अफ्रीका भेजी गई थीं, जिनके कारण डरबनके गोरे लोग बापूसे चिढ़ गये थे। तिसपर वहाँ यह अफ़वाह फैलाई गई थी कि गांधी तो एक स्टीमर भर हिन्दुस्तानियोंको लाया है, और नातालको हिन्दुस्तानियोंसे भर देना चाहता है। इस वजहसे वे बहुत ही उत्तेजित हो उठे थे और बापूके स्टीमरसे उतरने पर उन पर हमला करनेका इरादा रखते थे।

ऐसी हालतमें वहाँके मन्त्रिमण्डलके एक सदस्य और डरबनके एक खास कार्यकर्ताकी ओरसे स्टीमरके कप्तानको सँदेशा मिला कि लोग उत्तेजित हैं और गांधीकी जान जोखिममें है, इसलिए उनको और उनके परिवारको शामके वक्त अँधेरा होनेके बाद स्टीमरसे उतारना। लेकिन बापूके और हिन्दुस्तानियोंके एक गोरे वकील मित्रको यह सूचना पसन्द नहीं पड़ी। उन्होंने स्टीमर पर आकर बापूसे कहा: "अगर आपको ज़िन्दगीका डर न हो, तो मैं चाहता हूँ कि श्रीमती गांधी और बच्चे गाड़ीमें रुस्तमजी सेठके घर जायँ और आप और मैं सरेआम रास्तेसे पैदल चलें। आप अँधेरा होने पर चुपचाप शहरमें दाखिल हों, यह मुझे तो ज़रा भी नहीं रुचता। मैं तो मानता हूँ कि आपका बाल तक बाँका नहीं होगा। अब तो सब शान्त है; गोरे सब तितर-बितर हो गये हैं, और मेरी राय है कि कुछ भी क्यों न हो, आपको छिप कर तो हरगिज़ न जाना चाहिये।"

बापू उनकी इस रायसे सहमत हुए। बा और बच्चे ताँगेमें रुस्तमजी सेठके घर सही-सलामत पहुँचे। बापू उन गोरे मित्रके साथ

पैदल चले। ज्योंही लोगोंको पता चला, वे सब जमा हो गये और ऊधमी लोगोंके उस दलने उन मित्रको बापूसे अलग कर दिया और फिर बापूजी पर हमला किया। कंकर-पत्थर, अण्डे, लात वग़ैराकी बापू पर वर्षा-सी की गई। इसी बीच पुलिसके अफसरकी पत्नी उधरसे गुज़रीं। उन्होंने बापूको पहचाना और उन्हें बचानेके लिए भीड़के सामने खड़ी हो गईं। दूसरी तरफ़से पुलिसकी मदद भी आ पहुँची और बापू रुस्तमजी सेठके घर पहुँचे। बापूको जो अन्दरूनी मार पड़ी थी, उसका इलाज स्टीमरके डॉक्टरने, जो वहाँ मौजूद थे, करना शुरू किया। गोरोंकी भीड़ने घरको घेर लिया और धमकी देनी शुरू की कि गांधीको सौंपा न गया, तो मकानमें आग लगा दी जायगी। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टकी हिकमतसे बापूजीको उसी घरसे भगाया गया। जब लोगोंको पता चला कि उनका शिकार छटक गया है, तो वे भी तितर-बितर हो गये।

बापूजीकी यह एक बड़ी कसौटी थी। लेकिन साथ ही साथ बाकी भी कितनी ज़बर्दस्त कसौटी! ख़ुद बाको मार तो नहीं पड़ी थी, लेकिन स्वयं कष्ट सहन करनेकी अपेक्षा एक अनजान देशमें पैर रखते ही अपने पतिके प्राण संकटमें पड़ जायँ, उस समय कितनी घबराहट और कितनी चिन्ता होती है, सो सोचने लायक है। बापूके संकटमें साथ रहनेकी यह घटना तो अचानक ही हो गई, लेकिन तबसे बा हमेशा बापूजीके संकटोंमें उनकी साथिन रही हैं। बाके दिलमें हमेशा, जागते, सोते, बापूजीके लिए बराबर चिन्ता बनी ही रहती थी। उन्होंने हमेशा अपने दिलमें इस भावनाका सेवन किया था कि जब बापूजी आफ़तमें हों, तब वह और कहीं रह ही नहीं सकतीं। इसके कुछ उदाहरण 'स्त्री-जीवन' के विशेषांकमें श्री० कुसुमबहन देसाईने, जो आश्रममें बापूके साथ कुछ साल रह चुकी हैं, अपने एक लेख में दिये हैं। उन्हींमेंसे कुछ यहाँ दिये जाते हैं :

"एक बार बहुत रात बीते बापूजी साबरमती-आश्रममें सो रहे थे। सामने ओसारीमें बा और मैं सोई थी। कोई दो-ढाई बजे बापूजी एकाएक उठे और चल पड़े। बा जाग उठीं और मुझसे पूछने लगीं :

'बापूजी कहाँ जाते होंगे ? हम उनके पीछे चलें ? कहीं बुद्धके जैसा तो नहीं हुआ ?' हम दोनों पीछे-पीछे गईं और थोड़ी दूर ही से बापूजीको देखा। बापूजीने कहा: 'तुमने सोचा होगा कि मैं भाग जाऊँगा ?' सड़क पर कोई आदमी बिच्छूके काटनेसे रो रहा था। उसका रोना सुनकर बापूजी उधर गये थे।

"१९२९में बापूजी कुछ समयके लिए हिमालयके कौसानी नामक स्थानमें रहे थे। उस समयकी यह घटना है:

"हिमालयमें सर्दी और कुहरेका पार नहीं रहता, फिर भी बापूजी अपने नियमके अनुसार वहाँ खुलेमें ही सोते थे। एक रातको बाघका बच्चा बापूजीके बिछौनेके पास चक्कर काट गया। नैनीतालसे आये हुए कुछ कार्यकर्त्ता वहाँ बापूजीके स्वागत-सत्कारके लिए रहते थे। उनमेंसे एकने इस बच्चेको देखा। दूसरे दिन बापूजीसे यह बात कही गई। सबने खुलेमें सोनेके बदले अन्दर सोनेका बहुत आग्रह किया। इस पर बापूजी ख़ूब ही हँसे और हमेशाकी तरह खुलेमें ही अपना बिस्तर लगवाया। यह देखकर बाने भी, जो रोज़ अन्दर सोती थीं, अपना बिछौना बाहर करवाया और बापूजीकी जोखिममें ख़ुद सहभागिन बनीं।

"उसी साल बापूजी बनारस गये थे। तब वहाँके सनातनियोंने उनके ख़िलाफ़ बहुत ज़ोरोंका आन्दोलन उठाया था। आम सभामें बापूजीके साथ बा वग़ैरा कोई गया नहीं था। ज्यों ही बाको पता चला कि सभामें बहुत गड़बड़ मची है, वे ख़ुद वहाँ जानेको तैयार हो गईं। बा, देवदासभाई, जवाहरलालजी वग़ैरा सभास्थानकी ओर चले। रास्तेमें सामनेसे उपद्रवी लोगोंकी एक भीड़ने आकर मोटरको सभाकी जगह जानेसे रोकनेकी कोशिश की। देवदासभाई और जवाहरलालजी मोटरसे उतर पड़े। जवाहरलालजीने दो-चारको पकड़कर दूर हटाया और टोली तितर-बितर हो गई। लेकिन भीड़ बहुत ज़ोरोंकी थी। इसलिए हम सभी मोटरसे उतर गये। देवदासभाई और जवाहरलालजी बासे अलग पड़ गये। इतनेमें पता चला कि सभामें पत्थर बरस रहे हैं, और बा बोल उठीं: 'सभामें पत्थर बरसते हों, बापूजी सभामें हों और मैं बाहर

कैसे रहूँ ?' और बाने सभास्थानकी ओर चलना शुरू किया। हमने बड़ी कठिनाईके साथ भीड़को चीरा और हम सभाकी जगह पहुँचीं।"

बापूजीके अनेक उपवासोंमें भी बा ज़्यादातर बापूके साथ ही रही हैं, और बहुत फिकरके साथ उन्होंने उनकी सार-सँभाल की है। जब पति जीवन और मरणके बीच झोंके खा रहा हो, ऐसे समय विह्वल न होकर कड़ी छाती रखने और सेवा-चाकरीमें कोई कमी न रहने देने जितना मन पर क़ाबू रखनेके लिए भी अद्‌भुत वीरताकी ज़रूरत होती है। बामें यह वीरता थी। सन् १९३२में हरिजनोंके सवालको लेकर जब यरवड़ा जेलमें बापूजीने आमरण उपवास किये थे, तब बा साबरमती जेलमें थीं। सौ० लाभु बहनने, जो साबरमती जेलमें उनके साथ थीं, बापूसे दूर रहनेके कारण उस समय बाकी बेचैनीका वर्णन करते हुए लिखा है: "हम भागवत पढ़ते हैं, रामायण-महाभारत पढ़ते हैं, लेकिन उनमें कहीं ऐसे उपवासोंकी बात नहीं आती। बापूकी तो बात ही और है। वे ऐसा ही करते रहते हैं। अब क्या होगा ?" साथकी बहनें आश्वासन देतीं कि सरकार कोई रास्ता निकालेगी, उनके पास सेवा-चाकरी करनेवाले बहुत हैं, वग़ैरा। लेकिन बाको तो पल-पलमें यही विचार आता कि क्या हुआ होगा ? क्या होगा ?"

बहनें कहतीं : "सरकार बापूको सब सहूलियतें देगी। आप क्यों फिकर करती हैं ?" इस पर बा जवाब देतीं : "लेकिन बापू कोई सहूलियत लें तब न ? वे तो सभी बातोंमें असहयोग करते हैं। उनके जैसा आदमी तो न कहीं देखा, न कहीं सुना। पुराणोंकी बहुतेरी बातें सुनी हैं, लेकिन ऐसा तप तो कहीं नहीं देखा।" फिर कुछ समय बीतता और बा ख़ुद ही कहने लगतीं: "वैसे कोई दिक़्क़त नहीं होगी, महादेव वहाँ हैं, वल्लभभाई हैं, सरोजिनीदेवी हैं, लेकिन हम हों तो फ़र्क़ पड़े न ?"

"हम हों तो फ़र्क़ पड़े न ?" इस एक वाक्यसे बाकी समूची चिन्ता व्यक्त होती है। उन्हें बराबर यह लगा करता था कि उनके जितनी सार-सँभाल दूसरे नहीं कर सकते और यह स्वाभाविक भी था; क्योंकि बापूजीको जितना वे जानतीं, उनकी आदतोंका जितना ज्ञान उन्हें होता, उतना दूसरोंको कैसे हो सकता था और वे पहलेसे कैसे सब बातोंको सोच

सकते थे ? आखिर सरकारने बाको साबरमती जेलसे हटाकर बापूके पास यरवड़ा भेजा। बापूके पास पहुँचकर बाने उलाहनेभरी आँखोंसे कहा: 'यह फिर और क्या ?' बापू चुप रहे। बाकी प्रेमभरी चिन्तातुर आँखोंने और बापूके भक्तिभावसे भरे मौनने परस्पर बहुतसी बातें कह डालीं और बाने आगे बिना कुछ कहे-सुने बापूकी तीमारदारीका ज़िम्मा ले लिया।

बिलकुल अखीरी घड़ी तक बा बापूके संकटमें उनकी साथिन रह सकीं, यह उनका परम सौभाग्य ही माना जायगा। आगाखान महलमें बापूके उपवासके समयकी कसौटी तो कड़ी-से-कड़ी कसौटी थी। उस समयकी बाकी दशाका वर्णन सुशीलाबहनने (इस पुस्तकके दूसरे भागमें) अपने लेखमें सुन्दर ढंगसे किया है।

९

सत्याग्रहकी गुरु

बापूने अपनी आत्मकथामें इस घटनाका वर्णन 'एक पुण्य-स्मरण और प्रायश्चित्त' शीर्षकसे किया है। सन् १८९८के आसपासकी यह घटना है।

"जिस समय मैं डरबनमें वकालत करता था, तब अक्सर मेरे कारकुन मेरे साथ ही रहते थे। उनमें हिन्दू और ईसाई थे, अथवा प्रान्तोंके हिसाबसे कहूँ, तो गुजराती और मद्रासी थे। मुझे याद नहीं पड़ता कि उनके विषयमें मेरे मनमें कभी भेद-भाव पैदा हुआ हो। मैं उन्हें बिलकुल अपने कुटुम्बीके जैसा समझता और अगर पत्नीकी ओरसे उसमें कोई रुकावट आती, तो मैं उससे लड़ता-झगड़ता था। मेरा एक कारकुन ईसाई था। उसके माता-पिता पंचम जातिके थे। हमारे घरकी बनावट पश्चिमी ढबकी थी। उसके कमरोंमें मोरियाँ नहीं होतीं, और होनी भी नहीं चाहिये, ऐसा मेरा मत है। इसलिए हरएक कमरेमें मोरीके बदले पेशाबके लिए अलगसे एक बरतन रहता था। उसे साफ़ करनेका काम नौकरका नहीं था, बल्कि हमारा, पति-पत्नी, दोनोंका था। हाँ, जो कारकुन अपनेको घरका ही समझने

लग जाते थे, वे तो अपने बरतनको .खुद भी साफ़ कर डालते थे । ये पंचम कुलमें जन्मे कारकुन नये थे, उनका बरतन हमींको उठाकर साफ़ करना चाहिये । दूसरे बरतन तो कस्तूरबाई उठातीं और साफ़ करती थीं, लेकिन इन भाईके बरतन उठाना उन्हें असह्य मालूम हुआ । हमारे बीच झगड़ा हुआ। मैं उठाता हूँ, तो उनसे देखा नहीं जाता और .खुद उठाना उनके लिए कठिन था । आँखोंसे मोतीके बिन्दु बरसाती, हाथमें बरतन लिए मुझको अपनी लाल-लाल आँखोंसे उलाहना देती, और सीढ़ियाँ उतरती हुई कस्तूरबाईको मैं आज भी ज्यों-का-त्यों चितर सकता हूँ ।

"लेकिन मैं जितना प्रेमल उतना ही कठोर पति था । मैं अपने आपको उनका शिक्षक भी मानता था, इसलिए अपने अंध प्रेमके अधीन होकर उन्हें ठीक-ठीक सताता था ।

"इस तरह उनके बरतनको उठाकर ले जानेभरसे मुझे सन्तोष न हुआ। वह हँसते हुए उसे ले जायँ, तभी मुझे सन्तोष हो । इसलिए मैंने दो बातें ऊँची आवाज़ में कहीं और मैं गरज उठा: 'मेरे घरमें यह बखेड़ा नहीं चलेगा ।'

"यह वचन तीरकी तरह चुभा । पत्नी खौल उठीं: 'तो अपना घर अपने पास रखो, मैं चली ।'

"मैं ईश्वरको भूल बैठा था । दयाका लेशमात्र मुझमें न रह गया था । मैंने हाथ पकड़ा, ज़ीनेके सामने ही बाहर निकलनेका दरवाज़ा था। मैं उस दीन अबलाको पकड़कर दरवाज़े तक खींच ले गया । दरवाज़ा आधा खोला ।

"आँखोंसे गंगा-जमुना बह रही थीं और कस्तूरबाई बोलीं: 'तुम्हें तो शरम नहीं, मुझे है । ज़रा तो शरमाओ । मैं बाहर निकलकर जाऊँ कहाँ ? यहाँ माँ-बाप भी नहीं कि उनके पास चली जाऊँ। मैं औरत ठहरी, इसलिए मुझे तुम्हारी चपत भी खानी ही होगी । अब ज़रा शरम करो और दरवाज़ा बन्द कर लो । कोई देखेगा तो दोनोंकी फज़ीहत होगी ।

"मैंने अपना चेहरा तो सुर्ख बनाये रखा, लेकिन मनमें शरमा ज़रूर गया । दरवाज़ा बन्द किया । अगर पत्नी मुझे छोड़ नहीं सकती थी, तो मैं भी उसे छोड़कर कहाँ जा सकता था ? हमारे बीच झगड़े तो बहुत

हुए हैं, लेकिन परिणाम हमेशा शुभ ही हुआ है। पत्नीने अपनी अद्भुत सहनशीलतासे विजय पाई है।

"आज मैं तटस्थ भावसे इसका वर्णन कर सकता हूँ, क्योंकि यह घटना तो हमारे बीते युगकी है। आज मैं मोहान्ध पति नहीं हूँ। शिक्षक भी नहीं। चाहें तो कस्तूरबाई आज मुझे धमका सकती हैं। हम आज कसौटी पर चढ़े हुए भुक्त-भोगी मित्र हैं। एक दूसरेके प्रति निर्विकार रहकर जी रहे हैं। वह मेरी बीमारीमें किसी भी प्रकारके बदलेकी इच्छा किये बिना मेरी चाकरी करनेवाली सेविका हैं।"

इस छोटी-सी घटना द्वारा हम बा और बापूजीके उस समयके गृह-जीवनकी थोड़ी झाँकी कर सकते हैं। बाके देहान्तके बाद बापूको आश्वासनके कई पत्र और तार मिले थे। वाइसराय लॉर्ड वेवेलके पत्रके जवाबमें बापूने लिखा था:

". . . . पहले तो अपनी पत्नीकी मृत्युके बारेमें आपकी ममता-भरी समवेदनाके लिए मैं आपका और लेडी वेवेलका आभार मानता हूँ। यद्यपि अपनी मृत्युके कारण वह सतत वेदनासे छूट गई हैं, इसलिए उनकी दृष्टिसे मैंने उनकी मौतका स्वागत किया है, तो भी इस क्षतिसे मुझको जितना दुःख होनेकी कल्पना मैंने की थी, उससे अधिक दुःख मुझे हुआ है। हम असाधारण दम्पती थे। १९०६में एक दूसरेकी स्वीकृतिसे और अनजानी आजमाइशके बाद हमने आत्म-संयमके नियमको निश्चित रूपसे स्वीकार किया था। इसके परिणामस्वरूप हमारी गाँठ पहलेसे कहीं ज्यादा मज़बूत बनी और मुझे उससे बहुत आनन्द हुआ। हम दो भिन्न व्यक्ति नहीं रह गये। मेरी वैसी कोई इच्छा नहीं थी, तो भी उन्होंने मुझमें लीन होना पसन्द किया। फलतः वह सचमुच ही मेरी अर्धांगिनी बनीं। वह हमेशासे बहुत दृढ़ इच्छाशक्तिवाली स्त्री थीं, जिनको अपनी नवविवाहित दशामें मैं भूलसे हठीली माना करता था। लेकिन अपनी दृढ़ इच्छाशक्तिके कारण वह अनजाने ही अहिंसक असहयोगकी कलाके आचरणमें मेरी गुरु बन गईं। आचरणका आरम्भ मेरे अपने परिवारसे ही किया। १९०६में जब मैंने उसे राजनीतिके क्षेत्रमें दाखिल किया, तब उसका अधिक विशाल और विशेष रूपसे योजित 'सत्याग्रह' नाम पड़ा। दक्षिण अफ्रीकामें जब

हिन्दुस्तानियोंकी जेल-यात्रा शुरू हुई, तब श्रीमती कस्तूरबा भी सत्याग्रहियोंमें एक थीं। मेरे मुक़ाबले उनको ज़्यादा शारीरिक पीड़ा हुई। वह कई बार जेल जा चुकी थीं, फिर भी इस बारके इस क़ैदखानेमें, जिसमें सभी तरहकी सहूलियतें मौजूद थीं, उनको अच्छा नहीं लगा। दूसरे बहुतोंके साथ मेरी और फिर तुरन्त ही उनकी जो गिरफ़्तारी हुई, उससे उन्हें ज़ोरका आघात पहुँचा और उनका मन खट्टा हो गया। वह मेरी गिरफ़्तारीके लिए बिलकुल तैयार नहीं थीं। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया था कि सरकारको मेरी अहिंसा पर भरोसा है, और जबतक मैं .खुद गिरफ़्तार होना न चाहूँ, वह मुझे पकड़ेगी नहीं। सचमुच उनके ज्ञानतन्तुओंको इतने ज़ोरका धक्का बैठा कि उनकी गिरफ़्तारीके बाद उन्हें दस्तकी सख्त शिकायत हो गई। अगर उस समय डॉ० सुशीला नायरने, जो उनके साथ ही पकड़ी गई थीं, उनका इलाज न किया होता, तो मुझसे इस जेलमें आकर मिलनेसे पहले ही उनकी देह छूट चुकी होती। मेरी हाज़िरीसे उन्हें आश्वासन मिला और बिना किसी ख़ास इलाजके दस्तकी शिकायत दूर हो गई। लेकिन मन जो खट्टा हुआ था, सो खट्टा ही बना रहा। इसकी वजहसे उनके स्वभावमें चिड़चिड़ापन आ गया और इसीका नतीजा था कि आख़िर कष्ट सहते-सहते क्रम-क्रमसे उनका देहपात हुआ।"

६

अपरिग्रहकी दीक्षा

बापूके साथ उनके कुछ व्रतोंमें अनायास और इच्छापूर्वक और कुछ दूसरे व्रतोंमें शुरू-शुरूमें अनिच्छापूर्वक और आयासपूर्वक, लेकिन बादमें समझके साथ, बाने बापूका अनुसरण किया है। अपरिग्रहके मामलेमें बाको ठीक-ठीक कोशिश करनी पड़ी है। इसका पहला उदाहरण 'आत्मकथा'से लेकर बापूकी ही भाषामें नीचे दिया है:

"लड़ाईके (सन् १८९७से '९९ तकका बोअर युद्ध) कामसे छुट्टी पानेके बाद मुझे लगा कि अब मेरा काम दक्षिण अफ्रीकामें नहीं, बल्कि

देशमें है । मैंने साथियोंसे मुक्त होनेकी इजाज़त चाही । बड़ी मुश्किलसे शर्तके साथ मेरी माँग मंजूर की गई । शर्त यह थी कि अगर एक सालके अन्दर क़ौमको मेरी ज़रूरत मालूम हो तो मुझे वापस दक्षिण अफ्रीका पहुँचना चाहिये । मुझको यह शर्त कड़ी लगी । लेकिन मैं प्रेमपाशसे बँधा था । मित्रोंकी बातको मैं ठुकरा नहीं सकता था । मैंने वचन दिया और इजाज़त हासिल की ।

"यों कहना चाहिये कि इस समय मेरा निकट सम्बन्ध नातालके साथ ही था । नातालके हिन्दुस्तानियोंने मुझको प्रेमामृतसे नहला दिया । जगह-जगह मानपत्र देनेकी सभायें हुईं और हरएक जगहसे क़ीमती भेंटें मिलीं । भेंटोंमें सोने–चाँदीकी चीज़ें तो थी हीं, लेकिन उनमें हीरेकी चीज़ें भी थीं ।

"और इन भेंटोंमें ५० गिनियोंका एक हार कस्तूरबाईके लिए था। लेकिन उन्हें मिली हुई चीज़ भी मेरी सेवाके सिलसिलेमें थी, इसलिए उसे अलग नहीं गिना जा सकता था ।

"जिस साँझको इन उपहारोंमेंसे खास–खास उपहार मिले थे, वह रात मैंने बावरेकी भाँति जागकर बिताई। अपने कमरेमें चक्कर काटता रहा, लेकिन उलझन सुलझती नहीं थी । सैकड़ोंकी क़ीमतके उपहारोंको छोड़ देना बहुत मुश्किल मालूम होता था । रखना उससे भी ज्यादा मुश्किल लगता था ।

"मैं शायद इन भेंटोंको पचा सकूँ, लेकिन मेरे बच्चोंका क्या ? स्त्रीका क्या ? उन्हें तालीम तो सेवाकी मिल रही थी । हमेशा यह समझाया जाता था कि सेवाका कोई बदला नहीं लेना चाहिये । घरमें क़ीमती गहने वग़ैरा नहीं रखता था । सादगी बढ़ती जाती थी । अब इन गहनों और जवाहरातको मैं क्या करूँ ?

"आख़िर मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि मुझे ये चीज़ें हरगिज़ न रखनी चाहियें । पारसी रुस्तमजी वग़ैराको इन गहनोंका ट्रस्टी मुकर्रर करके उनके नाम एक पत्रका मसविदा तैयार किया और तय किया कि सबेरे स्त्री–पुत्र वग़ैराके साथ चर्चा करके मैं अपने बोझको हल्का कर लूँ ।

"मैं जानता था कि धर्मपत्नीको समझाना मुश्किल होगा। साथ ही मुझे विश्वास था कि बच्चोंको समझानेमें ज़रा भी मुश्किल नहीं होगी। उनको वकील बनानेका विचार किया।

"बच्चे तो फ़ौरन समझ गये। उन्होंने कहा: 'हमें इन गहनोंकी ज़रूरत नहीं। हमको यह सब वापस ही दे देना चाहिये और अगर कभी हमें ऐसी चीज़ोंकी ज़रूरत हुई, तो हम .खुद कौन उन्हें नहीं खरीद सकेंगे?'

"मैं .खुश हुआ। मैंने पूछा, 'तो तुम बाको समझाओगे न?'

"ज़रूर, यह काम हमारा। उन्हें कौन ये गहने पहनने हैं? वे तो हमारे लिए रखना चाहती हैं। हम उन्हें नहीं चाहते, तो वे हठ क्यों करने लगीं?'

"लेकिन काम जितना सोचा था, उससे ज्यादा मुश्किल साबित हुआ। 'तुम्हें चाहे ज़रूरत न हो, तुम्हारे लड़कोंको भी न हो। बालकोंको तो जैसा सिखाओ, सीखते हैं। चाहो, मुझको मत पहनने दो, लेकिन मेरी बहुओंका क्या? उनके तो काम आयेंगे। और कौन जानता है, कल क्या होगा? इतने प्रेमसे दी हुई चीज़ें लौटाई नहीं जातीं।' इस तरह वाग्धारा चली और उसके साथ अश्रुधारा आ मिली। बालक दृढ़ रहे। मेरे डिगनेका कोई सवाल था नहीं।

"मैंने धीमेसे कहा: 'लड़कोंकी शादी तो होने दो। हमें कौन बचपनमें इन्हें ब्याहना है? बड़े होने पर ये भले जो चाहें, करें। और, हमें कौन गहनोंकी शौक़ीन बहुएँ ढूँढ़नी हैं? फिर भी कुछ बनवाना ही पड़ा, तो मैं तो हूँ ही न?'

"'तुम्हें मैं जानती हूँ। तुम वही हो न कि जिनने मेरे गहने भी छिना लिये? तुमने मुझे सुखसे नहीं पहनने दिया, तो तुम मेरी बहुओंके लिए क्या लोगे? बच्चोंको आजसे बैरागी बनाना चाहते हो? ये गहने नहीं लौटेंगे, और मेरे हार पर तुम्हारा हक़ क्या।'

"मैंने पूछा, 'लेकिन यह हार तुम्हारी सेवाके लिए मिला है या मेरी?'

"'कुछ भी हो। तुम्हारी सेवा मेरी भी हुई। मुझसे रातदिन मज़दूरी कराई, सो क्या सेवा नहीं मानी जायगी? मुझे रुला-रुलाकर हर किसीको घरमें रखा और चाकरी करवाई, उसका कोई हिसाब नहीं?'

"ये सारे बाण नुकीले थे। इनमेंसे कुछ चुभते थे, लेकिन गहने तो मुझे लौटाने ही थे। कई बाबतोंमें मैं जैसे-तैसे मंज़ूरी ले सका। १८९६में और १९०१में मिली हुई भेंटें लौटा दीं। उनका ट्रस्ट बना और सार्वजनिक कामके लिए मेरी इच्छाके अनुसार या ट्रस्टियोंकी इच्छाके अनुसार उनका उपयोग किया जाय, इस शर्त पर रकम बैंकमें रखी गई।

"अपने इस कार्यका मुझे कभी पछतावा नहीं हुआ। जैसे समय बीता, कस्तूरबाको भी इसका औचित्य पट गया। हम बहुतसे प्रलोभनोंमेंसे बच गये हैं।

"मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सार्वजनिक सेवकको निजी उपहार नहीं लेने चाहियें।"

* * *

इस तरह बाको अपरिग्रहकी पहली दीक्षा सन् १९०१में मिली। लेकिन पक्की दीक्षा तो उनको अभी दूसरे ही गुरुओंसे मिलनेवाली थी।

साबरमती आश्रममें चोरोंका उपद्रव हमेशासे रहता आया है। अलबत्ता, चोरोंको बहुत क़ीमती चीज़ें तो वहाँ मिलती नहीं थीं। लेकिन हमारे देश-जैसे ग़रीब देशमें थोड़े कपड़ों-लत्तों अथवा बरतन-भाँडोंके लिए भी ग़रीब लोग चोरी करनेको तैयार हो जाते हैं। आश्रममें समय-समय पर ऐसी चोरियाँ हुआ करती थीं। एक बार बाके कमरेमें चोरी हुई। ठीक खयाल तो नहीं है, लेकिन १९२६ या २७का साल था; चोर कपड़ोंसे भरी दो सन्दूकें उठा ले गये। उनमेंसे कपड़े-कपड़े सब ले लिये और पेटियाँ पासके खेतमें फेंककर चले गये। चोरीके सिलसिलेमें बातचीत चल रही थी। बापूने सवाल किया कि बाके पास दो सन्दूकें भरकर कपड़े होते ही कहाँसे? और होने भी क्यों चाहियें? बा रोज़की नई-नई साड़ियाँ तो कुछ पहनती नहीं। बाने कहा: "चि० रामी और चि० मनु (हरिलालभाईकी दो लड़कियाँ)की माँ तो मर गई है, लेकिन

कभी-कदास जब वे मेरे पास आयें, मुझे उनको दो कपड़े तो देने चाहियें न? इसके लिए जब–तब भेंटमें मिली हुई साड़ियाँ और खादी मैंने रख छोड़ी थी।" अलबत्ता, इस पर बापूकी दलील तो यही थी कि हम इस तरहका संग्रह कर ही नहीं सकते और साड़ियाँ या खादी निजी भेंटके रूपमें मिली हों, तो भी तत्काल उनकी ज़रूरत हो, तभी वे अपने पास रखी जायँ। जितनी फ़ाज़िल हों, सो सब तो आश्रमके कार्यालयमें ही जमा करा देनी चाहिये। उन गहनोंकी तरह इस बार भी बाको अपने लिए इन चीज़ोंकी ज़रूरत थी ही नहीं। माँका दिल बेटीको कुछ-न-कुछ देनेके लिए हमेशा छटपटाता है, और यही वजह थी कि बाने साड़ियाँ और खादी जुटा कर रखी थी। बापूने शामकी प्रार्थनामें इसकी चर्चा करते हुए कहा: 'हमको ऐसा व्यवहार भी नहीं पुसाता। लड़कियाँ हमारे घर आयें, तो रहें और खायें-पीयें, लेकिन जिन्होंने ग़रीबीका जीवन बितानेका व्रत लिया है, उन्हें इस तरहकी भेंटें देना पुसाता नहीं।' वग़ैरा वग़ैरा। इन चोर गुरुओंसे मिली हुई दीक्षाके बाद बाने इस तरहके दो कपड़े भी कभी जुटा कर नहीं रखे।

अपनी निजी ज़रूरतोंके ख़यालसे तो बाके लिए अपरिग्रह बिलकुल आसान था। अपनेको चुस्त आश्रमवासी मानने–मनवानेवाले भी बाकी सादगीको देखकर शरमाते थे। मीराबहन लिखती हैं: "जब हम लम्बा और कड़ा सफ़र करते थे, तब बापूजी कहा करते: 'बा हम सबको हराती हैं। इतना कम सामान और इतनी कम ज़रूरतें दूसरे किसीकी हैं? मैं सादगीका इतना अधिक आग्रह रखता हूँ, फिर भी मेरा सामान बाके मुक़ाबिले दुगना है।' हमारी सजग कोशिशोंके बाद भी हम बाकी स्वाभाविक किन्तु अचूक रूपसे स्वच्छ और भव्य सादगीके साथ किसी तरह होड़में टिक नहीं सकते थे। सारे दलमें उनका बिस्तर सबसे छोटा होता था और उनकी नन्हींसी पेटी भी कभी अव्यवस्थित या ठूँसी-ठाँसी नहीं रहती थी।"

लेकिन यह तो भौतिक अपरिग्रहकी बात हुई। बापूके साथ रहकर बाने धीरे-धीरे अपनी आकांक्षाओं और अभिलाषाओंका परिग्रह तजा था, जो विशेष उच्च और विशेष भव्य अपरिग्रह है।

बाके इस अपरिग्रहकी या त्यागकी बापू ख़ूब क़दर करते थे। एक बार आश्रममें हाल ही भरती हुए एक भाईके साथ बापू बात कर रहे थे। बापूका अपना खयाल है कि चाय, कॉफी-जैसे पेय नुकसानदेह हैं। इस पर उन भाईने बापूसे कहा : "तो फिर बा आश्रममें रहकर कॉफी क्यों पीती हैं?"

बापूने फ़ौरन जवाब दिया : "लेकिन तुम्हें क्या पता कि बाने कितना छोड़ा है? उनकी यह एक टेव रह गई है। मैं उन्हें इसे भी छोड़ देनेको कहूँ, तो मेरे जैसा ज़ालिम और कौन होगा!"

अगरचे अख़ीर अख़ीर में तो बाने ख़ुद ही कॉफी पीना भी छोड़ दिया था और जब ज़रूरत मालूम होती थी, तुलसी और काली मिर्चका काढ़ा पी लेती थीं।

७

जोहानिसबर्गमें बाका घर

'सत्याग्रहकी गुरु' नामक प्रकरणमें सन् १८९८ की एक घटनाका वर्णन किया है। उससे हमें थोड़ा पता चलता है कि जब बापू डरबन (नाताल) में वकालत करते थे, तब उनका घर कैसा था। सन् १९०५में वे ट्रान्सवालके जोहानिसबर्ग नगरमें वकालत करते थे। उस समयके बापू और बाके गृहस्थाश्रमका परिचय हमें श्रीमती पोलाककी 'मिस्टर गांधी—द मैन' नामक पुस्तकसे और आत्मकथासे मिलता है। श्रीमती पोलाक लिखती हैं :

"घर शहरके बाहर अच्छे मध्यम श्रेणीके लोगोंके महल्लेमें था। दुमंज़िला और अलग अहातेवाला बंगलानुमा घर था। अहातेमें बगीचा था और सामने छोटी-छोटी टेकरियोंवाला खुला मैदान था। मकानमें कुल आठ कमरे थे। दुमंज़िले परका बरामदा लम्बा-चौड़ा और ख़ूब हवादार था। गरमियोंमें वहाँ सोया जा सकता था और सोनेके काममें उसका उपयोग होता भी था।

"परिवारमें गांधीजी, उनकी पत्नी और तीन बालक थे। मणिलाल ११ सालके, रामदास ९ सालके और देवदास ६ सालके थे (हरिलाल उन दिनों देश गये हुए थे)। इनके सिवा, तारघरमें काम करनेवाले एक नौजवान अंग्रेज़, गांधीजीके एक हिन्दुस्तानी युवक रिश्तेदार और मिस्टर पोलाक — इतने लोग और थे। मैं उनमें आ मिली, जिससे मकानमें और अधिक के लिए सहूलियत नहीं रह गई।

"सबेरे ६ बजे घरका पुरुषवर्ग चक्की पीसता था, (यहाँ यह याद रखना है कि बापूने जीवनमें परिवर्तन शुरू कर दिया था) क्योंकि रोटी घर ही में बनाई जाती थी। एक कमरेमें चक्की रखी गई थी। वहीं सब इकट्ठा होते थे। पीसनेका काम तो कोई आधे घण्टेमें पूरा हो जाता था, लेकिन चक्कीकी आवाज़से भी ज़्यादा बातचीत और हँसीकी आवाज़ होती थी। क्योंकि उन दिनों घरमें हँसीके फव्वारे बारबार छूटते ही रहते थे। उपयोगिताकी दृष्टिसे इस कामके महत्त्वके अलावा इससे सबेरे अच्छी कसरत भी हो जाती थी। दूसरी कसरत रस्सी कुदानेकी होती थी। बापू उसमें निष्णात थे।

"घरमें शामकी ब्यालूका समय ज़्यादा-से-ज़्यादा आनन्दमय रहता था। घरके सब लोग उसी समय एक जगह जमा होते थे। बापूको मेहमानदारीका बड़ा शौक़ था, इसलिए ऐसा दिन तो शायद ही कभी बीतता, जब कोई-न-कोई मेहमान न हो। हररोज़ शामके भोजनमें १०से १५ आदमी रहते।

"भोजनकी चीज़ें बहुत सादी रहतीं। मेज़ पर सब चीज़ें सजाकर ही जीमने बैठते थे, चुनाँचे परोसनेके लिए किसी नौकरके खड़े रहनेकी ज़रूरत नहीं पड़ती थी। भोजनमें पहले दो-तीन साग-भाजी, दाल, कढ़ी, सिकी हुई रोटी, मूँगफली या दूसरे किसी मग़ज़को पीसकर बनाया हुआ मक्खन और तरह-तरहके कच्चे सागोंका कचूमर, इतनी चीज़ें परोसी जाती थीं। दूसरी दफ़ाके परोसनेमें दूध और फल लिए जाते थे और उसके बाद ऋतुके अनुसार कॉफी या लेमनेड गरम या ठंढा पीया जाता था। भोजनमें कभी जल्दी नहीं होती थी। मेज़ पर पूरा एक घण्टा बीतता था और जीमते समय कई तरहकी चर्चायें हुआ करती

थीं । आमतौर पर हल्के विषयोंकी चर्चा, हँसी-मज़ाक और गप-शप होती रहती थी । बापूमें विनोदकी वृत्ति तो ख़ूब ही है, इसलिए किसी भी हँसीकी बातके निकलते ही वे ख़ूब हँसते ।

"एक बार कुछ यूरोपियन भोजनका न्योता लेकर हमारे यहाँ आये । बापूकी उनके साथ कोई अच्छी पहचान नहीं थी, और बा तो उन्हें बिलकुल ही नहीं पहचानती थीं । उन्होंने तो आते ही गृह-जीवनके बारेमें सीधे-सीधे और असभ्य मानी जानेवाली कुतूहलवृत्तिके साथ सवाल पूछने शुरू किये । निजी मामलोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंमें उनके घमण्डका भी पता चलता था । लेकिन बापू तो शान्तिके साथ जवाब देते जाते थे । और, हिन्दुस्तानी लोग क्या करते हैं, और क्या नहीं करते, इसके बारेमें उनकी कुछ बातें सुनकर ख़ूब हँसते भी थे । लेकिन बाको तो यह सब देखकर ग़ुस्सा हो आया और हमारे भोजनके कमरेमें दाख़िल होनेसे पहले ही वे वहाँसे चली गईं । बापूने किसीके मारफ़त उन्हें बुला भेजा, लेकिन वे नहीं आईं । इस पर बापू ख़ुद बुलाने गये, मगर बाने तो नीचे आनेसे इनकार ही किया । बापूने लौटकर बाकी ग़ैरहाज़िरीका थोड़ा ख़ुलासा दिया और भोजन समाप्त हुआ । दूसरे दिन जब मैं बासे मिली तो उन्होंने कहा : 'ऐसे निठल्ले लोग घरका रंग-ढंग देखने आवें और मेरे घरका मज़ाक उड़ावें, (To make laugh of me and my home) यह मुझसे तो नहीं सहा जाता । ऐसे लोगोंसे मैं तो हरगिज़ न मिलूँगी । बापू मिलना चाहें, तो भले मिलें ।' मैं समझती हूँ कि बापूजीने बाके इस निश्चयको छुड़ानेके लिए उन्हें समझा देखा, लेकिन वे तो अपनी राय पर डटी ही रहीं और बापूजीकी एक भी दलीलसे नहीं पसीजीं ।"

अपनी आत्मकथामें बापूने लिखा है कि जीवनमें परिवर्तन करके उन्होंने अपना घर कैसा बना लिया था । वे लिखते हैं :

"बैरिस्टरके घरमें जितनी सादगी रखी जा सकती थी, उतनी तो रखनी शुरू की ही । फिर भी कुछ सामान ऐसा था, जिसके बिना काम चलाना मुश्किल था । सच्ची सादगी तो मनसे बढ़ी । हरएक काम अपने हाथों करनेका शौक़ बढ़ा और उसमें बालकोंको भी तैयार करना शुरू किया ।

"बाज़ारकी रोटी लानेके बदले घर पर क्यूनेकी सूचनाके अनुसार बिना खमीरकी रोटी हाथसे बनाना शुरू किया। इसमें पनचक्कीका आटा काम नहीं देता। साथ ही, यह भी खयाल था कि पनचक्कीके पिसे आटेका इस्तेमाल करनेकी बनिस्बत हाथके पिसे आटेका इस्तेमाल करनेमें सादगी, आरोग्य और धनकी अधिक रक्षा होती थी। इसलिए ७ पौण्ड खर्च करके एक हाथकी चक्की खरीदी। इस चक्कीका पाट वज़नदार था। दो आदमी उसे आसानीसे चला लेते थे; अकेलेको तकलीफ़ होती थी। इस चक्कीको चलानेमें पोलाक, मैं और बच्चे खास तौर पर शामिल होते थे। कभी-कभी कस्तूरबाई भी आतीं। हालाँ कि उनका वह समय रसोई बनानेमें खर्च होता था। जब श्रीमती पोलाक आईं, तो वे भी इसमें शरीक हो गईं। बच्चोंके लिए यह कसरत बहुत अच्छी साबत हुई। मैंने उनसे यह या दूसरा कोई भी काम ज़बर्दस्ती नहीं करवाया, बल्कि वे .खुद इसे एक खेल-सा समझकर चक्की चलाने आते थे। थकनेपर छोड़ देनेकी आज़ादी उन्हें थी ही। लेकिन कौन जाने क्या वजह थी कि क्या इन बालकोंने और क्या दूसरोंने, मुझे तो .खूब ही काम दिया। नटखट बालक भी मेरे नसीबमें थे ही। लेकिन उनमेंसे ज़्यादातर सौंपे हुए कामको .खुशी-.खुशी करते थे। 'थक गये' कहनेवाले तो उस ज़मानेके थोड़े ही बालक मुझे याद आते हैं।

"घर साफ़ रखनेके लिए एक नौकर था। वह कुटुम्बी बनकर रहता था और बालक उसके काममें पूरा हाथ बँटाते थे। टट्टी कमानेके लिए म्युनिसिपैलिटीका नौकर आता था। लेकिन पाखानेके कमरेको साफ़ करने और बैठक वग़ैरा धोनेका काम नौकरको नहीं सौंपा जाता था। वैसी आशा भी नहीं रखी जाती थी। यह काम हम .खुद करते थे और बालकोंको इससे तालीम मिलती थी। नतीजा यह हुआ कि शुरू ही से मेरे एक भी लड़केको पाखाना साफ़ करनेकी घिन न रही और आरोग्यके साधारण नियम भी वे सहज ही सीख गये। जोहानिसबर्गमें शायद ही कोई कभी बीमार पड़ता था। लेकिन जब बीमारी आती थी, तो तीमारदारीके काममें बालक रहते ही थे और वे इस काम को .खुशी-.खुशी करते थे।"

८

बाकी दृढ़ता

हिन्दूधर्मके संस्कार बामें कितने गहरे पैठ गये थे, इसकी यह एक कहानी है। मर जाना मंजूर है, लेकिन मांस और शराब लेकर 'मानुस देह' को भ्रष्ट करना मंजूर नहीं — यह बाका निश्चय था। बापूजीकी 'आत्मकथा'से यह प्रसंग लिया है :

"खूनी बवासिरके कारण कस्तूरबाईको बार-बार रक्तस्राव होता रहता था। एक डॉक्टर मित्रने शस्त्रक्रिया (ऑपरेशन) की सिफ़ारिश की। थोड़ी आनाकानीके बाद पत्नीने शस्त्रक्रिया कराना मंजूर किया। शरीर तो बहुत कमज़ोर हो गया था। डॉक्टरने बिना क्लोरोफॉर्म दिये शस्त्रक्रिया की। उस समय दर्द तो ख़ूब होता था, लेकिन जिस धीरजसे कस्तूरबाईने उसे सहा, उससे मैं तो आश्चर्यचकित हो गया। शस्त्रक्रिया निर्विघ्न समाप्त हुई। डॉक्टरने और उनकी पत्नीने कस्तूरबाईकी सुन्दर सुश्रूषा की।

"यह घटना डरवनमें हुई थी। दो या तीन दिन बाद डॉक्टरने मुझे बिलकुल बेफिकर होकर जोहानिसबर्ग जानेकी इजाज़त दी। मैं गया। कुछ ही दिन बाद खबर मिली कि कस्तूरबाईकी तबीयत ज़रा भी सँभल नहीं रही है। वह बिछौने पर उठ-बैठ भी नहीं सकती हैं। एक बार बेहोश भी हो गई थीं। डॉक्टर जानते थे कि मुझसे पूछे बिना कस्तूरबाईको दवाके साथ या ख़ूराकके साथ शराब या मांस नहीं दिया जा सकता। डॉक्टरने मुझे जोहानिसबर्गमें टेलीफोन पर कहा : 'आपकी पत्नीको मैं मांसका शोरवा या 'बीफ-टी' देनेकी ज़रूरत समझता हूँ। मुझे इजाज़त मिलनी चाहिये।'

"मैंने जवाब दिया : 'मैं यह इजाज़त नहीं दे सकता। लेकिन कस्तूरबाई स्वतंत्र हैं। उनसे पूछने-जैसी हालत हो, तो पूछिये और वह लेना चाहें तो बिलाशक दीजिये।'

"'रोगीसे इस तरहकी बातें मैं पूछना नहीं चाहता। आपको ख़ुद यहाँ आ जाना चाहिये। अगर आप मुझको, मैं जो चाहूँ, खिलानेकी इजाज़त नहीं देते, तो आपकी स्त्रीके लिए मैं ज़िम्मेदार नहीं।'

"मैंने उसी दिन डरबनकी ट्रेन पकड़ी। डरबन पहुँचा। डॉक्टरने खबर दी: 'मैंने तो शोरवा पिलाकर ही आपको फ़ोन किया था।'

"'डॉक्टर, इसे मैं दग़ा समझता हूँ', मैंने कहा।

"'इलाज करते समय मैं दग़ा-वगा कुछ नहीं जानता। हम डॉक्टर लोग ऐसे समय रोगीको और उसके रिश्तेदारोंको धोखा देनेमें पुण्य समझते हैं। हमारा धर्म तो किसी भी तरह रोगीको बचाना है!' डॉक्टरने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया।

"मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं शान्त रहा। डॉक्टर मित्र थे, सज्जन थे। उनका और उनकी पत्नीका मुझ पर उपकार था, लेकिन उनके इस व्यवहारको सहन करनेके लिए मैं तैयार नहीं था।

"'डॉक्टर, अब साफ़-साफ़ बात कर लो। क्या करना चाहते हो? मैं अपनी पत्नीको उसकी इच्छाके बिना कभी मांस नहीं देने दूँगा। मांस न लेनेसे उसकी मृत्यु होनेवाली हो, तो उसे सहनेके लिए मैं तैयार हूँ।'

"डॉक्टरने कहा: 'आपकी फिलॉसफ़ी मेरे घर बिलकुल नहीं चलेगी। मैं आपसे कहता हूँ कि जबतक आप अपनी पत्नीको मेरे घर रहने देंगे, मैं उनको मांस, या जो भी कुछ देना मुनासिब होगा, ज़रूर दूँगा। अगर ऐसा करना मंजूर न हो, तो आप अपनी पत्नीको ले जाइये, अपने ही घरमें जान-बूझकर मैं उनकी मौत नहीं होने दूँगा।'

"'तो क्या आप यह कहते हैं कि मुझे अपनी पत्नीको अभी ले जाना चाहिये?'

"'मैं कब कहता हूँ कि ले जाइये? मैं तो कहता हूँ, कि मुझ पर किसी तरहका अंकुश न रखिये। तभी हम दोनों उनकी जितनी बन सकेगी, सेवा-सुश्रूषा करेंगे और आप निश्चिंत होकर जा सकेंगे। अगर यह सीधी बात आप न समझ सकें, तो मुझे लाचार होकर यह कहना चाहिये कि अपनी पत्नीको मेरे घरसे ले जाइये।'

"मेरा खयाल है कि उस समय मेरा एक लड़का मेरे साथ था। मैंने उससे पूछा। उसने कहा: 'आपकी बात मुझे मंजूर है। बाको मांस तो हरगिज़ नहीं दिया जा सकता।'

"फिर मैं कस्तूरबाईके पास गया। वह बहुत कमज़ोर थीं, उनसे कुछ भी पूछना मेरे लिए दुखदायी था। लेकिन धर्म समझकर मैंने उन्हें ऊपरकी सारी बातचीत थोड़ेमें कह सुनाई। उन्होंने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया: 'मैं मांसका शोरवा नहीं लूँगी। 'मानुस देह' बार-बार नहीं मिलती। भले मैं आपकी गोदमें मर जाऊँ। लेकिन मैं अपनी देहको भ्रष्ट नहीं कर सकूँगी।'

"मैंने जितना समझाया जा सकता था, समझाया, और कहा: 'तुम मेरे विचारोंका अनुसरण करनेके लिए बँधी नहीं हो।' यह भी कहा कि हमारी जान-पहचानके कुछ हिंदू दवाके रूपमें माँस और शराब लेते हैं। लेकिन वह टस-से-मस न हुईं और बोलीं: 'मुझे यहाँसे ले चलो।'

"मैं बहुत ख़ुश हुआ। ले जाते घबराहट हुई, लेकिन निश्चय कर लिया। डॉक्टरको पत्नीका निश्चय कह सुनाया। डॉक्टर गुस्सा होकर बोले: "तुम तो निष्ठुर पति मालूम होते हो। ऐसी बीमारीमें उस बेचारीसे इस तरहकी बात करते तुम्हें शरम भी न आई? मैं तुमसे कहता हूँ, कि तुम्हारी स्त्री यहाँसे ले जाने लायक़ नहीं है। उसका शरीर अब ऐसा नहीं रहा कि थोड़े भी धक्के-दचके सहन कर सके। रास्तेमें ही उसका प्राण छूट जायँ तो मुझे आश्चर्य न होगा। इतने पर भी तुम हठवश नहीं ही मानोगे, तो तुम तुम्हारी जानो। अगर मैं उसे शोरवा नहीं दे सकता तो उसको अपने घरमें रखनेकी जोखिम भी मैं नहीं उठा सकता।"

"रिमझिम-रिमझिम मेह बरस रहा था। स्टेशन दूर था। डरबनसे फिनिक्स तक रेलका रास्ता था और फिनिक्ससे क़रीब २॥ मीलका पैदल रास्ता था। खतरा काफ़ी था, लेकिन मैंने मान लिया कि ईश्वर सहायता करेगा। मैंने पहलेसे एक आदमीको फिनिक्स भेज दिया। फिनिक्समें हमारे पास 'हैमक' था। यह जालीदार कपड़ेकी एक झोली या पालना-सा होता है। बाँसों पर इसके छोर बाँध देनेसे रोगी इसमें आरामके साथ झूलता रह सकता है। मैंने मिस्टर वेस्टके नाम सँदेशा भेजा कि वे 'हैमक', एक बोतल गरम दूध और एक बोतल गरम पानी और छह आदमियोंको लेकर फिनिक्स स्टेशन पर आयें।

"जब दूसरी ट्रेनके छूटनेका समय हुआ तो मैंने रिक्शा मँगवाई और उस भयंकर हालतमें पत्नीको रिक्शामें बैठाकर मैं चल पड़ा।

"पत्नीको हिम्मत दिलानेकी मुझे कोई ज़रूरत नहीं पड़ी। उल्टे, उन्हींने मुझको हिम्मत देते हुए कहा: 'मुझे कुछ नहीं होगा। आप चिन्ता न करें।'

"हड्डियोंके उस ढाँचेमें वज़न तो कुछ रह ही नहीं गया था। ख़ुराक कुछ खाई नहीं जाती थी। ट्रेनके डब्बे तक पहुँचनेके लिए स्टेशनके लम्बे-चौड़े प्लेटफ़ॉर्म पर दूर तक चलकर जाना था। रिक्शा वहाँ तक जा नहीं सकती थी। मैं उन्हें उठाकर डब्बे तक ले गया। फिनिक्समें तो वह झोली आ गई थी। उसमें हम रोगीको आरामके साथ ले गये। वहाँ सिर्फ़ पानीका इलाज करनेसे धीरे-धीरे शरीर सशक्त बना।

"फिनिक्स पहुँचनेके कोई दो-तीन दिन बाद ही वहाँ एक स्वामी पधारे। हमारे 'हठ' की बात सुनकर उन्होंने दया जतलाई और वे हम दोनोंको समझाने आये। जैसा कि मुझे याद पड़ता है, जब स्वामीजी आये, मणिलाल और रामदास हाज़िर थे। स्वामीजीने मांसाहारकी निर्दोषिता पर व्याख्यान देना शुरू किया; मनुस्मृतिके श्लोकोंका हवाला दिया। पत्नीकी उपस्थितिमें उन्होंने यह चर्चा चलाई, यह मुझे अच्छा न लगा। लेकिन विनयके विचारसे मैंने इस चर्चाको चलने दिया। मांसाहारके समर्थनमें मुझको मनुस्मृतिके प्रमाणकी ज़रूरत नहीं थी। मुझे उन श्लोकोंका पता था। मैं जानता था कि उन्हें प्रक्षिप्त समझनेवाले लोग भी हैं। किन्तु वे प्रक्षिप्त न हों, तो भी अन्नाहारके विषयमें मेरे विचार स्वतंत्र रीतिसे बन चुके थे। कस्तूरबाईकी श्रद्धा अपना काम कर रही थी। वह बेचारी शास्त्रके प्रमाणोंको क्या समझें? उनके लिए तो बाप-दादाकी रूढ़ि ही धर्म थी। बालकोंको अपने बापके धर्म पर विश्वास था, इसलिए वे स्वामीके साथ विनोद कर रहे थे। अन्तमें कस्तूरबाईने इस चर्चाको यह कहकर बन्द किया:

"'स्वामीजी, आप कुछ भी क्यों न कहें, लेकिन मुझे मांसका शोरवा खाकर स्वस्थ नहीं होना है। अब आप मेरा सिर न पचायें, तो आपका उपकार हो। बाक़ी बातें करना चाहें, तो लड़कोंके बापके साथ बादमें कीजिये। मैंने अपना निश्चय आपको जता दिया।'"

९

बापूको बचाया

जिस तरह बापूने बाको बीमारीसे बचाया, उसी तरह बाने बापूको भी अद्‌भुत रीतिसे बचाया है । यह कहना बिल्कुल ग़लत न होगा कि आज बापू जो हमारे बीच हैं, सो बाके ही प्रतापसे हैं ।

यह मानकर कि दूध प्राणिज पदार्थ है, और इस कारण मांसके जैसी ही ख़ुराक है, बापूने एक अरसेसे दूध छोड़ रखा था । तिस पर जब उन्हें पता चला कि गायों और भैंसों पर, उनसे अधिक-से-अधिक दूध पानेके लिए, कलकत्तेमें और दूसरे शहरोंमें फूकेकी क्रिया की जाती है, तो तभीसे उन्होंने दूध न पीनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी । उन दिनों बापूका मुख्य आहार सिकी हुई और कुटी हुई मूँगफली, गुड़, केले, और दो–तीन नीबुओंका पानी, इतना ही था । एक दिन कुछ ज्यादा मूँगफली खा जाने की वजहसे बापूको पेचिशकी थोड़ी शिकायत हो गई । उन्होंने कोई परवाह नहीं की । दूसरे दिन कोई त्यौहार था । बापू दूध या घी तो खाते नहीं थे, इसलिए उनके वास्ते दले हुए गेहूँकी लपसी तेलमें तैयार की थी और पूरे मूँग बनाये थे । बापूका इरादा तो खानेका नहीं था, लेकिन कुछ तो स्वादके वश होकर और कुछ बाको ख़ुश करनेके खयालसे वे जीमने बैठे । थोड़ा ही खाकर उठ जानेके इरादेसे बैठे थे, लेकिन कुछ ज्यादा खा गये । खाये अभी पूरा घंटा भी नहीं हुआ था कि ज़ोरके दर्दके साथ पेचिश शुरू हो गई । खेड़ा ज़िलेके मशहूर सत्याग्रहके बाद रँगरूटोंकी भर्तीके वे दिन थे और उसके सिलसिलेमें उसी दिन शामको उन्हें नड़ियाद जाना था । पेचिशकी परवाह किये बिना बापू वहाँ गये । लेकिन वहाँ जाने पर बीमारी बहुत बढ़ गई । पाव-पाव घंटेसे दस्त होने लगे । और चौबीस घंटोंमें तो बापूका सुगठित शरीर बिल्कुल लुंज–पुंज हो गया । डॉक्टर आये, लेकिन दवा न लेनेके उनके आग्रहके खिलाफ़ किसीकी कुछ चली नहीं । अच्छी-से-अच्छी सार-सँभालके बावजूद शरीर क्षीण होने लगा । पानीके और ऐसे ही अपने दूसरे इलाजोंकी

मददसे बापूने रोग तो मिटा लिया। लेकिन शरीर किसी भी तरह पनप नहीं पाया। दो-तीन मित्रोंने दूधका और दूध न लें, तो मांसका शोरवा या अण्डे लेनेका आग्रह किया। लेकिन जिसने दूधको मांसवत् मानकर छोड़ दिया हो वह इन चीज़ोंको लेना कैसे क़बूल करे? किसीने सलाह दी कि माथेरान जानेसे शरीर पनपेगा, इसलिए बापू माथेरान गये। लेकिन वहाँका पानी भारी साबित हुआ, इसलिए वहाँ बिलकुल जमा नहीं और वे बम्बई आये। बम्बईमें डॉक्टर दलालने उनके शरीरकी जाँच की और अपना इलाज शुरू करनेसे पहले कहा: "जब तक आप दूध न लेंगे, मैं आपके शरीरको पुष्ट नहीं बना सकूँगा। आपको दूध और लोहा और 'सोमल' की पिचकारी लेनी चाहिये। आप इतना करें, तो आपके शरीरको फिरसे ठीक-ठीक पुष्ट बनानेकी गारंटी मैं दूँ।"

"पिचकारी दीजिये, लेकिन दूध मैं न लूँगा।"

"दूधके बारेमें आपकी प्रतिज्ञा क्या है?"

"जबसे मैंने यह जाना है कि गाय-भैंस पर फूकेकी क्रिया होती है, तबसे मुझे दूधसे नफ़रत हो गई है, और मैं हमेशासे मानता हूँ कि दूध मनुष्यकी ख़ूराक नहीं है। इसलिए मैंने दूध छोड़ा है।"

बा बापूकी खटियाके पास ही खड़ी थीं। वे बोल उठीं: "तब तो बकरीका दूध ले सकते हैं।" अपने मनकी-सी बात सुनकर डॉक्टर उत्साहमें आ गये और बोले: "आप बकरीका दूध लें, तो मेरा काम बन जाय।"

बापूने बाकी और डॉक्टरकी सलाह मान ली। बापूके समान सत्यके पुजारीको प्रतिज्ञाकी आत्माका घात करनेका दुःख तो रह ही गया। लेकिन प्रतिज्ञाके शब्दार्थका पालन हुआ।

इस प्रकार, हम यह कह सकते हैं कि बाकी समय-सूचकताने और सहजबुद्धिने बापूको जिलाया।

१०

पहली स्त्री-सत्याग्रही

आजकल जेल जाना बहुत आसान बात हो गई है; लेकिन पहले तो जेलका नाम सुनकर लोग डरते थे। उस समय किसीको यह कल्पना तो थी ही नहीं, कि स्त्री जेल जा सकती है; लेकिन बापूजी तो जिनकी कल्पना भी नहीं होती, ऐसे बहुतेरे काम करते-कराते आये हैं। दक्षिण अफ्रीकामें सन् १९१३में एक ऐसा क़ानून पास हुआ कि ईसाई धर्मके अनुसार किये गये ब्याह के सिवा — जो विवाह-विभागके अधिकारीके यहाँ दर्ज हुए हों — दूसरे सब ब्याहोंको क़ानूनमें कोई जगह नहीं। इसका मतलब यह हुआ कि हिन्दू-मुसलमान-पारसी वग़ैरा धर्मोंके अनुसार की गई शादियाँ इस क़ानूनकी वजहसे रद्द मानी गईं; और इस कारण बहुत-सी विवाहिता हिन्दुस्तानी स्त्रियोंका दर्जा उनके पतिकी धर्मपत्नीका न रहकर रखेलीका माना गया। यह एक ऐसी स्थिति थी, जिसे स्त्री-पुरुष दोनों सह नहीं सकते थे। बापूने इस क़ानूनको रद्द करनेके लिए वहाँकी सरकारके साथ बातचीत चलाई, लेकिन उसका कोई नतीजा नहीं निकला, और बापूने सत्याग्रह करनेका निश्चय किया। उन्होंने इस लड़ाईमें स्त्रियोंको भी न्योतनेका निश्चय किया। 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास' नामक पुस्तकमें बापू लिखते हैं :

"मैं जानता था कि बहनोंको जेल भेजनेका काम बहुत खतरनाक था। फिनिक्समें रहनेवाली अधिकतर बहनें मेरी रिश्तेदार थीं, वे सिर्फ़ मेरे लिहाजके कारण ही जेल जानेका विचार करें और फिर ऐन मौक़े पर घबराकर या जेलमें जानेके बाद उकताकर माफ़ी वग़ैरा माँग लें, तो मुझे सदमा पहुँचे। साथ ही, इसकी वजहसे लड़ाईके एकदम कमज़ोर पड़ जानेका डर भी था। मैंने तय किया था कि मैं अपनी पत्नीको तो हरगिज़ नहीं ललचाऊँगा। वह इनकार भी नहीं कर सकती थीं, और 'हाँ' कह दें, तो उस 'हाँ'की भी कितनी क़ीमत की जाय, सो मैं कह

नहीं सकता था। ऐसे जोखिमके काममें स्त्री ख़ुद होकर जो निश्चय करे, पुरुषको वही मान लेना चाहिये और कुछ भी न करे, तो पतिको उसके बारेमें तनिक भी दुखी नहीं होना चाहिये, इतना मैं समझता था, इसलिए मैंने उनके साथ कुछ भी बात न करनेका इरादा रखा था। दूसरी बहनोंसे मैंने चर्चा की। वे जेल-यात्राके लिए तैयार हुईं। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया, कि वे हर तरहका दुःख सहकर भी अपनी जेल-यात्रा पूरी करेंगी। मेरी पत्नीने भी इन सब बातोंका सार जान लिया और मुझसे कहा:

"'मुझसे इस बातकी चर्चा नहीं करते, इसका मुझे दुःख है। मुझमें ऐसी क्या खामी है, कि मैं जेल नहीं जा सकती? मुझे भी उसी रास्ते जाना है, जिस रास्ते जानेकी सलाह आप इन बहनोंको दे रहे हैं।'

"मैंने कहा: 'मैं तुम्हें दुःख पहुँचा ही नहीं सकता। इसमें अविश्वासकी भी कोई बात नहीं। मुझे तो तुम्हारे जानेसे खुशी ही होगी। लेकिन तुम मेरे कहने पर गई हो, इसका तो आभास तक मुझे अच्छा नहीं लगेगा। ऐसे काम सबको अपनी-अपनी हिम्मतसे ही करने चाहियें। मैं कहूँ और मेरी बात रखनेके लिए तुम सहज ही चली जाओ, और बादमें अदालतके सामने खड़ी होते ही काँप उठो, और हार जाओ या जेलके दुःखसे ऊब उठो, तो इसे मैं अपना दोष तो नहीं मानूँगा, लेकिन सोचो कि मेरे क्या हाल होंगे? मैं तुमको किस तरह रख सकूँगा और दुनियाके सामने किस तरह खड़ा रह सकूँगा? बस, इस भयके कारण ही मैंने तुम्हें ललचाया नहीं।'

"मुझे जवाब मिला: 'मैं हारकर छूट आऊँ, तो मुझे मत रखना। मेरे बच्चे तक सह सकें, आप सब सहन कर सकें और अकेली मैं ही न सह सकूँ, ऐसा आप सोचते कैसे हैं? मुझे इस लड़ाईमें शामिल होना ही होगा।'

"मैंने जवाब दिया: 'तो मुझे तुमको शामिल करना ही होगा। मेरी शर्तें तो तुम जानती ही हो। मेरे स्वभावसे भी तुम परिचित हो। अब भी विचार करना हो, तो फिर विचार कर लेना और भलीभाँति सोचनेके बाद तुम्हें यह लगे कि शामिल नहीं होना है, तो समझना कि

तुम इसके लिए आज़ाद हो। साथ ही, यह भी समझ लो कि निश्चय बदलनेमें अभी शरमकी कोई बात नहीं है।'

"मुझे जवाब मिला: 'मुझे विचार–बिचार कुछ करना है नहीं। मेरा निश्चय ही है'।"

* * *

बापूने लड़ाई शुरू की और उसकी शुरुआतमें बा और तीन दूसरी बहनें जेल गईं। वॉलकस्टके जेलमें दाखिल होनेके दूसरे ही दिन जो घटना घटी, श्री० प्रभुदास गांधीने 'जीवनका प्रभात' नामक अपनी लेखमालामें उसका वर्णन दिया है। वहाँका जेलर गुजराती नहीं जानता था और बहनें अंग्रेज़ी नहीं जानती थीं। उनके नाम या पते और पहचान लिख लेनी थी। जेलरने श्री० छगनलाल गांधीको दुभाषियेका काम करनेके लिए ऑफिसमें बुलाया और कारकुनसे कहा कि वह सवालोंके जवाब ले:

कारकुन (बाको दिखाकर): यह जो खड़ी हैं, इनका नाम पूछो।

छगनलाल गांधी (बासे): इस कृष्ण-भवनकी पहली रात कैसी बीती?

बा: हम तो अँधेरा होनेके बाद भजन-कीर्तन करके आरामसे सो गईं।

छगनलाल गांधी (कारकुनसे): इनका नाम कस्तूरबा।

कारकुन (बाको दिखाकर): इनकी शादी हुई है?

छगनलाल गांधी (बासे): रात ब्यालू किया था?

बा: मुझको तो फलाहार चाहिये। इन सबने तो आये हुए रोटी और सागको सूँघ कर रख दिया। कहने लगीं, ऐसे घिनौने बरतनमें कैसे खाया जाय? और ऐसा बसाता साग कोई मुँहमें कैसे डाले?

छगनलाल गांधी (कारकुनसे): इनकी शादी हुई है। इनके पतिका नाम मोहनदास करमचन्द है। इसके बाद उमर, जात, वतन वगैराके बारेमें एकके बाद एक चारोंसे सवाल पूछे गये और छगनलाल गांधीने पहली रातके पूरे समाचार जाने और पहुँचाये। बाके फलाहारके बारेमें भी चर्चा की और उन्हें बताया कि हनूमानजी (मि० कैलेनबेक) वॉलकस्ट आ पहुँचे हैं और खबर यह है कि वे जेलरसे मिलकर फल पहुँचानेका बन्दोबस्त करनेवाले हैं।

लेकिन तीन-चार दिनमें सबका तबादला मैरित्सबर्ग जेलमें हो गया। तबादला होनेसे पहले खबर आई कि बाको फल नहीं दिये गये और बाकी तो प्रतिज्ञा थी कि कुछ भी क्यों न हो, जेलमें फलाहार ही करेंगी। अगर जेलवाले फलोंका इन्तज़ाम न करें तो भूखों रहना, मरनेकी नौबत आये, तो मर जाना। जेलके अधिकारियोंने इस प्रतिज्ञाकी कोई परवाह नहीं की और कहा: 'ऐसे ढोंग करने थे, तो जेल क्यों आईं?'

बाके लिए दूसरा कोई उपाय न रह गया। उन्होंने उपवास शुरू किया। एक, दो, तीन दिन हो गये, इतनेमें उन पर हुकूमत चलानेवाली मैट्रन ठंढी पड़ गई। बोली: "हमें तो सुबह एक वक़्तकी चाय नहीं मिलती, तहाँ हमारा सिर घूमने लगता है और तुम दुबली-पतली होकर तीन-तीन दिन बिना खाये कैसे रहती हो? हम लाचार हैं। तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर सकते। जेलमें मुँहमाँगा खानेको नहीं मिलता। मेहरबानी करके जो मिलता है, उसीसे काम चलाओ।"

पाँचवें दिन सरकार झुकी और बाको फल मिले। लेकिन वे इतनी कम तादादमें मिले कि दर असल बाको तीन महीने आधे पेट ही रहना पड़ा। सिर्फ़ तीन केले, चार 'प्रुन्स', दो टमाटर और दो नीबू मिलते थे। इनमें मूँगफली-जैसी एक भी चीज़ नहीं थी, कि जिससे घी-तेलकी ग़रज़ पूरी होती। तीन महीनों बाद जब बा जेलके दरवाज़ेसे बाहर आईं, तो बिलकुल हड्डियोंका ढाँचा भर रह गई थीं। उनके दर्शन करनेवालोंकी आँखोंसे आँसू टपके बिना न रहे।
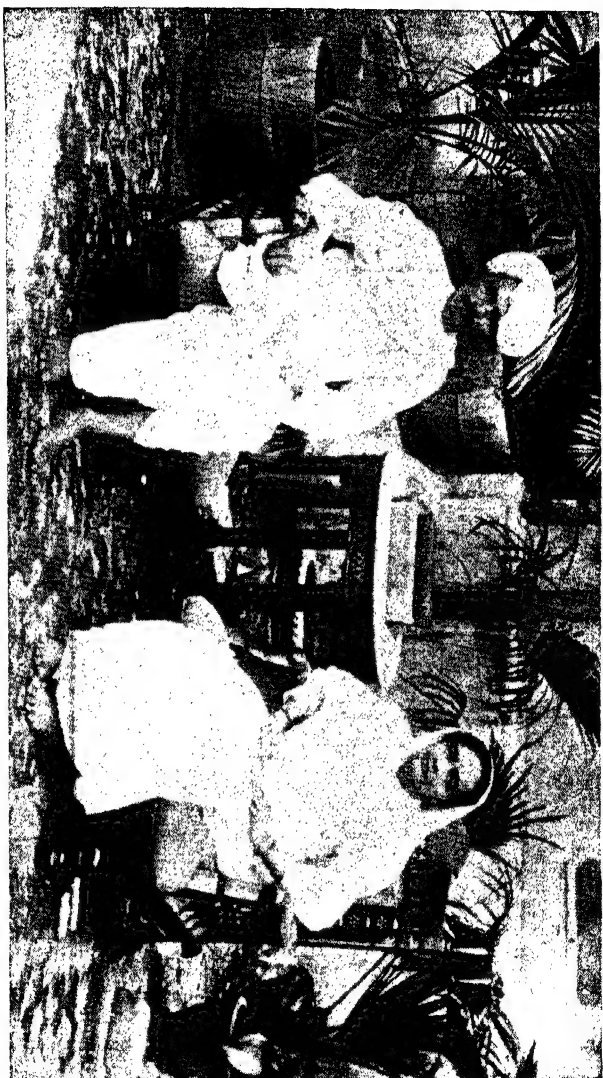
ई. स. १९१५ में

आश्रममें (बारडोली १९३८)

११

बाकी सेवा-सुश्रूषा

जब बा मैरित्सबर्गके जेलसे रिहा हुईं, उनकी तन्दुरुस्ती बहुत ही गिर गई थी । पिछले प्रकरणमें इसकी चर्चा हो चुकी है । बापू उन्हें लिवाने जेल तक आये थे । बाकी तन्दुरुस्ती और जर्जर बनी हुई देहको देखकर बापूने पहली ही बात यह कही: "तुम तो बहुत बूढ़ी हो गईं ।" जेल ही से बाकी तबियत खराब रहने लगी थी। बाहर आनेके बाद भी तन्दुरुस्ती सुधरनेके बदले और ज्यादा बिगड़ने लगी । जठराग्नि मन्द हो जानेकी वजहसे उल्टियाँ होती थीं और सारे शरीरमें सूजन आ गई थी । बापूने इस पर घरेलू दवायें दीं, लेकिन बाकी सूजन जड़से नहीं मिटी । और कुछ ही समयमें तबियतने फिर पलटा खाया । हाथों पर और पैरों पर सूजन बहुत ही बढ़ गई । डॉक्टरोंने बहुतेरी दवायें दीं, लेकिन कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। आखिर डॉक्टरकी दवासे बा भी उकता गईं । बापूने बासे कहा: "अगर तुझे मुझ पर विश्वास हो, तो अब मैं तुझ पर अपना प्रयोग करके देखूँ ।" बाने मंजूर किया: "तुम जैसा कहोगे, करूँगी ।" बापूने कहा: "उपवास करने होंगे और दवामें नीमका रस लेना होगा ।" बाने यह भी मंजूर किया और उसी दिनसे बापूका इलाज शुरू हुआ ।

बापूने बासे १४ दिनके उपवास कराये और नीमका सेवन करवाया। इन दिनों बापूने बाकी जो सेवा की, उसका वर्णन करनेके लिए शब्द मिलने मुश्किल हैं । सबेरे बापू ख़ुद बाको दतौन कराते । कॉफी भी ख़ुद ही बना कर पिलाते, एनीमा देते । 'पॉट' साफ़ कर लाते । बापू सारा दिन बाको धूपमें सुलाते । उनके घरके सामने बाहरकी तरफ़ बकायनका (एक तरहका नीम) पेड़ था । बाका शरीर तो बहुत ही दुबला हो गया था। छोटे बालकको उठानेके ढंगसे बापू बाको दोनों हाथोंमें उठाकर बाहर ले आते और पेड़के नीचे खटिया पर सुला देते। जैसे-जैसे धूप बदलती जाती, बाकी खटियाको बदलते रहते । शामको फिर उठा

कर अन्दर ले आते। बापू बाका सभी काम करते थे, लेकिन वे उनका सिर नहीं गूँथ पाते थे। इसलिए काशीकाकी रोज़ सिर सँवारने जाती थीं। एक दिन उन्हें ज़रा देर हो गई, तो बापू .खुद सिरमें कंघी करने बैठ गये। तेल डालकर उलझे बालोंको सुलझा भी चुके थे, कि इतनेमें वे पहुँच गईं। बापू ने कहा: "लो, अब तुम करो। मुझे ठीकसे वेनी गूँथना नहीं आता।"

बापू बाकी सूजन पर रोज़ नीमके तेलकी मालिश करते थे। एक दिन पीतलकी रकाबीमें तेल निकाला था। उसके दूसरे दिन बापूने बाके लिए कॉफी तैयार की और उसे प्याले व रकाबीमें ढालने जाते थे कि इतनेमें काशी काकी आ पहुँचीं। बापूको बास बहुत ही कम आती है, इसलिए उस रकाबीमें तेलकी बास आती है या नहीं, यह जाननेकी ग़रज़से उन्होंने काकीसे कहा: "ज़रा सूँघकर तो देखो, बास आती है?"

काशीकाकीने कहा: "हाँ, बास तो आती है।"

इस पर बापू बोले: "अगर मैं इसमें कॉफी ले जाता, तो मेरी आ ही बनती न?" मानो बापू बासे इतने अधिक डरते न हों!

बापूकी सेवा फली और बा उस बीमारीसे मुक्त होकर बिलकुल चंगी हो गईं।

* * *

अंग्रेज़ सरकारके खिलाफ़ बापूके कई सत्याग्रहोंकी बातें हम जानते हैं। कभी-कभी बापूने मित्रोंके साथ भी सत्याग्रह किया है। एक बार बाके साथ सत्याग्रह करनेका मौक़ा भी बापूको मिल गया। आत्मकथामें 'घरमें सत्याग्रह' शीर्षकसे बापूने इसका वर्णन किया है।

"शस्त्रक्रियाके बाद जो भी थोड़े समयके लिए कस्तूरबाईका रक्तस्राव बन्द हो गया था, तो भी उसने फिर पलटा खाया और वह किसी तरह मिटता ही नहीं था। अकेले पानीके उपचार बेकार साबित हुए। जो भी पत्नीको मेरे उपचारों पर विशेष श्रद्धा नहीं थी, तो भी उनके लिए मनमें तिरस्कार भी नहीं था। दूसरा कोई इलाज करानेका आग्रह नहीं था।

इसलिए जब मेरे दूसरे उपचारोंमें सफलता न मिली, तो मैंने उन्हें नमक और दाल छोड़नेके लिए समझाया। बहुत मनाने पर भी, अपने कथनके समर्थनमें इधर-उधरकी बातें पढ़कर सुनाने पर भी, वे मानी नहीं। आखिर उन्होंने कहा: 'दाल और नमक छोड़नेकी बात तो कोई तुमसे कहे, तो तुम भी इन्हें न छोड़ो।' मुझे दुःख हुआ और ख़ुशी भी हुई। मुझे अपने प्रेमकी वर्षा करनेका मौक़ा मिला। मैंने उस ख़ुशीमें आकर तुरन्त ही कहा, तुम्हारा ख़याल ग़लत है। मुझे कोई रोग हो और वैद्य यह चीज़ या दूसरी कोई चीज़ छोड़ देनेको कहे, तो मैं ज़रूर छोड़ दूँ। लेकिन जाओ, मैंने तो एक सालके लिए द्विदल (दाल) और नमक दोनों छोड़े। तुम छोड़ो या न छोड़ो, दूसरी बात है।'

"पत्नीको बहुत पश्चात्ताप हुआ। वह कहने लगीं: 'मुझे माफ़ करो। तुम्हारे स्वभावको जानते हुए भी मैं यह कह बैठी। अब तो मैं दाल और नमक नहीं खाऊँगी, लेकिन तुम अपनी बात लौटा लो। यह तो मेरे लिए बहुत बड़ी सज़ा हो जायगी।'

"मैंने कहा: 'तुम नमक और दाल छोड़ दोगी तब तो बहुत ही अच्छा होगा। मुझे यक़ीन है कि उससे तुम्हें फ़ायदा ही होगा। लेकिन की हुई प्रतिज्ञाको मैं लौटा नहीं सकता। मुझे तो लाभ ही होगा। आदमी किसी भी निमित्तसे संयम पाले, उसे उसमें लाभ ही है। इसलिए तुम मुझसे आग्रह न करना। दूसरे, मुझको भी अपना अन्दाज़ मालूम हो जायगा, और तुमने दो चीज़ें छोड़नेका जो निश्चय किया है, उस पर डटे रहनेमें तुम्हें मदद मिलेगी।' इसके बाद मुझे उन्हें मनानेकी तो ज़रूरत ही नहीं रही। 'तुम तो बहुत हठीले हो, किसीकी बात मानते ही नहीं,' कहकर अंजलि भर आँसू बहा लिये और चुप रह गईं।

"इसको मैं सत्याग्रहका नाम देना चाहता हूँ, और अपने जीवनके मीठे संस्मरणोंमेंसे एक इसे मानता हूँ।

"इसके बाद कस्तूरबाईकी तबियत ख़ूब सँभली। इसमें नमक और दालका त्याग कारणभूत था, अथवा किस हद तक वह कारणभूत हुआ था, या उस त्यागके कारण आहारमें जो छोटे-मोटे हेरफेर हुए,

वे कारणरूप थे, अथवा उसके बाद दूसरे नियमोंका पालन करानेमें मैंने जो सतर्कता बरती थी, वह निमित्तरूप थी, या ऊपरकी घटनाके कारण उत्पन्न मानसिक उल्लास निमित्त बना था, सो मैं कह नहीं सकता। लेकिन कस्तूरबाईकी गिरी हुई तन्दुरुस्ती सुधरने लगी। शरीर पुष्ट होने लगा। ख़ून जाना बन्द हुआ और 'वैद्यराज' के नाते मेरी साख कुछ बढ़ी।"

१२

बाकी अंग्रेज़ी

यह स्वाभाविक है कि अफ्रीकामें चारों तरफ़का वातावरण अंग्रेज़ीसे भरा हो। बापूके साथी ज्यादातर अंग्रेज़ होते थे। बादमें जब हिन्दुस्तान आये, तो यहाँ भी आश्रममें कई भाषायें बोलनेवालोंका जमघट रहा। इसलिए आश्रममें भी अंग्रेज़ीका ठीक-ठीक उपयोग करनेकी ज़रूरत रही। इसलिए हालाँकि बा अंग्रेज़ी पढ़ी नहीं थीं, तो भी मौक़ा पड़ने पर वे इधर-उधर के अंग्रेज़ी शब्दोंसे अपना काम चला सकती थीं।

श्रीमती पोलाक विलायतसे दक्षिण अफ्रीका आईं थीं और मि० पोलाकके साथ ब्याह करके बापूके घरमें ही रहने लगी थीं। वे लिखती हैं: "बा टूटी-फूटी अंग्रेज़ी बोल लेती थीं, लेकिन ज्यादा नहीं। पहले दिन तो हम परस्पर बहुत मिली भी नहीं थीं। लेकिन दूसरे ही दिनसे जब गांधीजी और मेरे पति दफ़्तर चले गये, तो हम दोनों घरमें अकेली रह गईं। फिर तो हमें किसी भी तरह एक दूसरेसे बातचीत करनी ही थी। कुछ ही समयमें बाकी अंग्रेज़ी सुधर गई और मेरे साथका उनका संकोच भी दूर हो गया। फिर तो जब हम अंग्रेज़ मित्रोंसे मिलने जातीं, तो वहाँ वे भी बातचीतमें अच्छी तरह शामिल होतीं।"

बा वहाँ कैसी अंग्रेज़ी बोलती थीं, इसकी कुछ मिसालें श्रीमती पोलाककी 'Mr. Gandhi — The Man' नामकी किताबसे यहाँ देती हूँ। एक बारकी बात है। मि० पोलाक बापूजीसे कुछ

नाराज़ हो गये थे। वे घरमें किसीसे बोलते नहीं थे और बेचैन रहा करते थे। इस पर बाने श्रीमती पोलाकसे पूछा :

"What the matter Mr. Polak? What for he cross?"—मि० पोलाकको क्या हुआ है? वे इतने नाराज़ क्यों दीखते हैं?

श्रीमती पोलाकने कहा : "बापू पर गुस्सा हुए हैं।"

तब बाने पूछा : "What for he cross Bapu? What Bapu done?"—बापू पर गुस्सा क्यों हुए हैं? बापूने क्या किया है?

इसके बाद श्रीमती पोलाकने इस सम्बन्धकी सारी हक़ीक़त बाको कह सुनाई, उस पर बाने जवाब दिया :

"Oh, Oh!"— हाँ, हाँ।

श्रीमती पोलाक इस 'हाँ–हाँ' का यह अर्थ करती हैं कि मि० पोलाक बापू पर गुस्सा हुए, इसका बाको कोई दुःख नहीं हुआ, क्योंकि वे ख़ुद भी इस मामलेमें बापू पर नाराज़ होती थीं; और बापूके लिए इतना भाव रखनेवाले आदमीको उनसे नाराज़ होनेका कारण मिलता है, इससे बाको हिम्मत बँधी कि उनका नाराज़ होना भी सकारण ही होता है।

बा इस तरहकी अंग्रेज़ी तो अफ्रीकासे आनेके बाद यहाँ भी बोलती थीं। आश्रममें आनेवाले गोरे मेहमानोंका स्वागत करना, उनके कुशल-समाचार पूछना, उनकी ज़रूरतोंके बारेमें पूछताछ करना वग़ैरा मामूली बातचीत बा अच्छी तरह कर सकती थीं। इस प्रकार वे अंग्रेज़ी बोलना तो जानती थीं, लेकिन '३०के जेल जीवनमें ६० सालकी उम्रमें उन्होंने जेलके अन्दर अंग्रेज़ी लिखना-पढ़ना सीखनेकी जो कोशिश शुरू की थी, उसके बारेमें सौ० लाभुबहन, जो जेलमें उनके साथ ही थीं, 'स्त्री-जीवन' मासिकके बा-सम्बन्धी विशेषांकमें इस प्रकार लिखती हैं :

"बाको पता चला कि मैं अंग्रेज़ी जानती हूँ और उन्होंने मुझसे अंग्रेज़ी पढ़ना शुरू किया। इतनी बड़ी उम्रमें, इतने बड़े पदको पहुँचनेके बाद भी, मेरे पास बैठकर अंग्रेज़ी सीखनेमें उनको न तो हीनता

मालूम हुई, न शरम। उन्हें तो एक ही धुन लगी थी कि .खुद बापूका पता अंग्रेज़ीमें लिख सकें। 'ए-बी-सी-डी' पर लगातार कई-कई दिन तक मेहनत करते वे कभी उकताई नहीं थीं। एक ही नामको १०-२५ बार लिखते वे थकी नहीं थीं और न जल्दी-जल्दी, नये-नये शब्दों या वाक्योंको सीख लेनेकी उन्होंने कभी इच्छा की थी। वे कहा करतीं: 'अंग्रेज़ी आ जाय तो बापूको जो पत्र लिखती हूँ उसका पता तो किसीसे न लिखवाना पड़े? और ढेर-की-ढेर जो डाक आती है, उसमेंसे मेरा पत्र .खुद ही पहचाना जा सके न?"

* * *

पूज्य बापूजी सन् १९२२से '२४ तक यरवड़ा जेलमें थे। वहाँ उन्होंने एक क़ैदीकी .खूराकके लिए सुपरिण्टेण्डेण्टके सामने कुछ मांगें पेश की थीं। सुपरिण्टेण्डेण्टने उन्हें नामंजूर कर दिया, इससे बापूजीको बहुत बुरा मालूम हुआ और उन्होंने सिर्फ़ दूध ही पर रहनेका निश्चय किया। इस तरह चार हफ़्ते बीत गये और इस बीच उनका वज़न १०४से ९० पर आ गया। जब बाके साथ परिवारके कुछ लोग उनसे मिलने गये, तो ज़ीना चढ़ते हुए बापूके पैर कुछ लड़खड़ाये। बाने बापूकी यह हालत देखी और इसका कारण पूछा। बापूको अनिच्छापूर्वक अपनी सारी बात बासे कहनी पड़ी। सबने एक होकर बापूसे आग्रह किया कि वे इस प्रयोगको छोड़ दें और फल लेने लगें। बापूने बात मंजूर भी कर ली।

यह देखकर यरवड़ाके सुपरिण्टेण्डेण्टने बासे कहा: "मि० गांधी यह जो सब करते हैं, इसमें मेरा कोई कसूर नहीं।"

बाने जवाब दिया: "Yes, I know my husband. He always mischief."

क्या इस एक वाक्यमें बाने, अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ीमें ही क्यों न हो, बापूके सारे चारित्र्यका निरूपण नहीं कर डाला है? "मैं अपने पतिको पहचानती हूँ, वे कभी चुप बैठनेवाले नहीं हैं। उन्हें रोज़ कुछ-न-कुछ शरारत ही सूझती है।" क्या इन शब्दोंमें बापूके समूचे जीवनचरित्रका सार नहीं समा जाता? १८९३ में वे दक्षिण अफ्रीका पहुँचे, तबसे आज तकके इन ५१ वर्षोंमें बापू कभी चैनसे बैठे हैं? आज सारी दुनियामें

एक क्षण भी चैनसे न बैठनेवाला और दूसरोंको न बैठने देनेवाला बापूके जैसा दूसरा कौन होगा? बापूकी रग-रगको जाननेवाली बाको छोड़कर ऐसे एक वाक्यमें उनके चारित्र्यका इतना हूबहू और गंभीर अर्थोंवाला वर्णन और कौन कर सकता है? और इस वर्णनमें अंग्रेज़ी भाषाका अधूरा ज्ञान भी उनके लिए बाधक नहीं बना। अच्छे अच्छे अंग्रेज़ोंमें भी ऐसे एक वाक्यमें बापूका वर्णन क्या करनेवाले थे?

१३

खादी-परिधान

बाको अपनी पोशाकमें और कपड़ोंकी पसन्दगीमें बापूकी इच्छा और सूचना पर चलना पड़ा है, या यों कहिये कि बा चली हैं। सन् १९१९–'२०में बाने खादी धारण की, उसका ज़िक्र करनेसे पहले हम यह देख लें कि सन् १८९६ में दक्षिण अफ्रीका जाते समय बापूने बाकी पोशाकमें किस तरहका हेरफेर कराया था। बापूजी आत्मकथामें कहते हैं:

"परिवारके साथ यह मेरी पहली समुद्र-यात्रा थी। मैंने कई बार लिखा है कि हिन्दुओंकी गृहस्थीमें बचपनमें शादी होनेके कारण और मध्यमश्रेणीके लोगोंमें अधिकतर पतिके शिक्षित और पत्नीके निरक्षर होनेके कारण, पति-पत्नीके जीवनमें फ़र्क़ रहता है, और पतिको पत्नीका शिक्षक बनना पड़ता है। मुझको अपनी धर्मपत्नीकी और बालकोंकी पोशाकका, खाने-पहननेका और बातचीतका बहुत खयाल रखना पड़ता था। मुझे उन्हें रीति-रिवाज सिखाने होते थे। उनमेंसे कुछकी याद आज भी मुझको हँसाती है। हिन्दू पत्नी पतिपरायणतामें अपने धर्मकी पराकाष्ठा मानती है। हिन्दू पति अपनेको पत्नीका ईश्वर समझता है, इसलिए पत्नीको, जैसा वह नचावे, नाचना पड़ता है।

"जिन दिनोंकी बात मैं लिख रहा हूँ, उन दिनों मैं मानता था कि सुधरे हुओंमें अपनी गिनती करानेके लिए हमें अपना बाहरी आचरण भरसक यूरोपियनोंसे मिलता जुलता रखना चाहिये। ऐसा करनेसे ही रौब पड़ता है और रौब पड़े बिना देशभक्ति नहीं हो सकती।

"इसलिए पत्नीकी और बालकोंकी पोशाक मैंने ही पसन्द की। बच्चों वगैराका काठियावाड़के बनियेके रूपमें परिचय देना कैसे अच्छा लगता? पारसी ज्यादासे ज्यादा सुधरे हुए माने जाते हैं, इसलिए जहाँ यूरोपियन पोशाककी नक़ल करना जँचा ही नहीं, वहाँ पारसी पोशाककी नक़ल की। पत्नीके लिए पारसी बहनोंके तर्ज़की साड़ियाँ लीं। बच्चोंके लिए पारसी कोट-पतलून बनवाये। सबके लिए बूट-मोज़े तो होने ही चाहिएँ। पत्नीको और बच्चोंको दोनों चीज़ें कई महीनों तक अच्छी न लगीं। बूट काटते, मोज़े बदबू देते, पैर तंग रहते। इन अड़चनोंके उत्तर मेरे पास तैयार थे और उत्तरोंके औचित्यके मुक़ाबले हुक्मकी ताक़त तो ज्यादा थी ही। इसलिए पत्नीने और बच्चोंने लाचारीके साथ पोशाकके इस हेर-फेरको मंजूर कर रखा। उतनी ही लाचारीसे और उससे भी अधिक अरुचिसे वे खाते समय छुरी-काँटेका इस्तेमाल करने लगे। जब मेरा मोह उतरा, तब फिरसे उन्होंने बूट-मोज़े, और छुरी-काँटे वगैराका त्याग किया। शुरूका परिवर्तन जिस तरह दुःखदायी था, उसी तरह आदत पड़ जानेके बाद उसे छोड़ना भी दुःख देनेवाला था, लेकिन अब मैं देखता हूँ कि हम सब सुधारोंकी केंचुली उतारकर हलके हो गये हैं।"

जिस तरह बाको बूट-मोज़े कई महीनों तक अटपटे लगे, उसी तरह उनको खादी पहनानेमें भी बापूको कई महीने नहीं तो कुछ दिन ज़रूर लगे थे। रौलट-एक्टके खिलाफ़ शुरू की गई सत्याग्रहकी लड़ाईको मुल्तवी करनेके बाद बापूने 'स्वदेशी' के कामको बहुत ज़ोर-शोरसे उठाया। उस समयके स्वदेशी व्रतमें कुछ महीनों तक तो मिलके कपड़ेको भी मंजूर रखा गया था, लेकिन कुछ ही समयमें बापूने देख लिया कि मिलके कपड़ेका प्रचारक बननेकी हमें ज़रूरत नहीं। असली ज़रूरत तो परदेशसे आनेवाले कपड़ेकी रोकके लिए ज्यादा कपड़ा पैदा करनेकी है, और यह काम चरखेके ज़रिये ही अच्छी तरह हो सकता है। इसलिए बापूने सबसे आग्रह करना शुरू किया कि वे चरखा चलायें और खादी पहनें। लेकिन उन दिनों बड़े अर्जकी खादी तो बनती नहीं थी, २७ इंच पनेकी खादी भी मुश्किलसे बुनी जाती थी और अगर धोती या साड़ी खादीकी पहननी हो तो ६ या ८ नम्बरके

असमान सूतकी और कम अर्ज़की ऐसी खादीको जोड़कर ही पहनी जा सकती थी। इस तरह जोड़कर बनाई गई साड़ीका वज़न २॥से ३ पौण्ड होता होगा। जो बहनें यह दलील करतीं कि ऐसी साड़ी तो बहुत भारी पड़ती है, हमसे उठ भी नहीं सकती, उनसे बापू कभी-कभी कहते कि नौ-नौ महीनों तक बच्चेको पेटमें धारण करनेवाली बहनोंको देशके खातिर, अपनी ग़रीब बहनोंकी आबरूके खातिर, यह इतनी-सी साड़ी भारी क्यों लगनी चाहिये?

आश्रममें भी बापू रोज़ सब बहनोंको खादी पहननेके लिए समझाते। बापूकी उस दलीलको सुनकर साड़ीके वज़नकी दलील तो कोई बहन न करती, लेकिन रोज़ धोनेकी मुश्किलवाली दलील बहनें बहुत ज़ोरके साथ पेश किया करतीं। इस पर बापूजी कहते कि हम तुम्हें तुम्हारी साड़ियाँ धो देंगे। इस तरह हँसी-विनोद होता रहता। इन सब दलीलोंमें बा बहनोंकी अगुआ बनतीं। बापू अकसर कहते: 'बाको बूट और मोज़े पहनानेमें मुझे उनकी कुछ कम ख़ुशामद नहीं करनी पड़ी। और उनको फिरसे छुड़वाते समय भी थोड़ी ख़ुशामद तो करनी ही पड़ी थी। लेकिन अब देखता हूँ कि बूट-मोज़े पहनानेमें जितनी ख़ुशामद करनी पड़ी थी, खादीकी साड़ी पहनानेमें उससे ज्यादा ख़ुशामद करनी पड़ेगी।' जहाँ तक मैं जान पाई हूँ, उसके मुताबिक तो श्री० सरलादेवी चौधरानीने पहले-पहल खादीकी साड़ी पहनी थी। शायद सारे देशमें सबसे पहले खादीकी साड़ी पहननेवालियोंमें वही प्रथम रही हों। उन दिनों वे आश्रममें ही रहती थीं। फिर तो तुरन्त ही बाने भी खादीकी साड़ी धारण की और कुछ ही समयमें सब बहनें खादी पहनने लग गईं। बादमें तो बड़े अर्ज़की खादी भी बुनी जाने लगी और ख़ुद कातनेवालोंके लिए तो साड़ीकी कोई कठिनाई ही नहीं रह गई।

इसके बाद तो बाको खादीसे कितना प्रेम हो गया था, इसका सूचक एक उदाहरण यहाँ देती हूँ। एक दिन बाके पैरकी छोटी अँगुलीमें ख़ून निकला। बा खादीकी पट्टी बाँधने जा रही थीं, इतनेमें एक बहनने महीन कपड़ेकी पट्टी ला दी और कहा: "इस महीन कपड़ेसे रगड़ नहीं लगेगी और पट्टी अच्छी तरह बँधेगी।" "मुझे तो खादीकी पट्टी ही

चाहिये । वह खुरदरी भी होगी, तो मुझे नहीं चुभेगी," कहकर बाने खादीकी ही पट्टी बाँधी ।

जब बापूजीने आगाखान महलमें उपवास शुरू किये, तो उनसे मिलनेके लिए गई एक आश्रमवासिनी बालासे बाने सेवाग्राममें पड़े हुए अपने कपड़े भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंको बाँट देनेके लिए कहा और सूचना की: "बापूजीके अपने हाथसे कती और मेरे लिए खास तौर पर तैयार की गई साड़ी तो मुझे जेलमें भेज ही देना । मृत्युके बाद मेरी देह पर वह साड़ी लपेटनी है ।"

आम तौर पर बाकी साड़ी बापूके काते सूतकी ही बनती थी और बा चिता पर चढ़ीं, सो भी बापूके हाथसे कते सूतकी साड़ी पहनकर ही ।

१४

आश्रमकी बा

जिस तरह बापूको 'बापू' ही बनाये रखनेमें बाका बहुत बड़ा हाथ था, उसी तरह आश्रमको आश्रम — साधारण मनुष्योंका आश्रयस्थान — बनाये रखनेमें भी बाका हिस्सा कम नहीं रहा । जब अहमदाबादमें बापूने आश्रम क़ायम किया, तो खयाल उठा कि उसका नाम क्या रखा जाय ? अनेक नामोंके साथ एक 'तपोवन' भी सुझाया गया था । बापूका आश्रम वैसा 'तपोवन' बना होता, तो कौन जाने उसमें कैसे-कैसे लोग रहते होते । आज जो साधारण लोग आश्रमवासी कहलाते हैं, उनके लिए तो शायद जगह ही न रहती । सार्वजनिक कामोंके सिलसिलेमें या निजी कारणोंसे बापूको मिलने आनेवाले लोग उस तपोवनमें एक दिन भी रह सकते या नहीं, इसमें शक है ।

बापूका तप सूरजकी तरह तपता है । सूरजका ताप जिस तरह दुनिया के लिए कल्याणकारी ही होता है, उस तरह बापूका तप दुनियाके लिए कल्याणकारी ही है । लेकिन जैसे सूरजके तापके बहुत पास जानेवाला जल जाता है, उसी तरह बापूके बहुत नज़दीक रहना भी

एक कड़ी तपस्या ही है। बापूजीके पास रहनेवालोंकी इस तरहकी कड़ी कसौटीमें बाने हमेशा उनकी ढालका काम किया है और उनको बापूके तापसे झुलसने नहीं दिया। बाने यह सब सोच-समझकर या योजनाके साथ नहीं, बल्कि सहजभावसे ही किया है।

आश्रममें रहनेवाली बहनोंके लिए बा किस तरह ढाल बन जाया करती थीं, इसकी एक मिसाल यहाँ देती हूँ।

आश्रमका नियम था, कि सबकी एक संयुक्त रसोई हो। हरएक अपने हिस्से आनेवाला काम कर ले। यह भी एक नियम था, कि आश्रममें होनेवाली साग-सब्ज़ीका ही इस्तेमाल किया जाय। बाहरसे साग वग़ैरा न मँगाया जाय। संयुक्त रसोईमें आश्रमके खेतमें पैदा होने-वाले कद्दूका साग रोज़ बनता था। कद्दूके सागसे मतलब है, कद्दूके बड़े-बड़े टुकड़ोंका पानीमें उबाला हुआ पदार्थ। उसमें नमक भी नहीं छोड़ा जाता था। जिसे ज़रूरत हो, वह अलगसे नमक ले ले। मेरी माँको इस सागके खानेसे बादीकी तकलीफ़ होती और चक्कर आते। दुर्गामौसीको बादीकी शिकायतके साथ-साथ डकारें आतीं। दूसरी भी बहुतेरी बहनोंको वह माफ़िक़ नहीं आता था। बापूजी तो सबको पानी चढ़ाते रहते थे, इसलिए, और कुछ संकोचकी वजहसे भी, सब बहनें बापूजीसे इसका ज़िक्र नहीं करती थीं। लेकिन बाके साथकी बातचीतमें ये सब बातें हुआ करतीं। मेरी माँने रोज़-रोज़के इस कद्दूके साग पर एक गरबी (तुकबन्दी) तैयार कर ली। बाने वह सुनी और वे तुरन्त ही बापूके पास पहुँचीं। बापूसे कहा: "तुम्हारे कद्दूका साग खाकर मणिबहनको बादीकी तकलीफ़ होती है, और चक्कर आते हैं। दुर्गाबहनको डकारें आती हैं। कद्दूका साग भी कहीं निरा उबाला हुआ बनता है? उसे मेथीसे छौंका जाय, और उसमें गरम मसाला वग़ैरा सब कुछ डाला जाय, तभी वह बाधक नहीं होता। नहीं तो, कद्दू बिना बाधे कभी रहा है?"

इस गरबीमें विनोदके तौर पर आश्रमकी रसोईका थोड़ा मज़ाक किया गया था। इस पर कुछ आश्रमवासी तो मेरी माँसे कहने लगे, कि यह तो तुमने बापूका अपमान किया। लेकिन इसमें अपमानकी तो कोई बात थी ही नहीं, महज़ मीठा मज़ाक था। दूसरे दिन प्रार्थनाके बाद

बापूने कहा कि हमारे आश्रममें एक नये कवि पैदा हुए हैं । हमें उनकी कविता सुननी है । इसके बाद बापूने आग्रह करके मेरी माँसे कद्दूवाली वह गरबी गवाई । गरबीके खतम होने पर बापूने कहा : "अच्छी बात है, आपकी फरियाद मंजूर की जाती है । जिन्हें छौंककर और मसाले डालकर साग खाना हो, वे अपने नाम मुझे लिखा दें ।"

बा बोलीं : "यों आपको कोई नाम नहीं देगा । हम बहनें ख़ुद तय कर लेंगी ।"

बापूने कहा : "अच्छा, तो ऐसा ही सही । लेकिन देखना भला, इसमें बच्चोंको शामिल न कर लेना । बच्चे तो बिना मसालेका साग ही पसन्द करते हैं ।" बाने कहा : "इस तरह कह-कहकर बच्चोंको चढ़ाओ और भले उन्हें अपने पास ही रखो । ये सब बच्चे कहाँ तक तुम्हारे रहेंगे, सो मैं जानती हूँ ।"

फिर सब बहनोंने नाम तय किये । मसाला खानेकी आज़ादी हासिल की । लेकिन बापूजी कुछ सुखसे मसाला खाने देते हों, सो नहीं । बहनोंकी पंगत उनके सामने ही बैठती । इसलिए खाते-खाते भी बापू मज़ाक करते और कहते : "क्यों, बघार कैसा लगा है ? साग अच्छा मसालेदार है न ?"

इसके जवाबमें बा भी विनोदभावसे कहतीं : "तुम कौन कम थे ? पहले हर इतवारको मुझसे 'वेढ़मी' और पकौड़ी या 'पातरे' बनवा कर .खूब उड़ाते थे, सो तुम्हीं थे या और कोई ?"

ऐसा ही एक किस्सा और है ।

आश्रममें नियम था कि हरएकको अमुक एक क़ीमतका ही साबुन इस्तेमाल करना चाहिये । आश्रमकी बहनोंको उतना साबुन पूरा नहीं पड़ता था । और इसके ख़िलाफ़ शिकायत करनेका मतलब होता था, बापूके बनाये नियमका विरोध करना । फिर भी सब बहनोंने मिलकर सबकी सहीसे एक अर्ज़ी तैयार की । बाने भी उस पर सही की और अर्ज़ी बापूको दी गई । अर्ज़ीमें बाका नाम पढ़कर अर्ज़ करनेवाली जो एक ख़ास बहन थीं उनकी ओर इशारा करके बापूने कहा : "इन्होंने तो हम दोनोंमें भी झगड़ा करा दिया !" कहनेकी

ज़रूरत नहीं कि बापूने अर्ज़ी मंजूर की और बहनोंको ज़्यादा साबुन मिलने लगा ।

* * *

सेवाग्राममें बापूकी झोंपड़ीकी ओर जानेसे पहले बाकी झोंपड़ी पड़ती है । बा या तो चबूतरे पर बैठीं कातती मिलतीं, या ऐसा ही कोई काम करती नज़र आतीं । किसी नये आनेवाले मेहमानको पहले बाके दर्शन होते । बा उन्हें पहचानती हों या न पहचानती हों, फिर भी बड़े प्रेमसे उनका स्वागत करतीं । कहाँसे आये ? सीधे यहीं आ रहे हैं या वर्धा होकर आये ? भोजन हुआ या नहीं ? गाड़ीमें बहुत तकलीफ़ तो नहीं हुई न ? वग़ैरा छोटी-से-छोटी बातें पूछतीं । भोजन न किया हो, तो करातीं । आये हुए मेहमानको बापूके साथ तो जिस कामके लिए आये हों उसकी चर्चा करनेका ही काम रहता था । पर उनकी दूसरी तमाम कठिनाइयोंको बा हल कर दिया करतीं । आश्रममें रहनेवालोंसे भी बा जब-तब पूछती रहतीं : 'खाना तो माफ़िक़ आता है न ? कोई तकलीफ़ न उठाना भला ! किसी चीज़की ज़रूरत हो, तो मुझसे कहिये ।' छोटे बच्चे रहते, तो उन्हें दोपहरमें नाश्ता भी देतीं । आश्रममें ख़ातिरदारीकी या प्यार-दुलार पानेकी कोई जगह थी, तो वह बाकी ।

पण्डित मोतीलालजी जैसे आश्रममें कई-कई दिन तक रह जाते थे, सो बाकी ही बदौलत । बा न हों, तो राजाजीको चाय-कॉफी कौन दे ? जवाहरलालजीके लिए ख़ास ज़ायकेवाली चाय कौन तैयार करे ? मीठुबहनको ज़िन्दा रखना हो, तो उनको चाय देनी ही चाहिये, बाके सिवा दूसरा कौन उनकी ऐसी वकालत करता ?

* * *

बहुत साल पहलेकी बात है । एक दिन गोशीबहन आश्रममें आई थीं । आश्रमका रिवाज यह था कि खाना खानेके बाद हरएक अपनी-अपनी थाली मांज डाले । सब खाने बैठे । बा और गोशीबहन पास-पास बैठी थीं । भोजनके बाद हरकोई अपनी-अपनी थाली उठाकर जाने लगा । गोशीबहनने कभी बरतन मले नहीं थे । उनका भोजन हो चुका था, लेकिन वे परेशान थीं कि क्या करें । इतनेमें बा भी खा

चुकीं। उन्होंने धीरेसे गोशीबहनकी थाली खींच ली। गोशीबहन और भी परेशान हुईं और शरमाईं। बासे कहीं थाली मँजवाई जा सकती है? लेकिन बा उनकी कठिनाईको समझ गई थीं, इसलिए बोलीं: "बहन, तुमने कभी थाली माँजी नहीं है, सो तुमसे यह नहीं बनेगा। मुझको तो रोज़की आदत है। मेरे लिए एक थाली ज़्यादा नहीं होगी।"

बापूने आश्रमका एक नाम 'अस्पताल' भी रख छोड़ा है। बीमारोंको अपने पास रखकर उनकी तीमारदारी करनेका बापूको शौक़ है। बापू अपनेको एक बहुत अच्छा नर्स और डॉक्टर भी समझते हैं। जिस तरह ख़ूराकके और कुदरती इलाजोंके प्रयोग वे अपने ऊपर आज़माते हैं, उसी तरह दूसरों पर भी आज़मानेको तैयार रहते हैं। अपने इस कामसे वे एक तरहकी मानसिक विश्रान्ति प्राप्त करते हैं। सरदार वल्लभभाई-जैसे भी बापूके बीमार हैं। चूँकि आश्रम इस तरहका एक अस्पताल है, इसलिए बाहरसे बापूके वास्ते फलकी जो भेंटें आती हैं, उनमेंसे ज़्यादातर फलोंका उपयोग बीमारके लिए ही होता है। आश्रममें तन्दुरुस्त आदमीके हिस्से फल शायद ही कभी आते हैं। बाको इसमें कुछ भी अनुचित नहीं लगता था। लेकिन जब कभी फलोंकी इफ़रात होती, बा स्वस्थ आश्रमवासियोंका मुँह मीठा करानेकी मुराद रखतीं। रसोईघरके व्यवस्थापककी स्वाभाविक वृत्ति फलोंके संग्रहकी रहती। लेकिन बाको यह पसन्द न पड़ता। उनकी नज़र पड़ती और फल ज़्यादा होते, तो फ़ौरन ही ज़रूरी फल रखकर बाक़ीके फलोंको वे पंगतमें परोस देनेके लिए कह देतीं। ऐसे समय वे रसोईघरके व्यवस्थापक पर ताना भी कसतीं। कहतीं: "वह तो लालची है, बापूको भी पीछे छोड़नेवाला।" यह टीका व्यवस्थापककी अपेक्षा बापू पर ही अधिक होती।

और, आश्रममें बा न हों तो अकसर त्योहारके दिनका भी किसीको पता न चले। बा हमेशा एकादशीका व्रत रखती थीं और त्योहारके सब दिनोंको भी याद रखती थीं। इसलिए त्योहारके दिन सभी आश्रम-वासियोंको बाकी कुछ-न-कुछ प्रसादी मिल जाती थी। इस तरह बाके कारण आश्रममें आनन्दका वातावरण रहा करता।

लेकिन अब सेवाग्राम जाने पर बाका वह हमेशा हँसनेवाला चेहरा और फलों वगैराकी उनकी वह प्रसादी कहाँ मिलेगी? बाके अभावमें वहाँ कौन भावके साथ स्वागत करेगा? जिस तरह माँके बिना घर सूना-सूना लगता है, उसी तरह बाके बिना आश्रम भी सूना लगेगा।

१८

हरिजनोंकी माँ

बा तो सारे देशकी माँ बनकर गईं। उनके दिलमें कभी क़ौमी भेदभाव था ही नहीं। लेकिन सफ़ाई और छूतछातसे सम्बन्ध रखनेवाले वैष्णव सम्प्रदायके संस्कारोंके कारण हरिजनोंकी माँ बननेमें उनको थोड़ा वक़्त ज़रूर लग गया। मगर इस पुरानी घिनके निकल जानेके बाद तो उन्होंने हरिजनों और सवर्णोंके बीच कभी कोई भेदभाव नहीं रखा।

अहमदाबादमें सत्याग्रह आश्रमकी स्थापना करते समय बापूने अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी अपने विचारोंको मित्रोंके सामने साफ़-साफ़ रख दिया था: "अगर कोई लायक अछूत (उस समय हरिजन शब्द प्रचलित नहीं हुआ था) भाई आश्रममें भरती होना चाहेगा, तो मैं उसे ज़रूर भरती करूँगा।"

"लेकिन आपकी शर्तोंका पालन कर सकनेवाले अछूत इतने सुलभ हैं कहाँ?" एक वैष्णव मित्रने इन उद्गारोंके साथ अपने मनको मना लिया।

आश्रमकी स्थापनाके कुछ ही महीनों बाद ठक्करबापाने आश्रमके नियमोंका पालन करनेवाले एक प्रामाणिक परिवारको आश्रममें भरती करनेकी सिफ़ारिश की। बापू तो यह चाहते ही थे। दूधाभाई, उनकी पत्नी दानीबहन और एक छोटी लड़की लक्ष्मी आश्रममें आ पहुँचे।

आश्रममें बड़ी खलबली मची। अफ्रीकामें बापूजीके घर अछूत आते और रहते थे, लेकिन यह तो देश था। यहाँ अछूत परिवारके

साथ रहनेमें बाको और दूसरी बहनोंको मन ही मन थोड़ी झिझक मालूम हुई। अछूतोंको छूनेमें उन्हें कोई आपत्ति न थी। लेकिन उनको रसोईघरमें और परिवारमें दाखिल करते समय पुराने वैष्णवी संस्कार बाधक बनते थे। प्यालेसे मुँह लगाकर पानी पीनेके बाद उसे माँजना ही चाहिये। अगर बिना माँजे वह पनियारे पर रख दिया जाय, तो बाको उससे बहुत दुःख होता था। थालीमें कुछ भी परोसते समय परोसनेकी कड़छुल या चम्मच भोजनकी थालीसे ज़रा भी छू जाय, तो वह कड़छुल या चम्मच जूठा माना जाता था और उसे अलग मलनेके बरतनोंमें ही रख देना होता था। बेचारे दूधाभाई और दानीबहन इस तरहकी पूरी-पूरी ख़बरदारी रखनेकी भरसक कोशिश करते, लेकिन कभी कहीं भूले-चूके उनसे ऐसी कोई ग़लती हो जाती थी, तो बाको वह अच्छा नहीं लगता था। दानीबहनके लिए वे नापसन्दी तो नहीं, लेकिन उदासीनता रखती थीं। इस उदासीनताको दूर करनेमें बाको बहुत वक़्त लग गया। बादमें दूधाभाई और दानीबहनने अपने कुछ कारणोंसे आश्रम छोड़ा और बापूने आग्रह करके उनकी कन्या लक्ष्मीको आश्रममें रख लिया और यह ऐलान किया कि उन्होंने उसे गोद लिया है। लक्ष्मीकी सार-सँभालका सारा काम बाको सौंपा गया। इस मौक़े पर भी शुरूमें बाको थोड़ी कठिनाई मालूम हुई होगी, लेकिन कुछ ही समयमें बाने लक्ष्मीको भलीभाँति अपना लिया। एक बार मनसे तय कर लिया कि इसे लड़कीकी तरह रखना है, उसके बाद तो उसकी सार-सँभाल रखनेमें बा कभी चूकनेवाली नहीं थीं। छोटा बालक थोड़ा-बहुत झगड़ालू होता है, अथवा कभी-कभी ज़िद करता है, इसी तरह लक्ष्मीने भी कभी-कभी झगड़ा करके बाको परेशान किया होगा, लेकिन बाने न सिर्फ़ उसका कभी कोई दुःख नहीं माना, बल्कि लक्ष्मी बहनको, और सयानी हो जानेके बाद उनके बच्चोंको भी बाने अपने प्रेमसे नहलाया ही है।

* * *

कुछ साल पहले सेवाग्राम आश्रममें एक घटना घटी थी, जो यहाँ देने लायक है।

नागपुरके कुछ हरिजनोंने मध्य प्रान्तके कांग्रेसी मंत्रिमण्डलमें

हरिजनको मन्त्री न बनानेके लिए बापूके खिलाफ़ सत्याग्रहका ऐलान किया था। उन्होंने यह तय किया कि पाँच-पाँच हरिजन सेवाग्राम जाकर आश्रममें बापूके सामने उपवास करें। ५ हरिजनोंकी एक टुकड़ी सेवाग्राम आवे और वहाँ बैठकर २४ घंटोंका उपवास करे। फिर दूसरी टुकड़ी आकर उपवास शुरू करे और पहली टुकड़ी चली जाय। इस तरह टुकड़ियाँ बदलती रहें। बापूने प्रेमके साथ इन विरोधी हरिजनोंका स्वागत किया और इनके लिए आश्रममें बैठने व रहनेकी सहूलियत कर दी। जगहका चुनाव हरिजनोंकी इच्छा पर छोड़ा गया। उन्होंने बाकी ओसारी पसन्द की।

बाकी कुटियामें एक बड़ी और एक छोटी कुल दो कोठरियाँ हैं। छोटी कोठरी नहाने और कपड़े बदलनेके लिए है। बापूने बाको बुलाकर कहा: "इन हरिजनोंको तुम अपनी बड़ी कोठरी दोगी न?"

अपने ही खिलाफ़ उपवास करनेके लिए आये हुए इन हरिजनोंको बापू इस तरहकी सहूलियत दें, और ख़ुदको नहानेके कमरेका उपयोग करनेकी स्थितिमें रखें, यह बाको कुछ अच्छा नहीं लगा। उन्होंने सहज उलाहनेके स्वरमें कहा:

"आपने इनको अपने पुत्र मानकर टिकाया है, तो अपनी झोंपड़ीमें ही इन्हें बैठाइये न?"

"हाँ, ये मेरे लड़के तुम्हारे भी तो लड़के हुए न?"

अट्टहास्यके साथ बापूने बाको निःशस्त्र किया और बाने उन हरिजनोंके लिए अपनी कोठरीमें जगह कर दी। बा न सिर्फ़ उनके सारे उपद्रवोंको सह लेती थीं, बल्कि उन्हें पानी वग़ैराकी ज़रूरत होती, तो उसका भी पूरा-पूरा खयाल रखती थीं।

१६

बाकी दिनचर्या

इस अध्यायमें मैं यह बता देना चाहती हूँ कि आम तौर पर बा अपना दिन किस तरह बिताती थीं। इसमें बापूकी सेवा-टहल सूरजकी जगह थी, बाक़ीका सारा वक़्त 'बा'के नाते और आश्रमवासिनीके नाते अपने धर्मका पालन करनेमें बीतता था। किसीको पता भी नहीं चलता था, कि वे अपने निजी कामोंसे कब निबट लेती थीं।

बा हमेशा सुबह ४ बजेकी प्रार्थनाके समय उठनेका आग्रह रखतीं। प्रार्थनाके बाद बापूजीको आधा-पौना घंटा सो जानेकी आदत है। लेकिन बा उठनेके बाद फिर सोती नहीं थीं। वे तो बापूजीके फिरसे जागनेके पहले उनके लिए गरम पानी और शहद या जो भी कुछ बापू सबेरे लेनेवाले हों, सो तैयार करने या करानेमें लग जातीं। 'करानेमें' इस लिए लिख रही हूँ कि बापूके ऐसे निजी कामोंको करनेकी बहुतोंकी इच्छा रहती और इसके लिए कभी-कभी आपसमें होड़ाहोड़ी भी होती। बा ऐसे उम्मीदवारोंको बापूजीकी सेवाके काम बाँट देतीं। लेकिन काम किसीको भी क्यों न सौंपा हो, बा सामने खड़ी रहकर देखतीं कि काम ठीक हो रहा है या नहीं? बाका इस तरह खड़ा रहना कुछ मतलब रखता था। श्री० कुसुमबहन देसाईने इसका एक उदाहरण दिया है। एक बार अलीगढ़में बापूजीका दूध छाननेकी सेवा एक भाईने बहुत हठ करके बासे माँग ली। दूध छाना और बापूजीको दिया। बापूजीको दूधमें एक बाल दिखाई पड़ा। बासे पूछने पर उन्होंने सारी बात बता दी। बापूजीने कहा: 'नतीजा देखा न? दूधमें बाल रह गया।' उस दिन बापूने दूध नहीं लिया। बाको बहुत क्लेश रहा। उन्होंने कहा: "किसीको करने न दूँ, तो उसका दिल दुखता है और करने देती हूँ, तो काम ठीक नहीं हो पाता। दिन-रात एक-सी सिरपच्ची करना, और पेटमें देखो तो एक जूनका भी जुगाड़ नहीं।"

इसलिए आम तौर पर बाने रिवाज यह रखा था कि काम दूसरोंने किया हो, तो भी बरतन भलीभाँति साफ़ हुए हैं या नहीं, चीज़ अच्छी तरह

बनी है या नहीं, सो वे .खुद ही देख लेती थीं और .खुद ही बापूजीके पास ले जाती थीं। और, चीज़ खानेकी हो या पीनेकी, जब तक बापू उसे खा-पी न लें, बा उनके पास ही बैठी रहतीं। इसके बाद वे यह देख लेतीं कि बरतन ठीकसे साफ़ होकर जगह पर रखे गये हैं या नहीं। कभी किसी लड़कीने बरतन मले हों और वे अच्छी तरह साफ़ न हुए हों तो बा .खुद उन्हें दुबारा साफ़ कर लेतीं। बरतनोंको हमेशा चमकीले रखनेकी बाको आदत ही थी।

बापू सबेरे कोई ७ बजे घूमने निकलते हैं। उस समय बा अपने स्नान वग़ैरा कामोंसे निपट लेतीं और पूजा-पाठ में बैठतीं। घी के दीये और अगरबत्तीकी धूपके साथ क़रीब एक घण्टा गीताजीका और तुलसी-रामायणका पाठ करतीं। इसके बाद बा रसोईघरमें पहुँच जातीं। रसोईघरमें कहाँ क्या हो रहा है, इसे वे तुरत एक निगाह देख लेतीं और किसीको कुछ सुझाना होता, तो सुझातीं। रसोईघरमें कोई चीज़ खुली पड़ी हो, फ़ाज़िल साग-सब्ज़ी, फ़ाज़िल फल वग़ैरा बिगड़नेकी हालतमें हों, तो बा उन्हें फ़ौरन ही देख लेतीं। वे बहुत स्पष्टवक्ता थीं, इसलिए जिसको जो कहना होता, साफ़ साफ़ कह देतीं। मुँहसे हाँ-हाँ कहने और अपने अंगीकृत कामको भलीभाँति न करनेवालोंके लिए बाकी बड़ी नाराज़ी रहा करती थी। इसलिए नये आये हुए लोगोंको कभी-कभी बाकी बातका बुरा भी लग जाता। बा चाहती थीं कि तमाम चीज़ें और कपड़े वग़ैरा सभी कुछ ठीकसे जमाकर अपनी जगह रखे जाने चाहियें। कहीं कुछ बेठिकाने देखतीं, तो बा .खुद उसे सहेजने लग जातीं। बाकी किसी बातसे किसीके नाराज़ होने की खबर बापू तक पहुँचती, तो वे कहते: "अगर बाके पास थोड़ा-बहुत कडुआ नीम है, तो मीठी शकरकी तो इफ़रात ही है।"

जैसा कि अभी कहा है, बापूजीका भोजन तो बा .खुद ही तैयार करतीं या किसी औरने करनेका ज़िम्मा लिया हो, तो .खुद वहाँ खड़ी रहतीं। बापूके लिए बनाई गई .खस्ता रोटी एक गोल डिब्बेमें रखी जाती है। सभी रोटियाँ डिब्बेमें बराबर जमाकर रखी गई हैं या नहीं, सभी एकसे आकारकी हैं या नहीं, कोई मोटी-पतली तो नहीं है,

किसीकी किनार तो फटी नहीं है, अधिक सिकनेसे किसी पर दाग़ तो नहीं पड़ गया है, या कोई कच्ची तो नहीं रह गई है, उसमें नमक और सोडा ठीक पड़ा है या नहीं, सो सब बा .खुद ही देख लेतीं। बा स्वयं रसोई बनानेके काममें बहुत ही निपुण थीं। इसलिए जब वे .खुद 'खाखरे' (खस्ता रोटी) बनातीं, तब तो वे आदर्श 'खाखरे' बनते और बापूको भी पता चल जाता कि आज 'खाखरे' बाने बनाये हैं।

भोजनकी घंटी बजती और सब भोजनालयमें आ पहुँचते। तब बापूजीको और खास मेहमानोंको परोसकर बा बापूजीके पास ही खाने बैठ जातीं। उस वक़्त भी उनकी एक निगाह तो बापूकी तरफ़ ही रहती। बापूके पास एक मक्खी भी आते देखतीं, तो उनका बायाँ हाथ पंखेको सँभाल ही लेता। खानेके बाद बा बापूके साथ भोजनालयसे उनके कमरेमें आतीं और जब बापू अखबार पढ़ने लगते, तो वे उनके तलवोंमें घी मलतीं। जब बापूकी आँख लग जाती, तो बा उठकर अपने कमरेमें जातीं और ज़रा देर लेटतीं। १५–२० मिनटके बाद उठकर मुँह धोतीं और .खुद अखबार पढ़तीं।

यों, बाकी गिनती कम पढ़-लिखोंमें और राजकाजको न जाननेवालोंमें की जायगी। लेकिन बा अखबारोंके ज़रिये और बातचीतके मारफ़त देशकी मौजूदा हालतसे .खूब परिचित रहती थीं। गुजरात काठियावाड़की खबरें जाननेके लिए वे बिलानाग़ा 'वन्देमातरम्' और 'गुजरात-समाचार' पढ़ा करती थीं। हर हफ्ते 'हरिजन-बंधु' आता। बा उसे भी रोज़ थोड़ा-थोड़ा करके शुरू से अखीर तक पढ़ जातीं, ताकि जुदा-जुदा कार्यक्रमोंके बारेमें उन्हें बापूजीके विचार जाननेको मिल सकें। अखबार पढ़कर दुनियाकी मुसीबतों व तकलीफ़ोंसे बाको बहुत दुःख होता। एक बार इस लड़ाईके बारेमें बाने कहा: "कौन जाने, यह लड़ाई तो दुनियाको तबाह करके ही बन्द होगी?" बंगालके भीषण अकालकी खबरें पढ़कर बाने आगाखान महलसे लिखे पत्रमें लिखा: "बंगालके समाचार सुनकर तो दिल फटता है। वहाँ तो आसमान फट पड़ा है। न जाने, ईश्वर क्या कर रहा है?"

बचपनमें तो बा पढ़ न सकीं, लेकिन बादमें उन्हें पढ़नेका शौक़ हो गया था। हर दिन एक–आध घंटा तो वे किसी-न-किसीके पास बैठकर कुछ-न-कुछ पढ़ा करतीं। राष्ट्रभाषाके नाते हिन्दुस्तानीकी अच्छी जानकारी होनी चाहिये, इस खयालसे वे कई दफ़ा हिन्दीका अभ्यास करतीं। या कभी किसीकी मददसे तुलसीरामायणका अथवा गीताजीका अभ्यास करतीं। गीताजीके श्लोकोंको सही-सही पढ़ने और उन्हें ज़बानी याद करनेकी वे बराबर कोशिश करती रहतीं। अखीर-अखीरमें उन्होंने आगाखान महलमें बापूसे गीताजीके श्लोकोंका शुद्ध उच्चारण सीखना शुरू किया था। जब ७५ सालकी बा ७५ सालके बापूके सामने बैठकर एक निष्ठावान् शिष्यके-से उत्साहसे गीता सीखती होंगी, तो वह दृश्य कितना अद्‌भुत रहता होगा? बा जो भी कुछ सीखना शुरू करतीं, बहुत श्रद्धाके साथ सीखतीं, और इतनी उम्र हो जानेके बाद भी विनम्र विद्यार्थीकी तरह सीखने बैठतीं। उन्हें कुछ लिखनेको दिया जाता, तो उसे भी वे छोटे विद्यार्थी जिस तरह अपना सबक़ तैयार करके लाते हैं, उसी तरह दूसरे दिन लिखकर लातीं और कितनी ही ग़लतियाँ क्यों न हुई हों, उन्हें सुधार कर दुबारा लिखनेमें वे उकताती नहीं थीं।

अखबार और पढ़ाईके कामसे फुरसत पाकर वे कातने बैठतीं। हररोज़ ४०० से ५०० तार बराबर कातती। कताई उनकी तभी रुकती थी जब वे बीमारीकी वजहसे बिछौनेमें पड़ी हों। बीमारीसे उठने पर कमज़ोर रहने पर भी वे कताई शुरू कर देतीं। आश्रममें प्रार्थनाके बाद रोज़ किसने कितना सूत काता, इसका लेखा लिखा जाता है। बा उसमें ज़्यादा सूत कातनेवालोंमें होतीं।

इतना करते–करते चारका समय हो जाता और बा फिर रसोईमें पहुँच जातीं। वहाँ बापूका खाना तैयार करतीं या करातीं और दूसरे कामोंको भी एक निगाह देख जातीं। ५ बजे बापूजी खाने बैठते तब उनके पास बैठतीं। कई सालोंसे बाने शामका खाना छोड़ रखा था। सिर्फ़ कॉफी पी लेती थीं और पिछले कोई चार सालोंसे तो कॉफी भी छोड़ दी थी। दूधमें तुलसी और काला मिर्च डालकर उसे थोड़ा उबालतीं और पी लेतीं।

शामको जब बापू घूमने जाते, बा आश्रममें कोई बीमार रहा, तो उसके पास जाकर बैठतीं। और फिर दूसरी बहनोंके साथ वे भी घूमने निकलतीं और आश्रमसे कुछ दूर जाने पर जब बापू सामनेसे आते मिलते, तो उनके साथ लौट आतीं।

घूमकर आनेके बाद शामकी प्रार्थना होती। उसमें बा तो रहतीं ही। शामकी प्रार्थनामें रामायण गाई जाती, और उसमें भी बा बराबर शामिल होतीं।

प्रार्थनाके बाद कुछ देर तक बा सब बहनोंके साथ बातचीत करतीं और फिर अपने और बापूके सोनेकी तैयारीमें लग जातीं। सोनेसे पहले बापूके सिरमें तेल मलनेका काम क़रीब-क़रीब अखीर तक वे ही नियमित रीतिसे करती रहीं। सुबह फिर ४ बजे उठतीं और वही चक्र बराबर चलता रहता।

इस तरह बाकी दिनचर्यामें बापूकी परिचर्या उसका एक ख़ास अंग थी। इसके बारेमें मीराबहन लिखती हैं:

"मैंने भी कई सालों तक बापूकी सेवा-चाकरी की है। इस बीच मुझे बाके अद्भुत गुणोंका दर्शन हुआ है। अक्सर यह होता कि बापूकी निजी ज़रूरतोंकी ख़बरदारी रखनेका काम सिर्फ़ हम दोनों पर आ पड़ता। बापूके तूफ़ानी दौरोंमें तो बहुतेरी अड़चनें और कठिनाइयाँ रहतीं, लेकिन बा अचूक नियमिततासे, बिना थके, इस कामको बड़ी ख़ूबीके साथ किया करतीं। बापूके लिए खाना तैयार करने और उनकी मालिश करनेका काम तो वे अपने ही हाथमें रखतीं। उसमें जहाँ-तहाँ थोड़ी मदद मुझसे भी ले लेतीं। कपड़े धोने और सामान बाँधने-खोलनेका काम मेरे ज़िम्मे था। लेकिन उसमें भी बाकी पैनी नज़र बराबर मेरे काम पर बनी ही रहती। बा मानो कभी थकती ही नहीं थीं। सभाओं और मुलाक़ातोंमें बापूको रात कितनी ही देर क्यों न हो जाय, बा उनके सिरमें तेल मलने और उनके थके-माँदे शरीरको दबानेके लिए उनकी राह देखती बैठी ही रहतीं। और फिर सुबह चार बजे प्रार्थनामें हाज़िर रहकर पुनः बापूकी सेवामें लग जातीं। वे ग़ैरज़रूरी

बातें करके बापूका वक़्त कभी खराब नहीं करतीं। बापूके आसपासके सभी लोगोंमें वे बापूको कम-से-कम तकलीफ़ देतीं और उनकी ज्यादा-से-ज्यादा सेवा करतीं।

"अन्त-अन्तमें जब वे बीमार रहने लगीं, तो बापूका काम ख़ुद नहीं कर पाती थीं, लेकिन उस पर निगरानी रखनेका अपना काम तो उन्होंने ठेठ अखीरी घड़ी तक नहीं छोड़ा था। जब आगाखान महलमें उनकी तबियत बड़ी तेज़ीके साथ खराब हो रही थी, वे एक कमरेसे दूसरे कमरेमें चलकर जा भी नहीं सकती थीं, तब उन्हें पहियोंवाली कुर्सीमें बैठाकर घुमाना पड़ता था। एक दिन वे बरामदेमें अपने बिछौने पर लेटी-लेटी बापूको शामका भोजन करते देख रही थीं। अन्दर कमरेमें जानेका वक़्त हो चुका था। इसलिए वह पहियेदार कुर्सी लेकर मैं बाके पास पहुँची और मैंने कहा: 'बा चलिये, अन्दर जानेका वक़्त हो गया है।' बाने जवाब दिया: 'जरा ठहरो, बापूजी खा चुकें तो चलें।' इस तरह बीमारीके बिछौने पर पड़े-पड़े भी उनका जी बापूजीकी सेवामें रहता था।"

बाके समान निष्ठावान् परिचारिकाकी कमी बापूको आजकल कितनी खटकती है, उसका कुछ खयाल नीचेकी दो घटनाओंसे आ सकेगा।

बिलकुल अभी-अभीकी बात है। एक दिन मैं बापूके पास बैठी थी। उनका खाना रोज़ ठीक ११॥ बजे आता है, लेकिन उस दिन ११।।।को आया। इस पर खाना लानेवाली बहनसे बापूने कहा: "हमें यह समझ लेना है, कि बा हमेशा यहाँ मौजूद ही हैं। बा ठहरे हुए वक़्तसे एक मिनटकी भी देर करके खाना नहीं लाती थीं, और अगर किसी दूसरेको यह काम सौंपा हो और एक मिनटकी भी देर हो जाय तो, वे 'धड़फड़' करने लग जातीं। फ़ौरन उठकर रसोईमें जातीं और वहाँ एक ही हल्ला मचा देतीं। आगाखान महलमें वे बीमार थीं और उनसे कुछ हो नहीं पाता था, तब भी वे घड़ीके काँटे पर नज़र रखतीं और वक़्त पर मेरा खाना न आता, तो शोर मचा देतीं। मैं कहता, कि यहाँ कौन वक़्तकी पाबन्दी करनी है? थोड़ी देर भी हो गई, तो क्या हुआ? तो बा फ़ौरन ही जवाब देतीं, 'लेकिन मैं जानती हूँ न कि

आप यहाँ भी अपने वक़्तका पूरा ख़याल रखते हैं, तो फिर थोड़ी भी देर क्यों होनी चाहिये ?'

इधर-इधर दोपहरके भोजनके बाद बापू पैरोंमें घीकी मालिश करवानेसे इनकार करते थे। सभी लड़कियाँ घी मलनेका आग्रह करने लगीं, तब बहुत ग़मगीन आवाज़में बापूने कहा: "मुझे घी मलवाना था, तो बा मर क्यों गईं ?"

बापूकी टहल करनेवाले तो बहुत हैं, लेकिन बा-की-सी लगन और भावना दूसरे कहाँसे लावें ? अगरचे सबोंके आग्रह पर बापूने फिरसे घी मलवाना शुरू तो किया।

* * *

बा काफ़ी नियमित रीतिसे अपनी डायरी लिखती थीं। उनकी डायरीके कुछ नमूने नीचे दिये हैं।

१९३३की लड़ाईके दिनोंमें बा गाँवोंमें घूमती थीं। उस समयकी उनकी डायरीसे :

सोजित्रा,
ता० २८-१-'३३

६ बजे उठी। प्रार्थना। नित्यकर्म। रावजीभाईके घर गई। सब बहनोंसे मिली। बातचीत। आराम। अख़बार पढ़ा। लिम्बासीके लिए रवाना हुई, वहाँके भाई-बहनोंसे मिलकर उनके सुख-दुःखकी बातें सुनीं। वापस लौटी। मलातज आकर सो गई।

मलातज,
२९-१-'३३

६॥ प्रार्थना। नित्यकर्म। पत्रिका सुनी। बापूको पत्र लिखा। खाँधली और त्राणजा जाकर वापस आई।

मलातज,
३०-१-'३३

६॥ प्रार्थना। नित्यकर्म। कन्याशाला और अन्त्यजोंकी बस्तीमें जाकर हरिजनोंसे मिल आई। वे धन्धा वग़ैरा क्या करते हैं, सो सब देखा। बादमें प्रार्थना की।

४–२–'३३

५ बजे उठी। प्रार्थना। नित्यकर्म। ८ बजे परिषद्‌का प्रोग्राम था उसमें ७ बहनें पकड़ी गईं। बादमें थाने पर ले जाई गईं। नाम लिख लिये। फिर भोजनके लिए पूछा। गाँवसे खाना आया। भोजन किया। स्टेशनके लिए रवाना हुईं। १२ बजे कठाणा स्टेशन पर उतरीं। फ़ौजदारने आकर पानी वग़ैराके लिए पूछा। बादमें स्टेशन पर ही बैठाया। नाम लिखे और वारण्ट तैयार किये। फिर तीन बजे गाड़ीमें बैठीं। बोरसद जाते हुए रास स्टेशन पर भाई बहन मिलने आये थे। ५ बजे बोरसद पहुँचीं। मुक़दमा चलाकर 'लॉक-अप' में लायें। मैजिस्ट्रेटसे मिली। प्रार्थना।

साबरमती जेलकी डायरीसे :

१६–२–'३३

जिस दिन मैं यहाँ आई, मीराबहन उसी दिन सबेरे आ गई थीं, इससे आनन्द हुआ। हम दोनों साथ रहती हैं। मैं और मीराबहन ठीक ४की आवाज़ पर प्रार्थना करती हैं। उसके बाद सो जाती हूँ। फिर नित्यकर्म। नहाना–धोना वग़ैरा। कॉफी पीना। १०–१०॥को सुपरिण्टेण्डेण्ट रोज़ आता है। सुबह डॉक्टर आता है। ११ बजे भोजन। १ घंटा आराम। २ से ४॥ तक हिन्दी लिखना-पढ़ना और चरखा कातना। ५॥को भोजन। फिर घूमना। ७ बजे प्रार्थना। पढ़ना, बातचीत। और ९ बजे सो जाना।

२१–२–'३३

४ बजे प्रार्थना। गीता पढ़ती हूँ, अनासक्तियोग। फिर थोड़ी देर सो जाती हूँ। नित्यकर्म। ६॥ बजे नहाने जाती हूँ। लौटकर कॉफी पीती हूँ, फिर पढ़ती हूँ। 'जामे जमशेद' पढ़ती हूँ। ११॥ भोजन। आराम। २ से ५ पढ़ना। कातना। भोजन। तार हमेशा ३०० काते।

१६–४–'३३

४ बजे प्रार्थना। गीता पढ़ी। नित्यकर्म। ४०० तार काते। अखबार पढ़ा। ११॥ भोजन। काता। पढ़ा, लिखा। मैं यहाँ भी एकादशी

करती हूँ । आराम । फिर हिन्दी और गुजराती लिखना, पढ़ना । कॉफी पी । बातें कीं । यहाँ कोई नयी बात नहीं है । शामको प्रार्थनाके बाद भागवत सुनती हूँ । आजकल मीराबहन चन्द्रमा, पृथ्वी, सूर्य, सबके बारेमें सिखाती हैं ।

३–५–'३३

४ बजे प्रार्थना । गीता पढ़ी । नित्यकर्म । कॉफी पी । अखबार पढ़ा । भोजन । कल अखबारसे पता चला कि बापूजी हरिजनोंके लिए दूसरा उपवास करनेवाले हैं । ८–५–'३३को सोमवारके दिनसे शुरू होगा। गांधीजीका अपने अनुयायियों परसे विश्वास उठ गया है । बापूजीके पास जानेकी बहुत चिन्ता बनी रहती है । बापूजीका यह सवाल, यह तपश्चर्या, बहुत कठिन है ।

८–५–'३३

४ बजे प्रार्थना । गीता पढ़ी । आजसे बापूजीका महायज्ञ शुरू होता है । हमने यहाँ प्रार्थना की थी । आशा रक्खी थी कि मुझे बापूजीके पास ले जायँगे, लेकिन आज तीसरा उपवास हो चुका है, मुझे बुलाया नहीं । आजकल तो अखबारकी राह देखती हूँ कि उसमें क्या होगा? 'हरिजन' पढ़ा । मन तो बेचैनका बेचैन ही रहता है ।

१०–५–'३३

कल रामदास मिलने आया था । इस बार मेरे नसीब फूट गये हैं । नहीं तो मुझे क्यों न ले जाते? क्या करूँ? बहुत चिन्ता होती है । इस बार भी मैं दूर हूँ । मैंने बापूजीको तार किया कि मुझे आपके पास आना है, यहाँ मेरा जी बहुत घबराता है । उनका तार आया, धीरज रक्खो । फिर दूसरा तार आया कि हम सरकारसे इजाज़त नहीं माँग सकते, शान्ति रक्खो । फिर तो मैं कातती थी । प्रार्थना करती थी और कुछ अच्छा ही नहीं लगता था ।

बाको बापूजीके पास लेजानेके बादकी डायरीसे :—

१६–६–'३३

४ बजे प्रार्थना । गीतापाठ होता है । फिर नित्यकर्म । ५॥ बजे बापूको खाना दिया । दूध वग़ैरा । ६॥के बाद मैं नहाने जाती हूँ ।

लौटकर तुलसीको पानी सींचा। लालजीके दर्शन करके कॉफी पी। लाल दवाके कुल्ले किये। ९ बजे बापूजीको खाना दिया। फिर मिट्टीकी पट्टी बाँधी। ११ बजे भोजन। १२ बजे बापूजीको खाना दिया। फिर आराम। पैरोंमें घी मला। काता—तार २००।

९—७—'३३

४ बजे प्रार्थना। गीताजी। फिर नित्यकर्म। बापूको खाना दिया। यहाँ और क्या काम है?- बापूजीके सिवाय दूसरा कोई नहीं है। बालकृष्ण बापूजीका काम .खूब करता है। और प्रभावती तो उनके पाससे हटती ही नहीं। केशू भी खड़ा रहता है। फिर मैं क्या करूँ? बापूजीके पास जाती हूँ और लौट आती हूँ। उन सबके बीच बैठना मुझे अच्छा नहीं लगता। काता।

१७

कर्मयोगी बा

गीताजीमें कहा है कि **योगः कर्मसु कौशलम्**। इस अर्थमें बा सचमुच कर्मयोगी थीं। एक मिनट भी बेकार बैठे रहना उनके लिए अस्वाभाविक हो गया था। तिस पर .खुद जो काम करतीं, उसे .खूब कुशलतासे और व्यवस्थित रीतिसे करती थीं। अगर यह कहें कि व्यवस्थाकी तो वे मूर्ति ही थीं, तो ग़लत न होगा। कोई चीज़ अपनी जगह पर न हो, तो बाकी निगाह उस पर गये बिना न रहती। "यह चीज़ यहाँ क्यों पड़ी है? यहाँ कोई झाड़ता-बुहारता नहीं क्या?" वग़ैरा सवाल उनके मुँहसे निकले बिना रहते ही नहीं, और वे .खुद ही सारी चीज़ोंको क़रीनेसे जमाने लग जातीं। जब बापूकी कुटियामें जातीं, तो वहाँ भी उनकी नज़र बापूके बरतनों, खड़ाऊँ, चप्पल, घड़ी, कपड़े, वग़ैरा पर गये बिना न रहती। घड़ी और चप्पलको पोंछकर उनकी जगह रख देतीं। बरतन बिना मले पड़े रह गये हों, तो .खुद जाकर माँज लातीं। बाकी इस पैनी दृष्टिके कारण उनके आसपासवालोंको बहुत चौकन्ना रहना पड़ता।

आश्रमवासियोंमें भी किसीने कपड़े ठीकसे न पहने हों, बाल ठीकसे न सँवारे हों, तो बा सहज भावसे कह उठतीं: "कपड़े ठीकसे क्यों नहीं पहने? यह क्या जैसे-तैसे — लथर-पथर — लपेट लिया है? बाल क्यों नहीं सँवारे?" वग़ैरा। बा ख़ुद तो व्यवस्थित थीं ही, लेकिन दूसरोंसे भी वे उतनी ही उम्मीद रखती थीं। इस वजहसे जब बाके लिए रोटी या साग बनाना होता, तो बनानेवालेको ख़ूब सावधान रहना पड़ता। लड़कियाँ तो इस कारण बासे डरा भी करतीं। बा ज़्यादा तो कुछ कहती नहीं थीं, मगर टीकाका एकाध शब्द ज़रूर कह दिया करतीं।

इस उम्रमें भी बामें आलस्यका नाम नहीं था। बाको अलसाकर सोते तो किसीने शायद ही कभी देखा हो। उनका उद्यम आजकलके नौजवानोंको भी शरमानेवाला था। कभी रसोईमें, तो कभी साग काटनेमें, और कभी कातनेमें, यों, एकके बाद एक उनका काम चलता ही रहता।

बाके लिए पाख़ानेका जुदा बन्दोबस्त कर देनेका सबका बहुत आग्रह होने पर भी वे गरमी हो, सरदी हो या बारिश हो, हमेशा सार्वजनिक पाख़ानेका ही उपयोग करतीं। रातका 'पॉट' भी ख़ुद ही साफ़ कर लिया करतीं। बाके कमरेमें उनके साथ हमेशा दो-तीन लड़कियाँ तो होतीं ही, लेकिन बा अपना थोड़ा-सा भी काम उन लड़कियोंसे न करवातीं। उल्टे, कभी किसी लड़कीको देर हो जाती, तो ख़ुद ही कमरा साफ़ करने लग जातीं। सुबह उठकर दतौनके लिए गरम पानी भी ख़ुद रसोईघरमें जाकर ले आतीं। दतौनको अपने हाथों ही कूट भी लेतीं। पिछले ५–६ सालसे तो बाकी तन्दुरुस्ती बहुत ही गिर गई थी। बापू रोज़ बासे कहते: "तेरी इतनी सारी लड़कियाँ हैं, फिर तू क्यों इतनी दौड़-धूप करती है?" जब बीमार होतीं, थोड़े दिनके लिए बा दूसरोंसे काम ले लिया करतीं, लेकिन ज़रा अच्छा मालूम होते ही फिर ख़ुद ही उठकर करने लगतीं। जब वे देखतीं कि फलाँ आदमी सच्चे दिलसे काम करनेको तैयार है, तो उसे कभी–कदास कोई काम सौंपतीं, और वह काम भी ऐसा होता कि जिसे वे ख़ुद न कर पातीं।

बा बहुत ही स्पष्टवक्ता थीं। नये आनेवालोंको कभी–कभी इससे बुरा लग जाता। लेकिन कुछ दिनोंके अन्दर बाके स्वभावको जान लेनेके

बाद उनकी भाषामें मिठास मालूम होने लगती। बापूजीने कई दफ़ा कहा है: "मेरे और बाके निकट सम्पर्कमें आनेवाले लोगोंमें ऐसे लोगोंकी तादाद ही ज्यादा है, कि जिन्हें जितनी श्रद्धा मुझ पर है, उससे कई गुनी ज्यादा श्रद्धा बा पर है।" एक दिन घनश्यामदासजी बिड़लाने मेरे पिताजीसे विनोदपूर्वक कहा: "आपके आश्रममें सभी थोड़े-बहुत 'चक्रम' (खब्ती) तो हैं ही। मेरे पिताजीने पूछा, "क्या बापू भी?"

जवाबमें उन्होंने कहा: "हाँ, हाँ, वे तो और सबसे बड़े। साबरमती आश्रमका तो मुझे बहुत तजरबा नहीं है, लेकिन सेवाग्राममें मुझे तो एक बा और दूसरी दुर्गाबहनको छोड़कर और कोई समझदार आदमी नज़र नहीं आता!" बाको अपने नाते-रिश्तेदारों और बेटों-पोतोंके लिए सहज ही .खूब प्रेम था। बाने तो अपना जीवन बापूको, यानी आश्रमको, सौंप दिया था, इसलिए आश्रम ही उनका घर था। कभी किसी लड़केके घर जाती जरूर थीं, लेकिन कुछ ही दिनोंमें वापस आ जाती थीं। आश्रम तो सार्वजनिक पैसोंसे चलता है, ऐसी हालतमें बच्चोंको कुछ दिनके लिए अपने पास बुलाना हो, या किसीके बीमार होने पर उसे अपने पास रखकर इलाज कराना हो, तो क्या किया जाय? बापूने इसका रस्ता निकाला। बच्चे आवें, रहे. और आश्रममेंसे किसीकी सेवा लें, तो आश्रमको उसका खर्च दे दिया करें। यह तो हम आसानीसे सोच सकते हैं, कि बाको यह चीज़ कितनी दुखदायी मालूम हुई होगी। दादा-दादीके घर तो बच्चे मौज मनाने जाते हैं। बच्चोंको देखकर दादी तो उन पर वारी-वारी जाती है। तहाँ ये दादा तो बच्चोंको एक जून मुफ़्त खिलाते भी नहीं। लेकिन धन्य है बाको! उन्होंने बापूकी इस बातको भी मंजूर किया। जब बच्चे जानेको होते, बा .खुद ही आश्रमके व्यवस्थापकसे कह देतीं: "देखिये, अब ये लोग जानेवाले हैं, इन पर जो भी खर्च हुआ हो, उसका बिल इन्हें दे दीजियेगा।"

सन् १९२८की बात है। साबरमती आश्रमकी ज़मीनसे कुछ दूर एक बँगला था। वहाँ चर्मालयका प्रयोग शुरू किया गया और एक आश्रमवासी भाई कुछ मज़दूरोंके साथ वहाँ रहने गये। एक दिन सुबह खबर आई कि लुटेरोंकी एक टोलीने वहाँ रहनेवाले लोगोंको मारपीटकर

उनका सारा सामान लूट लिया है । ग़रीब मज़दूरोंके घरमें धन–दौलत तो क्या होती ? लेकिन इस घटनासे वे घबरा गये और उस जगह रहनेसे इनकार करने लगे । बापूने कहा : "तो हम बिना मज़दूरोंसे ही अपना काम चलावेंगे ।" सभी मज़दूरोंको रुख़सत दे दी गई । शामकी प्रार्थनामें बापूने इत्तला दे दी कि कलसे हम सबको गोशालाका काम करना है ।

दूसरे दिन निश्चित समय पर दूसरोंके साथ बा भी गोशालामें पहुँचीं । गोशालाके व्यवस्थापक सोचमें पड़ गये कि बाको क्या काम दें ? बा समझ गईं । उन्होंने सरलतासे कहा : "काम क्यों नहीं बताते ? गायोंके लिए 'गवार' नहीं दलनी है ?"

व्यवस्थापक बोले : "लेकिन बा आपको—"

बा : "नहीं, नहीं, लाओ ।"

और बा जाकर चक्कीपर बैठ गईं ! फिर गाती-गाती 'गवार' दलने लगीं ।

१९३१में एक बार बा वेड़छी आश्रम गईं थीं । आश्रमके व्यवस्थापकने सोचा था कि बा आकर खटिया पर बैठेंगी और सभाका वक़्त होनेपर सभामें आएँगी। इसीलिए खटिया तैयार रखी थी । आते ही बासे कहा गया : "बैठिये ।" लेकिन बा क्यों बैठने लगीं ? वे तो सीधी रसोई-घरमें गईं और रसोई बनानेमें मदद करने लगीं । व्यवस्थापककी पत्नी दंग रह गईं : 'इतनी बड़ी बा हमें रसोईमें मदद करती हैं ?' उन्होंने कहा : "बा, आप रहने दें, मैं अभी बना लूँगी ।" लेकिन बा क्यों छोड़ने लगीं ? वे बोलीं : "सौ हाथ, सुहावनी बात । अभी रसोई बना डालेंगी और फिर एक साथ सभामें चलेंगी" और सचमुच उन्होंने ऐसा ही किया ।

किसी दिन सुबह या शामको रसोईके वक़्त आम सभाका या ऐसा कोई दूसरा कार्यक्रम होता, तो बा रसोईघरमें काम करनेवालोंसे कहतीं : "तुम सब जाओ । तुम छोटे हो । तुम्हें देखने और घूमनेकी इच्छा रहती है । रसोईका काम मैं कर डालूँगी ।"

१९४१में बा मरोली गई थीं । वहाँसे वे सेवाग्राम आनेवाली थीं । सब उनकी राह देख रहे थे । एक बहन तो बासे मिलनेके लिए ही ख़ास तौर पर ठहरी हुई थीं । सुबहकी गाड़ी निकल गई । शामको बम्बईसे

गाड़ी आनेवाली थी। उन बहनने बापूसे पूछा: "बा इस गाड़ीसे तो आयेंगी न?" बापूने कहा: "अगर बा अमीरोंकी — पैसेदारोंकी — होंगी, तो इस गाड़ीसे आयेंगी और ग़रीबोंकी बा होंगी तो सूरत होकर 'ताप्तीवेली' से सुबह आयेंगी।" और सचमुच बा दूसरे दिन सुबह 'ताप्तीवेली' से ही आईं और अपने आप यह साबित हो गया कि बा खुद ग़रीबोंकी बा हैं।

सेवाग्राममें एक दिन एक लड़की बीमार पड़ी। बीमार बालिकाकी सेवा-चाकरीके लिए एक बहन थीं, जो उसका कमोड वग़ैरा साफ़ करतीं और उसे दवा देतीं। एक दिन परिचारिका बहन उस लड़कीका कमोड साफ़ करना भूल गईं। शाम हुई। शामको बाने कमोड देखा। बिना कुछ बोले-चाले वे ख़ुद कमोड साफ़ कर लाईं। एक स्नेहमयी माता अपने छोटेसे परिवारमें खपे-खटे और यों खपने-खटनेमें ही अपनेको सुखी माने, सो तो हमें कई घरोंमें देखनेको मिलता है। लेकिन बा अपने इस बहुत बड़े परिवारमें भी उतनी ही स्वाभाविकतासे खपतीं-खटतीं और उसमेंसे आत्म-सुख अनुभव करती थीं। कर्मयोगी नामके लिए उनसे ज्यादा लायक और कौन हो सकता है?

१८

हरिलालभाई

बा और बापूके समूचे जीवनमें हरिलालभाईकी कथा बहुत करुण है। हरिलालभाई इनके जेठे लड़के हैं। १९ सालकी उमरमें जब बापू बैरिस्टर बननेके लिए विलायत गये थे, तब हरिलालभाईको बहुत छोटा छोड़कर गये थे। बापू अक्सर कहते हैं कि हरिलालका जन्म (सन् १८८८) तब हुआ था, कि जब मैं मोहवश या मूर्च्छित दशामें था।* और जिस समयको मैंने हर तरह अपना मूर्च्छा-काल, वैभव-काल माना है, उसका वह साक्षी है। उसे उन सब बातोंकी याद रह जाय, इतनी

* देखिये परिशिष्टमें बाके नाम बापूका पाँचवाँ पत्र।

उमर उस वक़्त उसकी थी । इसलिए उस समयके मेरे जीवनके संस्कार उस पर पड़े हैं । संस्कारोंकी यह बात चाहे जैसी हो, मगर हरिलालभाईने बापूके खिलाफ़ जो बग़ावत की, उसकी खास वजह तो, जैसा कि हरिलालभाई कहते हैं, यह है कि बापूने .खुद उनको और उनके भाइयोंको न सिर्फ़ ठीक-ठीक तालीम ही नहीं दी, बल्कि अपने पास रहनेवाले दूसरोंको, जब वे पढ़ाईके अच्छेसे-अच्छे मौक़े देते थे, तब उन्होने जान-बूझकर अपने निजके लड़कोंको शिक्षाके अवसरोंसे वंचित रखा । हरिलालभाईका खयाल है कि उनकी बग़ावतकी जड़में यह अन्याय है । बाने अपनी सादी किन्तु दूरतक पैठनेवाली व्यावहारिक समझदारीसे बहुत-सी उलझनोंको सुलझानेमें बापूकी मदद की है, लेकिन हरिलालभाईके मामलेमें बा विशेष कुछ कर नहीं सकीं ।

सन् १८९७की जनवरीमें जब बापू बाके साथ डरबन पहुँचे, तो उनके साथ तीन बालक थे । १० सालकी उम्रका एक भांजा, ९ सालके हरिलालभाई और ५ सालके मणिलालभाई । बापूने .खुद ही लिखा है कि, इन्हें कहाँ पढ़ाना, यह उनके सामने एक बड़ा विकट सवाल था । गोरोंके लिए चलनेवाले मदरसोंमें गांधीके लड़कोंके नाते बतौर मेहरबानीके या अपवादके उन्हें भरती किया जा सकता था । लेकिन दूसरे सब हिन्दुस्तानी बालक जहाँ न पढ़ सकें, वहाँ अपने बालकोंको भेजना बापूको पसन्द न था । ईसाई मिशनके मदरसोंमें भेजनेके लिए बापू तैयार न थे । तिसपर, गुजरातीके ज़रिये तालीम दिलानेका आग्रह था और इसका कोई इन्तज़ाम किसी मदरसेमें नहीं था । घर पर पढ़ानेवाला कोई अच्छा गुजराती शिक्षक मिल नहीं सका । बापू .खुद पढ़ानेकी कोशिश करते, लेकिन कामकी वजहसे उसमें बहुत अनियमितता आ जाती । बापूका अपना एक खयाल यह भी था कि बच्चोंको मा-बापसे अलग नहीं रहना चाहिये । क्योंकि जो तालीम अच्छे, व्यवस्थित घरमें बालक सहज पा जाते हैं, वह छात्रालयोंमें नहीं मिल सकती । इसीलिए वे बच्चोंको वापस हिन्दुस्तान भेजना भी नहीं चाहते थे । फिर भी भांजेको और हरिलालभाईको कुछ महीनोंके लिए देशके अलग-अलग छात्रावासोंमें रखकर देखा । लेकिन कुछ ही समयमें उन्हें वापस बुला लेना पड़ा ।

हरिलालभाईको इस बातका बड़ा दुःख था कि उनकी पढ़ाईका कोई पक्का इन्तज़ाम नहीं हो सका। यही नहीं, बल्कि बड़ेपनमें भी इसके लिए उनके मनमें बापूके प्रति रोष बना रहा। "बापूने अच्छी शिक्षा पाई है, तो वे हमको अच्छी शिक्षा क्यों नहीं दिलाते? बापू सेवाभावकी, सादगी और चारित्र्यके निर्माणकी बातें करते हैं, लेकिन जो शिक्षा उन्हें मिली है, वह न मिली होती, तो देश-सेवाके जो काम वे आज कर सकते हैं, उन्हें कर सकते क्या? हम भी पढ़-लिखकर इसी तरह देश-सेवाके काम करेंगे और अपनी शक्तियोंका विकास करनेके बाद सादगी वगैरा भी रखेंगे। सादा और सेवापरायण जीवन बितानेके खिलाफ़ हमें कुछ कहना नहीं है। लेकिन अनपढ़ रहकर हम किस तरह सेवा कर सकेंगे, सो हमारी समझमें नहीं आता।" यह हरिलालभाईकी तमाम दलीलोंका निचोड़ था।

मि० पोलाक और मि० कैलनबेकका भी कुछ हद तक ऐसा खयाल था कि बापू अपने बच्चोंकी शिक्षाके बारेमें लापरवाह रहते हैं। मि० पोलाक बहुत चुभती भाषामें बापूसे कहते कि आप अपने बालकोंको अच्छी अंग्रेज़ी तालीम न देकर उनका भविष्य बिगाड़ रहे हैं। मि० कैलनबेकका यह खयाल था कि टॉल्स्टाय आश्रममें और फिनिक्स आश्रममें दूसरे शरारती, गन्दे और आवारा लड़कोंके साथ बापू अपने लड़कोंको शामिल जो होने देते हैं, उसका एक ही नतीजा होगा, कि उन्हें आवारा लड़कोंकी छूत लगेगी और वे बिगड़े बिना न रहेंगे। बाको भी इस बातका असन्तोष बना रहता था, कि बापू लड़कोंकी शिक्षाकी कोई चिन्ता नहीं करते। हरएक माताकी यह महत्त्वाकांक्षा होती ही है कि उसके बच्चे बड़े बनें और नाम कमायें, फिर भले वे कैसे ही क्यों न हों? तिसपर ये तो ख़ूब चालाक और तेजस्वी बालक थे। इसलिए बाकी महत्त्वाकांक्षा सकारण थी। इन सब फरियादोंके जवाबमें बापू शिक्षाके सिद्धान्तोंको और जीवनके ध्येयकी अपनी फिलॉसफी पेश करते। मि० पोलाक और मि० कैलनबेक सिर हिलाते और बा मन मारकर बैठ रहतीं।

सन् १९०४से बापूने अपने जीवनमें जो, क्रान्तिकारी परिवर्तन करने शुरू किये थे, वे भी शायद हरिलालभाईको अच्छे न लगे हों।

लेकिन इस बातकी उन्हें ज़्यादा परवाह नहीं थी। वे ऐसे न थे कि बापूके धन न कमाने पर नाराज़ हों। उन्हें अपने पिताकी कमाई पर ज़िन्दगी नहीं गुज़ारनी थी। उनको तो पढ़-लिखकर अपनी निजकी मेहनतसे ही बड़े बननेकी हवस थी। आखिर जब उन्होंने देखा कि बापूके ही ऑफिसमें मुंशीका काम करनेवाले मि० रिच और मि० पोलाक बापूकी मदद और उनके बढ़ावेसे इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टर बन आये हैं, और दूसरे दो हिन्दुस्तानी सज्जन मि० जोसफ रॉयपन, और मि० गॉडफ्रे भी बापूकी प्रेरणासे विलायत गये और बैरिस्टर बनकर अपने धन्धेसे लग गये, और इसके बाद सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल होनेवाले एक पारसी नौजवान श्री सोहराबजी अडालजाको बापूने ख़ुद बैरिस्टर बननेके लिए विलायत भेजा, इस ख़यालसे कि बापूकी गैरहाज़िरीमें सोहराबजी क़ौमकी खिदमतका काम सँभाल लेंगे,— दुर्भाग्यसे इस होनहार नौजवानका असमयमें अवसान हो गया — तब तो हरिलालभाईसे नहीं रहा गया। उस वक़्त उनकी उम्र कोई २०–२१ सालकी थी। दक्षिण अफ्रीकाकी सत्याग्रहकी लड़ाईमें उन्होंने ख़ासा हिस्सा लिया था और तीन दफ़ा जेल भी हो आये थे। वे सोचा करते थे कि दूसरे जिन नौजवानोंको बापू बैरिस्टर बनने देते हैं, या बननेमें मदद करते हैं, उनकी-सी लियाकत मुझमें नहीं है क्या? आखिर उन्होंने बग़ावत करके पिताका साथ छोड़ने और देशमें आकर पढ़नेका निश्चय किया। बेशक बापू अपने विचारोंमें दृढ़ थे, लेकिन पुत्रका यह सब समझाकर उसे अपने साथ न रख सके, इसका दुःख, इसकी बेचैनी, उन्हें कुछ कम न थी। इस अवसर पर बाकी क्या दशा हुई होगी; इसकी तो कल्पना करना भी कठिन है। बापूके सामने तो एक बड़े सिद्धान्तका सवाल था और पुत्रने उनका जो त्याग कर दिया था, उसके दुःखको सह लेनेमें सिद्धान्तपालनका आश्वासन भी उनके पास तो था। लेकिन बाके पास क्या था? बा तो चाहती थीं कि पुत्रको प्रचलित शिक्षा मिले। लेकिन बापूके सिद्धान्तके कारण वे पुत्रके लिए ऐसी शिक्षाकी कोई व्यवस्था कर नहीं सकती थीं। पति और पुत्रके बीच उनका दिल कितना टूटा होगा? उन्होंने कितनी बेचैनीका अनुभव किया होगा? कितनी आकुल-व्याकुल वे रही होंगी?

हरिलालभाईने हिन्दुस्तान आकर पढ़ाई शुरू की। बापूने उनके खर्चका सारा इन्तज़ाम कर दिया। लेकिन हरिलालभाई पढ़ाई पूरी नहीं कर सके। पढ़ाईके दिनोंमें काकाकी और दूसरे नाते-रिश्तेदारोंकी सलाह और मददसे उन्होंने अपनी शादी की और एक दो बार मैट्रिकमें नापास होनेके बाद पढ़ाई छोड़ दी और काम-धन्धेसे लग गये। धन्धेमें उन्होंने अच्छी कामयाबी पाई। फिनिक्स आश्रमके अपने साथियोंको लेकर बापूके हिन्दुस्तान आने पर कुछ दिनों बाद उन्होंने बापूके नाम एक पत्र लिखा: "मेरे पिताजी, मि० एम० के० गांधी, बार-एट्-लॉके नाम खुला पत्र," इस नामसे, एक छोटी पुस्तिकाके रूपमें, उन्होंने अपना वह पत्र छपवाया था। मेरा खयाल है कि अखबारोंमें वह पत्र नहीं छपा। लेकिन १९१७में मेरे पिताजीके आश्रममें दाखिल होनेके बाद हरिलालभाईसे ही उन्हें वह पढ़नेको मिला था। उस पत्रका सार देते हुए वे इस प्रकार लिखते हैं:

"उस पत्रकी लिखावट और उसकी दलीलोंको पढ़कर हरिलालभाईकी शक्तियोंके बारेमें मेरा ऊँचा खयाल बन गया था। बापूके हाथों बाके साथ, अपने छोटे भाइयोंके साथ और ख़ुद अपने साथ जो अन्याय हुआ था, उसका वर्णन करके हरिलालभाईने उसमें अपना रोष व्यक्त किया है और बापूसे यह अनुरोध किया है कि 'आपने मुझे न पढ़ाया, न सही; लेकिन अब मेरे भाइयोंको पढ़ाइये।' व्रतोंके लिए बापूके शौक़को देखकर आश्रममें जो भी कोई व्रत लेता — अलोना खाता, एक बार खाता या फलाहार करता — वह किस तरह बापूका लाड़ला बन जाता, ऐसोंको बापू किस तरह एकदम ऋषि, मुनि, तपस्वीकी बड़ी-बड़ी उपाधियाँ दे डालते और किस तरह उन तपस्वियोंको और सबोंकी टीका करनेका परवाना मिल जाता, इसका उन्होंने दिलचस्प वर्णन किया है। आश्रम-जीवनके नये जोशमें आकर कठोर व्रतों और नियमोंका पालन करनेवाले और फिर कुछ ही समयमें उन तमाम व्रतों और नियमोंको व आश्रमको भी छोड़कर चले जानेवाले लोग जब बाके बारेमें टीका करते और कहते कि 'बा तो चीनी ज़्यादा खाती हैं' या 'बाको तो कॉफी पीनेके लिए चाहिये,' तो यह सब सुनकर उन्हें कितना ग़ुस्सा आता, इसका भी उन्होंने वर्णन

किया है । दूसरे, मणिलालभाई या रामदासभाईको जब उनकी पढ़ाईके समयमें दूसरोंके काम सौंपे जाते और वे उस पर अपना कुछ असन्तोष प्रकट करते, तो बापू उनसे कहते: तुम ...की चाकरी करते हो, यही तुम्हारी उत्तम पढ़ाई है । जो आदमी अपना फ़र्ज़ अदा करता है, वह हमेशा ही पढ़ता है । तुम कहते हो कि पढ़ाई छोड़नी पड़ती है । लेकिन दरअसल ऐसा है ही नहीं । तुम सेवा करते हुए भी अभ्यास ही करते हो । अक्षरज्ञान तो बादमें भी हासिल किया जा सकता है, लेकिन सेवाका अवसर बादमें आवेगा ही, इसका कोई निश्चय नहीं । इस तरहकी बातें कहकर नाहक़ उन्हें बड़प्पन देते हैं, और उनको अपनी पढ़ाई आगे नहीं बढ़ाने देते । कहावत मशहूर है, कि 'वर मरो, कन्या मरो, मेरी गोदका भाड़ा भरो'। बस, ठीक इसी तरह आश्रममें सब कोई बरतते हैं — 'कुछ भी हो, मगर बापूजीको .खुश करो ।' वग़ैरा बातें लिखकर आश्रममें उनको जिस दम्भके दर्शन हुए थे, उसको भी उन्होंने खोला है ।

"यह समूचा पत्र मैंने क़रीब २५ साल पहले एक बार पढ़ा था । उसमेंसे मुद्देकी जो बातें याद रह गई हैं, सो तुझे लिखी हैं । वैसे पत्र तो बहुत लम्बा है । अपने इस पत्रमें उन्होंने यह भी बताया है कि पढ़ाईके दिनों ही में किस तरह उन्होंने अपनी शादी कर ली और फिर पढ़ नहीं पाये ।"

बापू पर यह आक्षेप किया जाता है कि उन्होंने अपने बालकोंकी पढ़ाईका ठीक-ठीक प्रबन्ध नहीं किया । इसके बारेमें बापूने अपनी सफ़ाई और इस सम्बन्धकी अपनी विचारधाराका आत्मकथामें विस्तारसे वर्णन किया है, इसलिए यहाँ उसे दोहराना ज़रूरी नहीं । लेकिन बाकी विचारधारा कुछ बापूके जैसी नहीं थी, इसलिए बाके खयालसे तो यह बड़े दुःखकी ही बात थी ।

जिन दिनों हरिलालभाईने वह पत्र लिखा था, उन दिनों बहुत करके वे कलकत्तामें किसी तरहका कोई व्यापार करते थे । सन् १९२०में उनकी धर्मपत्नी सौ० गुलाबबहन गुज़र गईं । उस वक़्त तक हरिलालभाईका जीवन कुछ ठीक रहा । १९१९के रौलट सत्याग्रहमें सैनिकके नाते उन्होंने अपना नाम भी दर्ज कराया था । लेकिन गुलाबबहनके गुज़र जानेके बाद हरिलालभाई ग़ैर रास्ते चल पड़े । बापूने और बाने उनको ठीक रास्ते

लानेकी बहुत कोशिशें कीं, लेकिन कोई नतीजा न निकला। वे मुसलमान बन गये। फिर लौटकर आर्यसमाजी बने, ये सारी बातें तो दुनिया जानती ही है। हरिलालभाईके दो पुत्रों (इनमेंसे एक गुज़र गये हैं) और दो पुत्रियोंको बाने अपने पास रखकर ही पाला-पोसा और अपने मनको मनाया। लेकिन जब उन्होंने हरिलालभाईके मुसलमान होनेकी बात सुनी, तबके उनके दुःख और दर्दका वर्णन करना सम्भव नहीं। हरिलाल-भाईको लिखे गये उनके नीचे लिखे पत्रमें वह कुछ-कुछ व्यक्त हुआ है।

"चि० हरिलाल,

"मेरे सुननेमें आया है कि कुछ समय पहले मद्रासमें, आधी रातको, आम रास्ते पर, शराबके नशेमें ऊधम मचानेके कारण पुलिसने तुझे पकड़ा था और दूसरे दिन मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया जाने पर उन्होंने तुझे १ रुपयेके .जुर्मानेकी सज़ा की थी। तुझपर उन्होंने यह जो इतनी दया दिखाई, इससे पता चलता है कि वे बहुत ही भले आदमी होने चाहिएँ। तुझे ऐसी नाम-मात्रकी सज़ा देकर मजिस्ट्रेटोंने भी तेरे पिताके लिए अपने सद्भावको प्रकट किया है। लेकिन इस घटनाका ब्योरा सुननेके बाद मुझे तो बहुत ही दुःख होता रहा है। मैं नहीं जानती कि उस रातको तू अकेला था, या तेरे किन्हीं मित्रोंके साथ था। लेकिन तेरा यह आचरण तो सचमुच बहुत ही अनुचित था।

"मुझे सूझ नहीं पड़ता कि मैं तुझसे क्या कहूँ? पिछले कई सालोंसे मैं तुझे बराबर मनाती रही हूँ कि तू अपने जीवन पर अंकुश रख। लेकिन तू तो दिन-बदिन ज्यादा ही ज्यादा बिगड़ता जाता है। अब तो मेरे लिए जीना भी कठिन हो पड़ा है। अपने माता-पिताको तू उनके जीवनकी सन्ध्याके दिनोंमें कितना दुःख पहुँचा रहा है, इसका तो तनिक विचार कर।

"तेरे बापूजी इस बारेमें कभी किसीसे बातचीत नहीं करते, लेकिन तेरे चाल-चलनसे लगनेवाले आघातोंके कारण उनका दिल चूर-चूर हुआ जाता है। हमारी भावनाको यों बार-बार दुखाकर तू एक बड़ा पाप कर रहा है। हमारे घर पुत्रकी तरह पैदा होकर तू दुश्मनकी तरह बरत रहा है।

"मेरे सुननेमें आया है कि इधर-इधर तू अपने बापूकी बहुत टीका और निन्दा करने लगा है। तेरे समान बुद्धिशाली पुत्रको यह शोभा नहीं देता। अपने बापूजीकी निन्दा करके तू अपनी ही पोल खोलता है, इसका तुझे ज़रा भी खयाल नहीं है। उनके दिलमें तेरे लिए सिवा प्रेमके और कुछ भी नहीं है। तू जानता है कि चारित्र्यकी शुद्धताको वे बहुत ही महत्त्व देते हैं। लेकिन तूने उनकी इस सलाहको तनिक भी नहीं माना। इतना होने पर भी उन्होंने तो तुझे अपने साथ रखनेकी, तेरे खाने-पीने और पहनने-ओढ़नेकी ज़रूरतोंको पूरा करनेकी, और तेरी सार-सँभाल रखनेकी भी अपनी तैयारी बताई है। लेकिन तू तो सदा कृतघ्न ही रहा है। इस दुनियामें उनके सिर कितनी बड़ी ज़िम्मेदारियाँ हैं। वे इससे अधिक कुछ तेरे लिए कर नहीं सकते। वे तो सिर्फ़ अपनी इस कमनसीबीके लिए शोक ही कर सकते हैं। भगवानने उनको प्रबल इच्छाशक्ति दी है। उनके जीवनकी अभिलाषाओंकी पूर्तिके लिए ईश्वर उनको आवश्यक दीर्घायु दे। लेकिन मैं तो एक कमज़ोर व बूढ़ी स्त्री हूँ, और तू जो मानसिक व्यथा पैदा करता है, उसे सहनेमें असमर्थ हूँ। तेरे बापूजीको हररोज़ कई लोगोंकी तरफ़से तेरे चाल-चलनके बारेमें शिकायती चिट्ठियाँ मिलती हैं। बदनामीके ये सारे कड़वे घूँट उन्हें पी जाने पड़ते हैं। लेकिन मेरे लिए तो तूने जाने लायक एक भी जगह नहीं रखी। शरमकी मारी मैं मित्रों या अजनबियोंके बीच घूम-फिर भी नहीं सकती। तेरे बापूजी तो तुझे हमेशा माफ़ करते ही रहते हैं। लेकिन परमात्मा तेरे आचरणको सहन नहीं करेगा।

"मद्रासमें तो तू किन्हीं इज्ज़तदार और जाने-माने सज्जनके घर मेहमानकी तरह ठहरा था, लेकिन उनके घरको छोड़कर तूने आम रास्ते पर ऐसा दुर्व्यवहार करके उनकी मेहमानदारीका दुरुपयोग किया है। अपने इस व्यवहारसे तूने उनको कितना नीचा दिखाया होगा? हररोज़ सुबह जागती हूँ, तब दिलमें यही धुक-धुकी बनी रहती है, कि कहीं तेरे किसी नये दुराचरणकी कोई ताज़ा खबर तो नहीं आई है। मैं अक्सर सोचती हूँ कि तू कहाँ रहता होगा? कहाँ सोता होगा? क्या खाता होगा? शायद तू न खानेकी चीज़ें भी खाता होगा। ऐसे-ऐसे

अनेक विचारोंके कारण कई-कई रात मुझे नींद भी नहीं आती। कई बार दिल होता है, कि तुझसे मिलूँ, लेकिन मुझे तो यह भी पता नहीं कि तू कहाँ मिल सकता है। तू मेरी पहली कोखका लड़का है, और तेरी उमर भी ५० सालकी हो गई है। कहीं तू मेरी भी बेइज़्ज़ती न कर दे, इस आशंकासे तेरे पास आनेमें भी मैं डरती हूँ।

"मैं नहीं जानती कि तूने अपने पैदाइशी धर्मको क्यों बदला है। यह तेरा अपना निजी सवाल है। लेकिन मैं सुनती हूँ कि तू निर्दोष और अज्ञान लोगोंको अपनी राह चलनेकी सलाह दे रहा है। तुझे अपनी मर्यादाका भान कब होगा? धर्मके बारेमें तू जानता क्या है? तेरे बापूजीके नामकी वजहसे लोग तेरे कहने पर ग़लत रास्ते बहक जायँगे। तू धर्म-प्रचार करनेके योग्य नहीं। तू तो पैसेका ग़ुलाम बन गया है। जो लोग तुझे पैसा देते हैं, वे तुझे अच्छे लगते हैं। लेकिन तू तो शराबखोरीमें सारा पैसा बरबाद कर डालता है। और फिर सभाके मंच पर खड़ा होकर भाषण करता है। तू अपने आपका और अपनी आत्माका हनन कर रहा है। अगर तू ऐसा ही करता रहा, तो वक़्त आयेगा, जब सभी तुझसे दूर भागेंगे। इसलिए मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ कि तू शान्तिके साथ विचार करके अपनी इस मूर्खताको छोड़ दे। तेरा धर्म-परिवर्तन मुझे अच्छा नहीं लगा था, तो भी तूने अपने जीवनको सुधार लेनेके अपने निश्चयके बारेमें जो बयान दिया था, उससे मैंने संतोष माना था और आगे तू समझदारीके साथ अपना जीवन बितायेगा, इस विचारसे मन-ही-मन मैं ख़ुश भी हुई थी। लेकिन मेरी यह आशा भी धूलमें मिल गई है। कुछ ही वक़्त पहले बम्बईके तेरे कुछ पुराने मित्रों और शुभचिन्तकोंने तुझे पहलेसे भी ज्यादा बुरी हालतमें देखा था। तू जानता है कि तेरे आचरणसे तेरे पुत्रको कितना दुःख होता है। साथ ही, तेरे इस विचित्र व्यवहारसे उत्पन्न होनेवाले शोकके भारको ढोना तेरी लड़कियों और दामादोंके लिए दिन-ब-दिन ज्यादा मुश्किल होता जा रहा है।"

हरिलालभाईके धर्म-परिवर्तनमें और उसके बादकी उनकी हलचलोंमें दिलचस्पी लेनेवाले मुसलमान भाइयोंको सम्बोधन करके बा लिखती हैं:

"मैं आपके कामको समझ नहीं पाती। जो मेरे पुत्रकी मौजूदा हलचलोंमें अमली तौरपर हाथ बँटा रहे हैं, उन्हींको सम्बोधन करके मैं यह कहती हूँ। मैं जानती हूँ, और मुझको यह खयाल करके .खुशी होती है कि विचारशील मुस्लिम जनताके बहुत बड़े हिस्सेने और हमारे ज़िन्दगी भरके मुसलमान दोस्तोंने इस सारी घटनाकी निन्दा की है। आज उस महापुरुष, डॉक्टर अनसारी की कमी बहुत ज्यादा खटकती है। वे होते, तो उन्होंने मेरे लड़केको और आप लोगोंको भी बहुत नेक सलाह दी होती। लेकिन उनके जैसे दूसरे कई प्रतिष्ठित और भले लोग आपमें मौजूद हैं, और मैं उम्मीद करती हूँ कि वे आपको मुनसिब सलाह देंगे ही। इस तथाकथित धर्म-परिवर्तनसे मेरा लड़का सुधरनेके बदले बुरी आदतोंका और ज्यादा शिकार बन गया है। आपको चाहिये कि आप उसे उसकी बदफेलीके लिए उलाहना दें और उसे अच्छी राह पर लायें। कुछ लोग तो मेरे लड़केको मौलवीका उपनाम देनेकी हद तक बढ़ गये हैं। क्या यह वाजिब है? क्या आपका मज़हब शराबीको मौलवी कहनेकी इजाज़त देता है? मद्रासमें उसकी उस तूफ़ानी हरक़तके बाद भी कुछ मुसलमान उसे स्टेशन पर बिदाईकी इज्ज़त बख्शनेको इकट्ठा हुए थे।

"इस तरह उसको इतना ज्यादा बड़प्पन देनेमें आपको क्या .खुशी होती है, सो मैं समझ नहीं पाती। अगर आप उसको अपना सच्चा भाई ही मानते होते, तो उसके साथ आपका बरताव ऐसा न होता। क्योंकि आपका बरताव उसके लिए ज़रा भी फ़ायदेमन्द नहीं है। अगर आपका इरादा दुनियामें हमारी हँसी करानेका ही हो, तो मुझे आपसे कुछ भी कहना नहीं है। आपसे जो बन पड़े, आप कर सकते हैं। लेकिन एक घायल माँकी कमज़ोर आवाज़ आप पर अपना असर रखनेवाले किन्हीं भाईके अन्तःकरणको जाग्रत करेगी और मुमकिन है कि वे आपको समझा सकेंगे। लेकिन जो बात मैं अपने लड़केसे कह रही हूँ, उसीको दोहराकर आपसे कहना मैं अपना फ़र्ज़ समझती हूँ, और कहती हूँ, कि आप जो कुछ कर रहे हैं, वह .खुदाकी नज़रोंमें वाजिब नहीं ठहरता।"

बाको अपने लड़केके लिए दर्द और हमदर्दी होना स्वाभाविक है। यों, हरिलालभाई बा और बापूको छोड़कर चले तो गये, लेकिन बाके लिए तो उनके दिलमें भी बहुत ही इज्ज़त और मुहब्बत रही। वे यह सोचा करते कि राजरानी बननेके लिए जनमी हुई बासे बापू नाहक़ इतनी तकलीफ़ें उठवाते हैं। बासे मिलनेके लिए वे कभी-कभी आश्रममें भी आते थे। जब उनकी हालत बहुत ही ख़राब हो गई, तब शायद उन्हें आश्रममें आते हिचक मालूम होने लगी। लेकिन इससे बाके लिए उनका प्रेम कम कैसे होता? एक बार वे बहुत ही बुरी — बेहाल — हालतमें बासे मिले थे। उस समयकी एक बहुत ही करुण घटना है, जिससे बाके प्रति उनके भावका साफ़ पता चलता है।

एक बार बा और बापू ट्रेनका सफ़र कर रहे थे। जब जबलपुर मेल कटनी स्टेशन पर पहुँचा, तो वहाँ दूसरे स्टेशनोंसे बिलकुल अलग एक जयनाद सुनाई पड़ा: "माता कस्तूरबाकी जय!" बाको सहज ही इससे थोड़ा अचंभा हुआ। उन्होंने खिड़कीकी राह मुँह बाहर निकालकर देखा, तो सामने हरिलालभाई खड़े थे।

एक ज़मानेका तन्दुरुस्त शरीर बिलकुल जर्जर हो गया था। अगले दाँत सब गिर पड़े थे। कपड़े बिलकुल फटे हुए थे। खिड़कीके पास आकर उन्होंने अपनी जेबसे झटपट एक मोसंबी निकाली और कहा: "बा, यह तुम्हारे लिए लाया हूँ।"

इससे पहले कि बा जवाबमें कुछ कहें, बापूजी खिड़कीके पास आ पहुँचे। उन्होंने पूछा: "मेरे लिए कुछ नहीं लाया?"

हरिलालभाईने कहा: "नहीं, यह तो बाके लिए ही लाया हूँ। आपसे तो सिर्फ़ यही कहना है, कि बाके प्रतापसे ही आप इतने बड़े बने हैं।"

"इसमें तो कोई शक ही नहीं। लेकिन क्या तू अब हमारे साथ चलेगा?"

"नहीं, मैं तो बासे मिलने आया हूँ।"

बापू वापस अपनी जगह पर जाकर बैठ गये। माँ–बेटेकी बातचीत आगे चली:

"लो बा, यह मोसंबी।"

"कहाँसे लाया?"

"कहींसे भी लाया होऊँ। तुम्हारे लिए प्रेमपूर्वक लाया हूँ। भीख माँग कर लाया हूँ।"

बाने मोसंबी अपने हाथमें ले ली। लेकिन हरिलालभाईको इससे पूरा संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कहा:

"बा, यह मोसंबी आपहीको खानी है। आप न खायें, तो मुझे वापस दे दें।"

"रह, रह, यह मोसंबी मैं ही खाऊँगी।" कुछ देर तक उनको एकटक निरखनेके बाद बा फिर बोलीं: "तू अपने हाल तो देख! ज़रा यह तो सोच कि तू किनका लड़का है! चल, हमारे साथ चल।"

लेकिन इस अखीरी बातको खतम करना तो वे ख़ूब जानते थे। बोले:

"इसकी तो बात ही न करो, बा! मैं अब इस हालतसे उबर नहीं सकता।"

बाकी आँखें छलछला आईं। गार्डने सीटी दी। ट्रेन चली। चलते-चलते हरिलालभाईने फिर कहा: "बा, मोसंबी तो तुम ही खाना, भला!"

जब गाड़ी ज़रा आगे बढ़ी तो बाको अचानक याद आई कि उन्होंने तो उनको कुछ भी नहीं दिया। बोलीं: "अरे, बेचारेको फल-वल कुछ भी नहीं दिया! भूखों मरता होगा। देखूँ, अब भी कुछ दे सकूँ तो!"

डलियामेंसे फल निकालकर बाहर देखा, तो ट्रेन प्लेटफॉर्म पार कर चुकी थी।

दूर पर एक क्षीण अवाज़ सुनाई पड़ी:

"माता कस्तूरबाकी जय!"

१९

सार्वजनिक जीवनमें

दक्षिण अफ्रीकामें जेल जानेके सिवा बा वहाँके सार्वजनिक कामोंमें शरीक हुई हों, सो मालूम नहीं होता। लेकिन हिन्दुस्तानमें आनेके बाद बापूजीने जितने भी काम उठाये, उन सबमें बाने एक अनुभवी सैनिककी अदासे हाथ बँटाया है। बाको आम सभाओं, जुलूसों और इस तरहके दिखावोंका बिलकुल ही शौक़ नहीं था। लेकिन जहाँ रचनात्मक काम करना होता, अपनी हाज़िरी और हमदर्दीसे लोगोंको हिम्मत और 'हूँफ' देनी होती, वहाँ, वैसे कामोंके लिए बा तैयार रही हैं। बापूने हिन्दुस्तान आने पर सत्याग्रहकी पहली लड़ाई चम्पारनमें छेड़ी। कहा जा सकता है, कि उसमें सविनयभंग करनेके साथ ही फ़तह मिली। लेकिन बापूजीने महसूस किया कि चम्पारनमें ठीकसे काम करना हो, तो कुछ सेवकोंको देहातमें लोगोंके बीच जाकर बैठना चाहिये और सुख-दुःखमें उनके भागीदार बनकर उन्हें तैयार करना चाहिये। बिहार जैसे ग़रीब सूबेमें तनख्वाह लेकर काम करनेवाले सेवक पुसा ही नहीं सकते। और, जैसे-तैसे सेवकोंसे काम नहीं चल सकता। गाँववालोंके पास पैसे तो नहीं थे, लेकिन जिस गाँवमें लोग रहनेके लिए मकान और कच्चा अनाज देना मंज़ूर करें, वहाँ सेवकोंको बैठा देनेकी बात बापूने तय की। इस कामके लिए बापूने सार्वजनिक रूपसे स्वयंसेवकोंकी माँग पेश की। महाराष्ट्र और गुजरातसे संस्कारी और कुशल सेवक मिल गये। और, बापूने आश्रमसे भी कुछ भाई-बहनोंको वहाँ बुलवा लिया। गुजरातसे गई हुई बहनोंको गुजरातीका ही थोड़ा-बहुत ज्ञान था। वे बालकोंको हिन्दी कैसे सिखातीं? बापूने बहनोंको समझाया कि उन्हें बच्चोंको व्याकरण नहीं, बल्कि सभ्यजीवन सिखाना है; पढ़ना-लिखना सिखानेके बजाय सफ़ाईके नियम सिखाने हैं। आये हुए भाई-बहन दो-दो या तीन-तीनकी टुकड़ियोंमें बाँट दिये गये, और उन्हें गाँवोंमें बैठा दिया गया। भीतिहरवा नामके गाँवमें एक छोटे मन्दिरके महन्तकी मददसे मन्दिरकी अपनी थोड़ी धर्मादा ज़मीन पर एक

झोंपड़ा तैयार करके वहाँ एक मदरसा खोला गया था। बा और दूसरे दो भाई वहाँ रहने लगे।

इस मदरसेमें कम-से-कम सहूलियतें थीं। उस हिस्सेकी हवा भी अच्छी नहीं थी, और हिमालयकी तलहटीके ज्यादा नज़दीक होनेसे वहाँ जाड़ोंमें सर्दी भी बहुत पड़ती थी। रहनेके झोंपड़ोंकी छत पर सुबह रुईके पोलकी तरह ओस फैली और लदी नज़र आती थी। इन शारीरिक कष्टों और अड़चनोंके सिवा वहाँ पास ही जिस निलहे गोरेकी कोठी थी, वह सब गोरोंमें बदतर माना जाता था। इसी वजहसे बापूने बाको वहाँ रक्खा था। बा गाँवमें घूमने और दवा तक़सीम करनेका काम करती थीं, जो इस निलहे गोरेसे सहा नहीं गया। उसने अख़बारोंमें बेजा शिकायतें छपवाईं और लिखा: "मि० गांधी नंगे पैर घूमकर और कपड़ोंमें सादगी बरतकर लोगोंमें अंधश्रद्धा पैदा करते हैं और उससे फ़ायदा उठाना चाहते हैं; यही नहीं, बल्कि जब वे दूसरी राजनीतिक हलचलोंको चलानेके लिए बाहर चले जाते हैं, तब श्रीमती गांधी यहाँ लोगोंको भड़कानेका अपने पतिका काम ज़ारी रखती हैं।" वग़ैरा-वग़ैरा।

राजनीतिक मामलोंसे बिलकुल दूर रहनेवाली, केवल भूतदयासे प्रेरित होकर ही बीमारोंमें दवा बाँटनेका काम करनेवाली, देहातकी भाषासे बिलकुल अनजान, टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी बोल सकनेवाली, अंग्रेज़ी अख़बारोंमें किये गये आक्षेपोंके बारेमें, जब तक कोई उन्हें गुजरातीमें समझा न दे, बिलकुल अनजान रहनेवाली, यानी बहुत थोड़ी पढ़ी-लिखी बा, उस घमंडी निलहेको लोगोंमें उत्तेजना फैलानेवाली मालूम हुईं!

एक बार बा और उनके साथी गाँवोंमें घूमने गये। जब लौटे, तो देखा कि जिस झोंपड़ेमें वे रहते थे और जिसमें मदरसा लगता था, वे दोनों जलकर खाक हो गये हैं। सिवा राखके वहाँ उनका कोई निशान तक नहीं रह गया था। इसमें शक नहीं कि काममें रुकावट पैदा करनेकी ग़रज़से किसी द्वेषीने आग लगा दी होगी। बाका और उनके साथी श्री सोमणका तो आग्रह था कि मदरसा एक दिन भी बन्द न रहना

चाहिये । चुनाँचे सारी रात जागकर बाँस और घासका एक झोंपड़ा खड़ा कर लिया । बादमें वहाँ पक्का मकान बनाया गया, जो अभी क़ायम है ।

भीतिहरवाके पास ही एक छोटा-सा गाँव है । बापूजी घूमते-फिरते उस गाँवमें पहुँचे । वहाँ कुछ बहनोंके कपड़े बहुत ही गन्दे नज़र आये । बापूने बासे कहा कि वे उन बहनोंको कपड़े धोनेके लिए समझायें । बाने बहनोंसे बातचीत की । उनमेंसे एक बहन बाको अपनी झोंपड़ीमें ले गई और बोली : "आप देखिये, यहाँ कोई पेटी या आलमारी नहीं है, जिसमें कपड़े धरे हों । बदन पर यह जो साड़ी पहने हूँ, यही एक साड़ी मेरे पास है । इसे मैं किस तरह धोऊँ ? महात्माजीसे कहिये, वे कपड़े दिलावें, तो मैं रोज़ नहाने और रोज़ कपड़े बदलनेको तैयार ही हूँ ।"

बाने बापूसे सारी हक़ीक़त कही । भारतमाताकी इस हालतको देखकर बापूका दिल तड़प उठा !

* * *

खेड़ा सत्याग्रह

अभी चम्पारनका काम चल ही रहा था कि इतनेमें खेड़ा ज़िलेमें सत्याग्रह शुरू हुआ । उस वक़्त बा भी बापूके साथ खेड़ा ज़िलेके गाँवोंमें घूमती थीं । कभी बापूके साथ रहतीं और कभी अकेली भी घूमतीं ।

खेड़ा ज़िलेके तोरणा गाँवमें मामलतदारने एकाएक छापा मारकर तेईस घरोंमें ज़ब्तियाँ कीं । ज़ब्तीमें उन्होंने औरतोंके ज़ेवर, हण्डे, घड़े, देग, दुधार भैंसें वग़ैरा चीज़ें ज़ब्त कीं । बाको इसका पता चला और फ़ौरन ही वे तोरणावालोंके दुःखमें उनको ढाढ़स बँधानेके लिए वहाँ दौड़ी गईं । उनके जानेसे लोगोंकी ख़ुशीका पार न रहा, और औरतोंने तो सचमुच फूलोंकी वर्षा की ।

वहाँ औरतोंकी सभामें बाने लड़ाईके मर्म और धर्मको समझाते हुए एक छोटा मगर पुरअसर भाषण किया :

"हमारे मर्दोंने सत्यके लिए सरकारके साथ जो लड़ाई ठानी है, उसमें हमें उनको उत्साह दिलाना चाहिये । सरकारके दिये दुःखको सहना चाहिये । वह हमारा माल-असबाब उठाने आवे, तो उसे उठा ले जाने

देना चाहिये । वह हमारी ज़मीनें छीन ले, तो छीन लेने देना चाहिये । लेकिन सरकारको लगानकी एक पाई भी देकर झूठे नहीं बनना चाहिये। क्योंकि जब रिआया सरकारसे कहती है कि फ़सल नहीं हुई, तो सरकारको उस पर यक़ीन करना चाहिये । मगर वह न माने और सताये, तो हमें सब कुछ सह लेना चाहिये, लेकिन अपनी टेकसे डिगना न चाहिये । सरकारी नौकरोंसे मत डरिये, बल्कि धीरज रखिये और अपने भाइयों, पतियों और बेटोंको हिम्मत बँधाइये ।"

बाके इन सादे लेकिन उत्साह और प्रेरणा दिलानेवाले वचनोंसे लोगोंमें जोश आया और कई बहादुर औरतोंने बाको वचन दिया :

"जब आप हमारे लिए इतनी-इतनी तकलीफ़ें उठाती हैं, तो फिर हम किस लिए डरें? हम हिम्मत रखेंगी और सरकारको पैसा देंगी नहीं देंगी ।"

* * *

स्वराज्यकी पहली लड़ाईमें

सन् १९२२में बापूजीको गिरफ़्तार किया गया और छह सालकी सज़ा सुनाई गई। इस सज़ाकी बात सुनकर सारा देश संतप्त हो उठा । उस वक़्तका बाका संदेशा एक वीरांगनाको शोभा देने जैसा है :

"आज मेरे पतिको छह सालकी सज़ा हुई है । इस ज़बरदस्त सज़ासे मैं थोड़ी अस्थिर — बेचैन — हुई हूँ, सो मुझे मंज़ूर करना चाहिये। लेकिन हम चाहें, तो सज़ाकी मुद्दत पूरी होनेसे पहले ही उनको जेलसे छुड़ा सकते हैं ।

"सफलता पाना हमारे हाथकी बात है । अगर हम असफल हुए, तो इसमें दोष हमारा ही होगा । और इसीलिए मैं मेरे दुःखमें हमदर्दी रखनेवाले और मेरे पतिके लिए मुहब्बत रखनेवाले सभी स्त्री-पुरुषोंसे प्रार्थना करती हूँ कि वे रात-दिन लगे रहकर रचनात्मक कार्यक्रमको कामयाब बनायें । रचनात्मक कार्यक्रममें, यानी तामीरी काममें, चर्खा चलाना और खादी पैदा करना दो खास चीज़ें हैं । गांधीजीको दी गई सज़ाका जवाब हम इस तरह दें :

१. सभी औरत-मर्द परदेशी कपड़ा पहनना छोड़ दें और खुद खादी पहनें व दूसरोंको पहननेके लिए समझायें।

२. सभी औरत-मर्द कताईको अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझ लें, और दूसरोंको भी वैसा करनेके लिए समझायें।

३. सभी व्यापारी परदेशी कपड़ेका व्यापार करना छोड़ दें।"

बाके सच्चे दिलसे निकले इस पैगामका लोगों पर बहुत अच्छा असर हुआ। जगह-जगह परदेशी कपड़ेकी होलियाँ जलने लगीं। चर्खे गूँजने लगे और कुछ लोगोंने शुद्ध खादी पहननी शुरू की।

बापूको साबरमतीसे यरवड़ा ले गये। बाको दुःख तो बहुत हुआ, लेकिन वे अपनेको सँभाले रहीं। ऐसे समय बा अपने सच्चे रूपमें प्रकट हो उठती थीं। हमेशा कम बोलनेवाली और रसोईघर सँभालनेवाली बा सार्वजनिक कामोंके लिए इस तरह निकल पड़ीं कि कोई नौजवान भी क्या निकलेगा। वे कहतीं: "मुझे अब आश्रममें चैन नहीं पड़ता। अब तो मुझे, जितना बन पड़े, बापूका काम करना चाहिए। बापू कार्यकर्त्ताओंको गाँवोंमें और रानीपरज (आदिवासियों) के बीच बसनेको कह गये हैं। इसलिए मुझे भी गाँवमें ले चलो।" स्वर्गीय श्री दयालजीभाईकी माँके साथ बा विद्यापीठके चन्देके लिए सूरत ज़िलेमें और उधर नंदुरबार तक घूमीं। और, बारडोलीमें चर्खेके कामको गति देनेके लिए बैलगाड़ीमें बैठकर गाँव-गाँव घूमीं। जब कांग्रेसके अन्दर स्वराज्यवादी दल पैदा हुआ और बापूके रचनात्मक कामके बारेमें अच्छे-अच्छोंकी श्रद्धा डिग चुकी थी, तब भी बा अनन्त निष्ठासे और अविचल भावसे बापूके कार्यक्रममें श्रद्धा रखती थीं और अपने थोड़े शब्दों द्वारा लोगोंको प्रेरणा देती थीं:

"उमड़ते हुए जोशके समय तो सभी कोई साथ देता है। लेकिन जोश उतरनेके बाद भी जो टिके रहते हैं, वे पक्के हैं। दक्षिण अफ्रीकामें भी ऐसी ही नाउम्मेदी छा गई थी, लेकिन बहनें और खानोंमें काम करनेवाले मज़दूर निकल पड़े और जीत हुई। उसी तरह मैं तो सचमुच मानती हूँ कि आखिर सत्यकी जीत होनेवाली है।"

बाके ये शब्द लच्छेदार लेक्चर देनेवालोंके लेक्चरोंसे कहीं गहरा असर करते थे। उन्हीं दिनों बाने सोनगढ़ तहसीलके जंगलमें डोसवाड़ा मुक़ाम पर रानीपरजकी दूसरी परिषद्की सदारत की और हज़ारों आदिवासियोंसे शराब छुड़वाकर उनको चर्खा कातने और भजन करनेमें लगा दिया।

* * *

दाँडीकूच और धरासणा — '३०की लड़ाईमें

इस लड़ाईमें बाने जो हिस्सा लिया था, उसका बयान श्रीमती मीठुबहनके शब्दोंमें ही यहाँ दिया है:

"१९३०में दाँडीकूचके समय बहनोंने बापूसे पूछा कि इस बार हमें क्या करना चाहिए? बापूने कहा:

'तुम्हारे लिए मैंने एक सुन्दर काम ढूँढ़ रक्खा है। बहनोंको जेल नहीं जाना है, बल्कि विदेशी कपड़ेके बहिष्कारका और शराब-बन्दीका काम करना है। और ज़रूरत पड़े तो उसके लिए धरना — पिकेटिंग — भी देना है।'

"छठी अप्रैलको दाँडीमें नमक सत्याग्रहके बाद बापूने जो सभा की थी, उसमें इस चीज़पर खास तौरसे ज़ोर दिया था। नवसारीके पास बीजलपुरमें बहनोंकी एक खास सभा बुलाई गई थी। इस सभामें कोई चार-पाँच हज़ार बहनें हाज़िर थीं। अहमदाबाद और बम्बईसे भी कुछ अगुआ बहनें आई थीं। उस सभामें बापूकी सलाहसे 'स्त्री-स्वराज्य-संघ'की स्थापना की गई और सूरत शहर और ज़िलेमें विदेशी कपड़ेके बायकाट और शराब-बन्दीके लिए छावनियाँ डालनेकी एक योजना तैयार की गई। बहनोंकी मददके लिए बापूने गुजरातके मशहूर नेता डॉक्टर सुमन्त महेताको चुना और कहा: "आपको बहनोंकी रहनुमाई नहीं करनी है; रहनुमाई तो बा और मीठुबहन ही करेंगी। आपको तो सिर्फ़ मुनीमके नाते मददभर करनी है।"

मीठुबहनको इससे थोड़ा संकोच मालूम हुआ और उन्होंने बापूसे कहा: "आप हमारी ताक़तका बहुत ज़्यादा अंदाज़ लगाते हैं।" लेकिन बापू अपनी बात पर डटे रहे। क्योंकि बाकी तत्त्वनिष्ठा और काम करनेकी

शक्तिसे वे परिचित थे। बाके नाममें कुछ ऐसा खिंचाव था कि छावनीमें सैकड़ों बहनें भरती हो गईं। सूरत शहरमें, पिछड़ी कही जानेवाली क़ौमोंसे भी, सैकड़ों बहनें ज़िन्दगीमें पहली बार पब्लिक कामके लिए निकल पड़ीं। उन सबको हिम्मत और प्रेरणा बासे ही मिलती थी। 'बा कौन अंग्रेज़ी पढ़ी हैं? अगर वे यह काम कर सकती हैं, तो हम उनका साथ क्यों न दें?' बाके जीवनसे उनमें आत्मश्रद्धा पैदा हुई। नतीजा यह हुआ कि समूचे सूरत ज़िलेमें, जो अपनी शराबख़ोरीके लिए मशहूर है, शराबकी दूकानों पर एक चिड़िया तक नहीं फड़कती थी। सरकारको अपनी नीति और अपने क़ानून ताक़ पर रख देने पड़े और दारू-ताड़ीकी फेरी लगानेकी इजाज़त देनी पड़ी। अब तक सभ्यताका स्वाँग रचकर बैठी हुई सरकारने देहातमें इस बातकी पेशबन्दी की कि बहनोंको वहाँ छावनीके लिए कोई अपने मकान न दें। लेकिन बहनें डिगी नहीं। मँडवे बाँधकर उन्होंने उसमें अपनी छावनियाँ डालीं। जब मँडवे जलने लगे और बरतन-भाँडे ज़ब्त होने लगे तो बाने कहा: 'हम चटाइयोंके झोंपड़ोंमें रहेंगी और मिट्टीके बरतन रक्खेंगी। फिर देखें, वे क्या ले जाते हैं?'

बा छावनीमें थीं, तभी उनको बापूकी गिरफ़्तारीकी ख़बर मिली। यह ख़बर सुनकर उन्होंने देशवासियोंके नाम स्वदेशभक्तिसे छलकता हुआ यह सँदेशा दिया:—

"आज सुबह चार बजे मैं प्रार्थना कर रही थी, तभी मुझे बापूका स्मरण हुआ। रात हमारी छावनीके नज़दीकसे मोटरोंकी भागादौड़ी बहुत सुनाई पड़ती थी। इसलिए मनमें शक तो पैदा हो ही गया था। प्रार्थनाके बाद तुरन्त ही नवसारी छावनीसे ख़बर आई कि गांधीजीको वे आधीरातके वक़्त ले गये हैं।

"सुबह मैं कराड़ीकी छावनीमें हो आई। आश्रमवासियोंसे मिली। उनसे सुना कि दो मोटरोंमें हथियारोंसे लैस सिपाहियोंके साथ कुछ अफ़सर आये थे। गांधीजीके चारों ओर सिपाहियोंका घेरा डाल दिया गया था और कुछ देर तक तो किसी आश्रमवासीको भी उनके पास जाने नहीं दिया गया। कराड़ी गाँवके लोगोंको मालूम होते ही वे दौड़े आये, लेकिन कहते हैं, सिपाहियोंने उन्हें छावनीमें घुसने नहीं दिया। ये सारी बातें

सुनकर मुझे बहुत अफ़सोस हुआ। सरकारके पागलपन पर मुझे हँसी आई। गांधीजीको गिरफ़्तार करनेके लिए आधीरातके वक़्त डाका डालनेकी क्या ज़रूरत? उनको पकड़नेके लिए इस सारे लश्करी लवाज़मेकी क्या ज़रूरत?

"अब गांधीजी तो गये। यह सरकारकी महेरबानी है कि वह उन्हें इतनी देरमें ले गई। इन पाँच हफ़्तोंमें वे जितना कुछ हमें कहना चाहते थे, सब कह चुके हैं। उन्होंने हमारे लिए एक रास्ता आँक दिया है। भाइयोंको और बहनोंको उनका काम अलग-अलग सुझा दिया है। अब तो गांधीजी जो काम हमें सौंप गये हैं, उसे पूरा करना ही हमारा धर्म हो जाता है।

"मैं ईश्वरसे प्रार्थना करती हूँ कि इस घटनाके कारण देशमें कहीं कोई अशान्ति (बदअमनी) न हो! लोगोंसे भी मिन्नत करती हूँ कि वे अपनी भावनाओं और भक्तिकी बाढ़में बहकर पागल न बनें, बल्कि मरमिटनेकी अपनी साधको प्रबल बनाकर इस लड़ाईको ज़ारी रक्खें!

"सरकारी नौकरी करनेवाले भाइयो, आप अब कब तक अपनी नौकरीसे चिपटे रहेंगे? सिपाही अपने देशभाइयों पर लाठियाँ चलाते और गोलियाँ दागते हैं। उन्हें यह हिम्मत कैसे होती है? भाइयो, हिम्मतसे काम लो! भगवान् आपमेंसे किसीको भूखा नहीं रक्खेगा। पहले बेगुनाह और देशभक्तिमें पगे हुए बच्चों पर हाथ उठाना और फिर घर जानेके बाद आँखोंमें पानी भरकर लम्बी आहें छोड़ना, इससे फ़ायदा क्या? परमेश्वरका नाम लेकर हिम्मतसे काम लो और नौकरी छोड़ दो।

"आज इसके सिवा दूसरा और सँदेशा मैं क्या दूँ? परमात्मा हम सबको शक्ति दे!"

बापूजीकी गिरफ्तारीके बाद गुजरातके देशसेवक धरासणाकी ओर चल पड़े। सरकारने उनके साथ बहुत बेरहमी बरती। लाठियाँ चलाईं। नीचे गिराकर ऊपर घोड़े दौड़ाये। मुँहमें कपड़ा ठूँसकर खारे पानीमें डुबाया। कँटीली और तारोंवाली बागुड़ोंमें फेंक दिया। निहत्थे सैनिकों पर जितना कहर बरपा किया जा सकता था, किया। बाको इसका पता चला। वे वहाँ गईं। वहाँ जो कुछ देखा, उससे उनका दिल तड़प

उठा। एक पत्र-प्रतिनिधिको मुलाक़ात देते हुए उन्होंने जो करुण वर्णन किया है, उससे उनके उस समयके दुःखका थोड़ा अंदाज़ लगेगा:

"घायल स्वयंसेवकोंको देखने और उन्हें ढाढ़स बँधाने मैं वलसाड़के अस्पतालमें गई। बिछौनों पर पड़े हुए उन भाइयोंकी मरहमपट्टी और बैण्डेज वग़ैराका वह करुण (दर्दनाक) दृश्य देखकर मेरा दिल फटने लगा — रो पड़ा। पुलिसने उन पर जो ज़ुल्म ढाये हैं, उन्हें सुनकर मैं काँप उठी। मुझे कहना चाहिये कि मुझको दुःख तो हुआ, फिर भी ऐसी ज़बरदस्त तकलीफ़ें सहनेके बाद भी उन नौजवानोंने जिस देशभक्ति, वीरता और उत्साहका परिचय दिया था, उसे देखकर मेरा दिल ख़ुशीसे नाच उठा। सत्यके लिए ऐसे बलिदानका दृष्टान्त तो इतिहासमें अकेले एक हरिश्चन्द्रका ही मिलता है।

"चारों ओरसे ऐसे ज़ुल्मोंकी कहानियाँ आ रही हैं। इसलिए सब-कोई इस काममें एक-दूसरेकी सहायता करें और साथ दें तभी हमारा काम सफल हो। मुझे यह देखकर बहुत ही ख़ुशी हुई कि इतनी बड़ी तादादमें डॉक्टर और बहनें बीमारोंकी सेवा कर रही हैं।

"मुझे उम्मीद है कि मेरे जो देशभाई धरासणाकी करुण कहानी सुनेंगे, वे वाइसरायके नये काले क़ानूनोंकी मुख़ालिफ़त करनेके लिए दुगने उत्साहसे कर न देनेकी तहरीक चलायेंगे और साथ ही शराब-बन्दीका व परदेशी कपड़ेके बायकाटका काम ज़ारी रक्खेंगे।"

इस लड़ाईके दिनोंमें बीजलपुरमें जलालपुर तहसीलकी जो परिषद् हुई थी, उसका अध्यक्षपद बाने स्वीकार किया था। उसमें भाषण करते हुए उन्होंने कहा था:

"अपने देशके इतिहासके एक बहुत नाज़ुक मौक़े पर आज हम यहाँ इकट्ठा हुए हैं। इस वक़्त हमारे पास लम्बे-चौड़े भाषण करनेका समय नहीं है। इसलिए आजकी सभाका अध्यक्षपद देनेके लिए मैं बहुत थोड़ेमें आपका आभार माने लेती हूँ। इस वक़्त मुझे तो आपसे एक ही बात कहनी है, कि आपसके झगड़ोंको भूल जाइये। इस मौक़े पर सब एक हो जाइये। अगर एकके घर ज़ब्ती हो, तो समझिये, सबके घर हुई है। कोई ज़ब्तशुदा माल न खरीदे।

"अगर बहनें चाहें, तो वे इस लड़ाईमें पुरुषोंकी बहुत मदद कर सकती हैं। शराब, ताड़ी और परदेशी कपड़ेके बायकाटका काम तो बहनोंको ही करना है। हिम्मत दिलानेके मौक़ों पर बहनें भाइयोंको हिम्मत तो दिलायेंगी ही। लेकिन कभी स्वार्थवश कोई भाई सरकारकी मदद करने जायें, तो बहनें उन्हें चेतायें और ज़रूरत पड़ने पर उनके साथ असहयोग भी करें।

"बहनोंमें जितनी समझ होती है, उतनी पुरुषोंमें नहीं होती। क्योंकि बहनें दुःखकी भाषाको ज्यादा समझती हैं। धरासणाके अत्याचारोंसे बहनोंके दिलोंको चोट पहुँची है। जब-जब देशके हितके खिलाफ़ कोई भी हलचल शुरू हो, तब धारासणाको याद रखिये।

"इससे ज्यादा और मैं क्या कहूँ? मैंने जो कुछ कहा है, उस पर डट जानेकी और उसका अमल करनेकी ताक़त परमात्मा आपको दे और आप सबका कल्याण करे!"

इस लड़ाईके सिलसिलेमें दौड़ाधूपीकी वजहसे बाकी तन्दुरुस्ती गिर गई। बा मीठुबहनके साथ मरोली गाँवमें रहती थीं। एक दिन सबेरेकी प्रार्थना समाप्त करके सब नाश्ता करने बैठे थे कि इतनेमें डाकिया आया और एक तार दे गया। तारकी खबर जाननेको सभी बेताब हो उठे थे।

तार था: "हमें कस्तूरबाके साथकी ज़रूरत है।"

इस छोटे-से सँदेशेने सबको बेचैन कर दिया। बा तारका मर्म समझ गईं और नाश्ता छोड़कर झटपट जानेकी तैयारी करनेमें जुट गईं।

यह तार बोरसदसे आया था। बोरसदके बहादुर किसानोंने देशके खातिर अपना वतन, घर-बार, ढोर वग़ैरा सब कुछ छोड़कर हिजरत की थी। सरकारको लगान न देनेकी वजहसे उन्हें जेल जाना पड़ा था और मारपीट सहनी पड़ी थी। किसानोंके गुजारेका जो एक ही ज़रिया —ज़मीन—था, वह भी नीलाम किया जा चुका था।

लगान न देनेकी सलाह देनेवाली कुछ बहनों पर सरकारने लाठी चलाई थी। गाँवमें हाहाकार मच गया था। बहुतेरी बहनें घायल होकर

अस्पतालमें पड़ी थीं। गाँववालोंको हिम्मत बँधानेके लिए इन बहनोंने बाको तारसे बुलाया था।

"बा, आप यह क्या कर रही हैं?" मीठुबहन बाकी उतावली देखकर घबराईं, और इस फ़िकरसे कि इसकी वजहसे बाकी तबियत और खराब होगी, उन्होंने कहा: "आपमें ताक़त कहाँ है? बदनमें ख़ून नामको नहीं रहा, इसीलिए तो डॉक्टरोंने आपको आराम करनेकी सलाह दी है। आपकी ओरसे मैं बोरसद जाती हूँ। आप यहीं रहिये।"

"बहादुरीके साथ पुलिसकी लाठियोंको सहन करनेवाली बहनोंके बीच मुझे पहुँचना ही चाहिये। बापू होते, तो इस वक़्त उनके पास रहते, लेकिन वे आज आज़ाद नहीं हैं।" कम्बल और दूसरी ज़रूरी चीज़ोंको अपनी झोलीमें रखते हुए बाने जवाब दिया, और क़दम बढ़ाती हुई वे बोरसद जानेवाली गाड़ीको पकड़नेके खयालसे स्टेशनकी ओर रवाना हो गईं।

बोरसद पहुँचकर बाने न सिर्फ़ अस्पतालमें घायल होकर पड़ी हुई बहनोंको उत्साहित किया, बल्कि सारे गाँव पर छाये हुए डर और आतंकको भी दूर किया। अपनी कमज़ोर तबियतका ज़रा भी खयाल न करके बाने सुबहसे लेकर रात तक खड़े पैरों काम करना शुरू कर दिया।

इससे बाकी सेहत और गिरी। नड़ियादसे डॉक्टर आये। उन्होंने बाकी जाँच की। कहा कि आरामकी बहुत ही ज़रूरत है और चेतावनी दी कि अगर हमारा कहना नहीं मानेंगी, तो तबियत ज़्यादा खराब होगी और नतीजा अच्छा न निकलेगा।

"लेकिन मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं होता। मैं तो बापूके पदचिह्नों पर चलनेके सिवा और कोई काम नहीं कर रही। बापूकी ग़ैरहाज़िरीमें मुझे काम करनेका यह मौक़ा मिला है। आराम तो मैं नहीं कर सकूँगी।"

डॉक्टर निराश हुए। और बा एक सत्याग्रहीकी शानसे अपने कामको आगे बढ़ाती चली गईं।

* * *

सन् १९३२ और '३३का तो बहुतेरा वक़्त बाका जेल ही में बीता। '३२में सौ० लाभुबहन महेताको बाके स्वभावका जो परिचय मिला, उसके बारेमें वे लिखती हैं:

"'यह कौन आया? ऐसी नन्ही, नाज़ुक उमरके बच्चोंको पकड़कर लानेमें सरकारको शरम भी नहीं आती?' मुझे देखकर उनका कोमल हृदय कराह उठा। दूसरे दिन उन्हें मालूम हुआ कि मैं कुछ खाती नहीं हूँ; वहाँका वह रूखा-सूखा खाना मेरे गले नहीं उतरता था। उन्होंने उसी वक़्त मुझे बुलाया। 'बी' क्लासकी अपनी .खुराकमेंसे मुझे ज़बरदस्ती खानेको दिया और सीखकी दो बातें कहीं: "देखो, यों भूखी रहोगी, तो जेल कैसे काट सकोगी? सहन करने आई हो, तो सहन तो करना ही चाहिये न?" मैं सब समझती तो थी ही, फिर भी मनको मज़बूत करनेमें दो तीन दिन लग गये। और फिर तो मैंने अपनेको उस .खूराकके अनुकूल बना लिया। इस बीच बाकी सहानुभूति मुझे मिल गई। जेलमें जो कोई भी बहन बीमार पड़ती, कमज़ोर दिलकी होती, या घरमें आरामकी ज़िन्दगी बितानेवाली होती, उसे बाकी मदद, उनका सहारा, हमेशा मिलता। बाकी हमदर्दीके कारण जेल काटना आसान हो जाता। जेलमें हम क़रीब ८० बहनें एक साथ थीं, लेकिन किसीको कभी कोई तकलीफ़ नहीं हुई। किसीने यह महसूस नहीं किया कि यहाँ हम अकेली पड़ गई हैं, या कि यहाँ हमारा कोई नहीं है। मानो हम सब उनके घरहीमें रहती हों, इस तरह वे सबकी फ़िकर रखती थीं—सबको सँभालती थीं। सब पर समान प्रेम और सबकी समान चिन्ता, यह उनके स्वभावकी .खूबी थी।"

* * *

जब राजकोटमें सत्याग्रह छिड़ा, तो इस खयालसे कि वह तो मेरा वतन है, बा बापूसे भी पहले वहाँ पहुँच गई थीं। वहाँ उन पर जो बीती, उसका बहुत ही बढ़िया वर्णन सुशीला बहनने किया है, पाठक उसे वहीं पढ़ लें। लेकिन उसके बारेमें .खुद बापूजीने 'गांधीजी' नामक ग्रंथमें बाकी निस्बत जो कुछ लिखा है, सो यहाँ देना ज़रूरी है।

"बा राजकोटकी लड़ाईमें शामिल हुईं, इस पर कुछ न लिखनेका मेरा इरादा था, लेकिन उनके उस लड़ाईमें शामिल होने पर जो थोड़ी निष्ठुर टीकायें हुई हैं, वे खुलासा चाहती हैं। मुझे तो कभी यह सूझा ही न था, कि बाको इस लड़ाईमें शरीक होना चाहिये। इसकी खास

वजह तो यह थी कि इस तरहकी मुसीबतोंके लिए वे बहुत बूढ़ी हो चुकी थीं। लेकिन बात कितनी ही अनोखी क्यों न मालूम हो, टीकाकारोंको मेरे इस कथन पर इतना विश्वास तो रखना चाहिए कि अगरचे बा अनपढ़ थीं, फिर भी कई सालोंसे उन्हें इस बातकी पूरी-पूरी आज़ादी थी कि वे जो करना चाहें, करें। क्या दक्षिण अफ्रीकामें और क्या हिन्दुस्तानमें, जब-जब भी वे किसी लड़ाईमें शरीक हुई हैं, अपने आप, अपनी आन्तरिक भावनासे ही। इस बार भी ऐसा ही हुआ था। जब उन्होंने मणिबहनकी गिरफ्तारीकी बात सुनी, तो उनसे न रहा गया। और उन्होंने मुझसे लड़ाईमें शामिल होनेकी इजाज़त माँगी। मैंने कहा, तुम अभी बहुत ही कमज़ोर हो। दिल्लीमें कुछ ही दिन पहले वह अपने नहानेके कमरमें बेहोश हो गई थीं। उस वक़्त देवदासने हाज़िरखयालीसे काम न लिया होता, तो वे उसी समय स्वधाम पहुँच गई होतीं। लेकिन बाने जवाब दिया: 'शरीरकी मुझे परवाह नहीं।' इस पर मैंने सरदारसे पुछवाया। वे भी इजाज़त देनेके लिए बिलकुल तैयार न थे।

"लेकिन फिर तो वे पसीजे। रेसीडेण्टकी सूचनासे ठाकुर साहबने जो वचन-भंग किया था, उसके कारण मुझे होनेवाले क्लेशके वे साक्षी थे। कस्तूरबाई राजकोटकी बेटी ठहरीं। इसलिए उन्होंने अंतरकी आवाज़ सुनी। उन्होंने महसूस किया कि जब राजकोटकी बेटियाँ राज्यके पुरुषों और स्त्रियोंकी आज़ादीके लिए जूझ रही हों, तब वे चुप बैठ ही नहीं सकतीं।

"उनमें एक गुण बहुत बड़ा था। हरएक हिन्दू पत्नीमें वह कमोबेश होता ही है। इच्छासे या अनिच्छासे अथवा जाने-अनजाने भी वह मेरे पदचिह्नों पर चलनेमें धन्यता अनुभव करती थीं।

"बा बहुत ही आग्रही स्वभावकी स्त्री थीं। बचपनमें मैं इसे हठीलापन मानता था। लेकिन इस आग्रही स्वभावने बिलकुल अनजाने अहिंसक असहयोगकी कलामें और उसके आचरणमें उनको मेरा गुरु बना दिया। पहले कई बार बा जेल भोग चुकी थीं, फिर भी इस बारका (१९४२-४४) कारावास उनको तनिक भी अच्छा नहीं लगा था। अगरचे इस बार शारीरिक सुखों और सहूलियतोंकी कोई कमी नहीं थी। मेरी अपनी और साथ ही दूसरे कइयोंकी गिरफ़्तारीके कारण और बादमें

जल्दी ही उनकी अपनी जो गिरफ़्तारी की गई, उससे उन्हें ज़बरदस्त सदमा पहुँचा, और उनमें बहुत कड़ुवाहट आ गई। मेरी गिरफ़्तारीके लिए वे ज़रा भी तैयार नहीं थीं। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया था कि सरकारको मेरी अहिंसा पर भरोसा है, और जब तक मैं ख़ुद गिरफ़्तार होना न चाहूँ, वे मुझे पकड़ेंगे नहीं। यह सदमा इतने ज़ोरका था कि गिरफ़्तारीके बाद उन्हें दस्तकी सख्त शिकायत हो गई और डॉ० सुशीला नायरने, जो उनके साथ ही गिरफ़्तार हुई थीं, उस हालतमें जितनी मुमकिन थी, उतनी सार-सँभाल न की होती, तो नज़रबन्दोंकी छावनीमें हमारी मुलाक़ात होनेसे पहले ही वे गुज़र गई होतीं। वहाँ मेरे साथ रहनेसे उन्हें बहुत आराम व तसल्ली मिली और बिना किसी इलाजके दस्त बन्द हो गये, लेकिन दिलमें कड़ुवाहटके जो खयाल भर गये थे, वे नाबूद नहीं हुए। उसमेंसे बेचैनी — संताप — और चिड़चिड़ापन पैदा हो गया, जिसके कारण बहुत धीमे-धीमे, तिल-तिल करके, लम्बी तकलीफ़के बाद शरीर छूटा। अगरचे मैं चाहता था कि उस तीव्र वेदनासे उन्हें छुटकारा मिले, और जल्दी ही उनकी देहका अन्त हो जाय, तो भी आज उनकी कमीको जितना मैंने माना था, उससे कहीं ज़्यादा मैं महसूस कर रहा हूँ। हम असाधारण दम्पती थे — अनोखे। हमारा जीवन सन्तोषी, सुखी और सदा ऊर्ध्वगामी था।"

इस बारकी लड़ाईमें बाकी गिरफ़्तारीके वक़्तसे लेकर आग़ाखान महलकी सारी हक़ीक़त सुशीला बहनने दी है, इसलिए यहाँ उसको भी दोहराया नहीं है।

बाके इन सारे सार्वजनिक कामोंसे साफ़ मालूम होता है कि ऐसे काम करनेके लिए या लोकसेवाके लिए सच्ची ज़रूरत विद्वत्ताकी नहीं, बल्कि आमजनताके लिए प्रेमकी और असलमें कौन चीज़ करने जैसी है, इसकी सीधी-सादी समझ की है। बाको गुजरातीमें या हिन्दीमें भाषण करनेके लिए अक्षरज्ञानका अभाव कभी बाधक नहीं हुआ। उलटे, सीधी बात कहनेके कारण वे ज़्यादा असर पैदा कर सकी हैं। ऊपर उनके कुछ बयान दिये हैं। लेकिन इन बयानोंसे भी ज़्यादा असर बाके ज़बानी भाषणोंका होता था।

बिदा

बाको इस बातकी आगाही तो बहुत पहले हो गई थी कि उनकी मौत अब नज़दीक है। सन् '४२के जनवरी महीनेकी बात है। तब बापू और बा कुछ दिनोंके लिए बारडोलीमें थे। वहाँसे मीठुबहनको मिलने और कुछ दिन उनके साथ बितानेके खयालसे बा मरोली आश्रम गईं। लेकिन वहाँ उन्हें बुखारने आ घेरा। पिछले कई सालोंसे बाका दिल तो कमज़ोर पड़ने ही लगा था, इसलिए वे बहुत कमज़ोर हो गई थीं। बाको बापूजीके वर्धा जानेकी तारीख़ मालूम थी, चुनाँचे ऐसी कमज़ोर हालतमें भी वे बारडोली आ ही पहुँचीं। बापूको पता चला कि बा मरोलीसे बीमार होकर आ रही हैं। वे यह भी जानते थे कि बा आते ही उनसे मिलने आवेंगी। लेकिन उन्हें ज़ीना चढ़नेकी तकलीफ़ न उठानी पड़े, इस खयालसे ज्योंही बापूको बाके आनेकी खबर मिली, वे झट-पट नीचे उतर आये। ख़ुद ही अपने हाथका सहारा देकर उन्हें मोटरसे नीचे उतारा और पास ही सरदारके कमरेमें एक खटिया पर लिटाकर और कुछ देर उनके पास बैठकर फिर आप ऊपर गये। बा जिस तरह बापूकी सेवामें तत्पर रहतीं, उसी तरह बापू भी बाकी बहुत ही चिन्ता रखते। जब भी बा कहीं बाहर जानेको होतीं, या बाहरसे आनेवाली होतीं, तब बापू कितने ही ज़रूरी काममें क्यों न हों, उनका नियम ही था कि वे बाको बिदा करने या लिवाने आश्रमके दरवाज़े तक जायँ।

यह सब खतम हुआ और बा आरामसे सोईं। फिर सरदार कल्याणजीभाईसे कहने लगे: "बाको ऐसी हालतमें क्यों ले आये? वहीं रख लेना था न?"

कल्याणजीभाई बोले: "आप मानते हैं, कि हमने आग्रह करनेमें कमी की होगी? लेकिन बा चुप बैठें तब न? वे तो बराबर कहती ही रहीं, 'अब रेलगाड़ियाँ बंद हो जानेवाली हैं और बापूजी सेवाग्राम चले जायँगे, तो इतने सालोंके बाद मैं उनसे बिछुड़ जाऊँगी न? अब मैं कौन ज़्यादा जीनेवाली हूँ? अब तो यही चाहती हूँ कि मैं बापूकी गोदमें मरूँ।"

और, बाकी यह इच्छा सचमुच ही पूरी हुई।

'४२के अगस्तमें महासमितिकी बैठकके लिए बापू बम्बई गये, तो बा भी साथ थीं। कुछ आश्रमवासी उन्हें बिदा करनेके लिए वर्धा स्टेशन तक गये थे। उन्होंने बासे कहा: 'बा, जल्दी वापस आइयेगा।' उस समयके बाके उद्गार ये थे: "हाँ भाई, आप सबके आशीर्वादसे वापस आ सकूँगी, तो .खुशी तो होगी ही।" वापस आनेकी निराशाने ही बाके मुँहसे ये शब्द कहलवाये थे।

और आग़ाखान महलमें महादेव काकाके गुज़र जानेके बाद तो बा हरदम यह कहा करतीं: "मुझे जाना था और महादेव क्यों गया?" बापूके उपवासके दिनोंमें उनके दर्शनोंके लिए हम सब तीन बार आग़ाखान महल गये थे। जब-जब हम वहाँसे चलते, बा कहतीं: 'ज़िन्दा रहूँगी, तो फिर मिलेंगे।' बापूके उपवासोंकी समाप्तिके बाद जब हम चलने लगीं, तब मेरी माँसे और आश्रमकी दूसरी बहनोंसे बाने कहा: "यह हमारी आख़िरी मुलाक़ात ही है। मैं यहाँसे जीते जी बाहर नहीं निकलूँगी।" आश्रमकी बहनोंकी प्रार्थनाका पहला श्लोक इस प्रकार है:

गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥

इस श्लोकको दोहराते हुए बा बोलीं: "अब तो कृष्ण भगवान् इन कौरवोंसे घिरे हुए हमारे देशकी सुध लें तो अच्छा हो।" फिर जेलके अपने सभी साथियोंका नाम ले-लेकर कहने लगीं: "हम दोनोंको चाहे जेलमें रक्खे, लेकिन और सबकी रिहाई हो!"

आग़ाखान महलकी दूसरी बातें, बापूके उपवासके समयकी बाकी मनोदशा, और उनकी सार-सँभाल वग़ैराके बारेमें सुशीलाबहनने अपने निबन्धमें सुन्दर ढंगसे लिखा ही है। मैं वहाँ अपनी देखी हुई एक ही बातका ज़िक्र करूँगी। बापूकी खटियाके सामने दीवार पर 'हे राम' शब्द लिखे हुए थे। ठीक उनके नीचे तुलसीका एक गमला था। सवेरे नहा-धोकर बा तुलसी माताका पूजन करतीं और झुक-झुककर नमन करतीं। बापू लेटे-लेटे श्रद्धासे युक्त, प्रेमसे छलकती आँखों बाकी ओर देखा करते। कितना भव्य था वह दृश्य! बापूके उपवास सकुशल जो समाप्त हुए,

उसकी जड़में बाके अन्तरतमकी गहराईसे निकली हुई इस प्रार्थनाका कितना हाथ रहा होगा ? सत्यवानको मृत्युके मुँहसे वापस लानेके लिए सावित्री यमराजसे एक बार लड़ी थी, लेकिन बाको तो बापूको बचानेके लिए यमराजके साथ कई-कई बार लड़ना पड़ा है । बापूका एक-एक उपवास बापूसे भी अधिक बाके लिए कड़ी तपश्चर्या बन जाता था । बापूका तो शरीर सूखता, लेकिन बाका तो मन भी सिक जाता । मगर बाकी यह अटल श्रद्धा थी कि भगवान् अपने भक्तोंको सही-सलामत उबार लेता है। इसीलिए बापूके उपवासके दिनोंमें मिलने गये हुए आश्रमवासियोंसे बा कहतीं : "आप चिन्ता न करें । मैं बापूसे पहले ही जाऊँगी । बापू ज़रूर उठ बैठेंगे । लेकिन मैं यहाँसे जीती बाहर नहीं निकलूँगी । यह तो महादेवका मंदिर है । जिस रास्ते महादेव गये, उसी रास्ते मैं भी जाऊँगी ।"

* * *

बाके अन्तिम समयके और अग्निसंस्कारके वर्णन तो बहुतेरे आये हैं । लेकिन यहाँ मैं उस समय वहाँ हाज़िर एक बहनका आश्रममें आया एक पत्र ही दे रही हूँ :

"अन्त-अन्तमें बाकी आँखें एकदम खुलीं और उन्होंने बापूजीको बुलवाया । जयसुखलालभाई पास थे । उन्होंने बापूसे कहा : 'बा बुलाती हैं ।' बापू हँसते-हँसते आये और बोले : 'क्यों बा, शायद तू सोचेगी, कि सब रिश्तेदार आ गये, इसलिए बापूने मुझे छोड़ दिया । ले, यह मैं आया ।' बापूजीने बाको गोदमें ले लिया । बापूकी ओर देखकर बा कहने लगीं : 'मैं अब जाती हूँ । हमने बहुत सुख भोगे, दुःख भी भोगे । मेरे बाद रोना मत । मेरे मरने पर तो मिठाई खानी चाहिये ।' यों कहते-कहते बाके प्राण बापूकी गोदहीमें निकल गये । बापू देख रहे थे । ज्यों ही बाके प्राण निकले, बापूने अपना सिर बाकी देह पर डाल दिया और आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली । देवदासभाई बाके पैर पकड़कर 'बा, बा' पुकारने लगे । जयसुखलालभाईने बापूजीका चश्मा उतार लिया । बापू फ़ौरन ही सँभल गये । उन्होंने देवदासभाईको अपनी गोदमें लेकर स्वस्थ किया । पूज्य बाके नज़दीक रामधुन शुरू हुई । फिर बापू, मनु, प्रभावती और सुशीलाने मिलकर बाकी मृतदेहको स्नान कराया, शरीर

पोंछा, और बापूके काते सूतकी साड़ीमें बाको लपेटा। माथे पर कुंकुम् लगाया। हाथमें और गलेमें बापूका कता सूत पहनाया। ज़मीन लीपकर उसमें चौक पूरा और बाको वहाँ सुलाया। शामको साढ़े सात बजे शरीर छूटा था। रात १२ बजे तक प्रार्थना और गीताका पारायण किया। देवदासभाई, मनु और संतोकबहनको छोड़कर शेष सब बाहर आ गये। अग्निसंस्कारके समय बहुतोंको बाहरसे अंदर जानेकी इजाज़त मिली। बाका चेहरा .खूब दमकता था और ऐसा मालूम होता था, मानो वे शान्त निद्रामें सोई हों। अग्निदाह-सम्बन्धी विधि करानेके लिए एक ब्राह्मण उपाध्याय बुलाये गये थे। जब शुरू की विधियाँ पूरी हुईं और शवको चिता पर लिटा दिया गया, तो बापूने एक संक्षिप्त प्रार्थना करनेकी सूचना की। गीता, .कुरान और बाइबलके कुछ अंश पढ़े गये। आश्रमवासियोंने एक भजन गाया। डॉ० गिल्डरने जरथोस्ती धर्मकी प्रार्थना की। मीराबहनने एक अंग्रेज़ी भजन गाया।

"मृत देह पर चंदनकी लकड़ी रक्खी गई और घी सींचा गया। इसी समय बापू धीमे पैरों देवदासभाईके पास गये और बोले: 'देवा, महादेवके अन्तिम संस्कार मैंने किये, बाके अन्तिम संस्कार तू करा।' इसके बाद देवदासभाईने हाथमें अग्नि लेकर बाके शवकी तीन बार प्रदक्षिणा की और ज़ोरसे, गोविन्द, गोविन्द, गोविन्द, का रटन करते हुए मृतदेहको आग दी। चिता धक्-धक् जल उठी।

"इस सारे समयमें बापूजी बहुत स्वस्थ रहे थे। लेकिन देवदासभाईका दुःख देखा नहीं जाता था। बापूने कहा: 'उसकी याद आती है, तब मैं भी धीरज नहीं रख पाता।' शामको पाँच बजे तक हम सब वहाँ थे। पूज्य बापूजीने मुझसे बहुत-सी बातें कीं। सबके समाचार पूछे। रामदासभाई अग्निसंस्कार समाप्त होनेके बाद आये। रामदासभाई और देवदासभाईको पूज्य बापूके साथ तीन दिन रहनेकी इजाज़त मिली है। महादेवभाईकी समाधिके पास बाकी समाधि भी बनेगी।"

महादेवभाईकी समाधि पर बापूने अपने हाथों छोटे-छोटे शंखोंका ॐ बनाया है। बाकी समाधि पर भी बापूने ही छोटे-छोटे शंखोंसे 'हे राम' लिखा है।

श्रीमती सरोजिनीदेवीकी श्रद्धांजलिके साथ इस जीवन-कथाको समाप्त करती हूँ :

"भारतीय स्त्रीत्वके जीते-जागते प्रतीक-सी, उस नाज़ुक किन्तु वीर नारीकी आत्माको चिर शान्ति प्राप्त हो। जिस महापुरुषको वे चाहतीं, जिसकी वे सेवा करतीं, और अद्वितीय श्रद्धा, धैर्य और भक्तिके साथ जिसका वे अनुसरण करतीं, उसके लिए बराबर क़ुरबानी करते रहनेका जो कठिन मार्ग उन्होंने अपनाया था, उस मार्ग पर चलते हुए उनके पैर एक क्षणके लिए भी लड़खड़ाये नहीं और न उनके दिलने कभी कच्ची खाई, वे मृतत्वसे अमरत्वमें गईं और हमारी गाथाओं, हमारे गीतों, और हमारे इतिहासकी वीरांगनाओंकी मंडलीमें वे अपने हक़की जगह पा गई हैं; इसकी हम ख़ुशी मनायें।"

परिशिष्ट

[बाको लिखे बापूके पत्रोंसे लिये गये कुछ नमूनेके पत्र]

१

(राजकोट सत्याग्रहके समयका)

सेगाँव, ८–२–'३९

बा,

तू काफ़ी तकलीफ़ उठा रही है। जो भी तकलीफ़ हो, उसकी खबर मुझे ज़रूर देना। तू दुःख सहनेके लिए जन्मी है। इसलिए तेरी तकलीफ़ोंसे मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता। मैंने राजकोट तार तो किया है। तेरी तकलीफ़ोंके बारेमें अखबारोंमें कुछ भी नहीं देना है। भगवान् तो वहाँ तुम्हारे पास बैठा ही है। उसे जो करना होगा, वह करेगा। 'कहानम' मज़ेमें है। रातको तुझे याद ज़रूर करता है। लेकिन फ़िकर न करना। अमतुलसलाम यहाँ है। वह कहानमको सँभालती है।

बापूके आशीर्वाद

चि० मणि, तू वहाँ है, यह कितनी अच्छी बात है!

२

सेगाँव, ९-२-'३९

बा,

तेरा पत्र मिला। तू बीमार रहा करती है, यह अच्छा नहीं लगता। लेकिन अब तो हिम्मतके साथ रहना। सहूलियतें तो मिल जायँगी। और, न मिलें तो भी क्या? मणि ठीकसे गा न सके, तो भी रामायण सुनाये। राम-सीताके दुःखकी तुलनामें हमारे दुःखकी क्या बिसात है? तू घबराना मत। आजकल लड़कियोंसे सेवा लेना छोड़ रक्खा है। तू फ़िकर न करना। क्या करना चाहिये, सो मैं देख लूँगा। सुशीला तो सेवा करती ही है।

बापूके आशीर्वाद

३

सेगाँव, १०-२-'३९

बा,

डाक तेरे नाम रोज़ गई है। वहाँ चिट्ठियाँ न मिलें, तो किया क्या जाय? मेरी चिन्ता करनेकी ज़रूरत नहीं। लेकिन तबियत चिन्ता करने जैसी हो जाय, तो भी मैं तुझसे तो इस जवाबकी आशा रखता हूँ, कि "वियोगमें उनकी मृत्यु बदी होगी, तो होकर रहेगी। लेकिन मैं तो जहाँ मेरे बच्चे त्रास पा रहे हैं, वहाँ पड़ी हूँ। मुझे जेलमें रक्खोगे, तो उससे भी मैं ख़ुश होऊँगी। ठाकुर साहबसे वचन पलवानेमें आप सब मदद करें, मेरा उपयोग करें, वरना मैं चाहती हूँ कि राजकोटके आँगनमें ही मेरी मृत्यु हो जाय!" तू अपने आप अपनी ख़ास इच्छासे गई है, इसलिए तेरे दिलसे ये उद्गार निकलें, तो निकालना। अपने मनमें यही धारणा रखना। तू रोज़ लिखती है, लड़कियोंकी सेवा लिया करो। लेकिन फ़िलहाल तो वे आज़ाद ही हैं। सुशीला मालिश करती है, सो भी छोड़ना ही है न? लेकिन अपनी ऐसी तबियतकी वजहसे उसे अभी छोड़ नहीं सका हूँ। इस बारेमें भी मेरी चिन्ता मत करना। मुझे निबाहनेवाला आख़िर तो ईश्वर ही है न?

बापूके आशीर्वाद

४

बा,

पिछली बार तुझे प्रवचन भेजा था। उसकी नक़ल भेजना। तेरा पत्र आज मिला। यह पत्र मौनवारके दिन लिख रहा हूँ। मणिलालकी चिन्ता मत कर। उसे तेरा पत्र भेज रहा हूँ। परागजीके कहनेसे घबरा उठनेका कोई कारण नहीं। दोनों प्रौढ़ हैं। ग़लती हुई होगी, तो सुधार लेंगे। 'जामे जमशेद'का प्रबन्ध तो किया ही है। मथुरादासके लिखनेसे हो गया है। इसलिए मैंने ज़्यादा कुछ नहीं किया। अब तो मिलता ही होगा। फिर पूछ-ताछ करता हूँ। रामायण और भागवतके लिए तजवीज़ करता हूँ। प्रेमलीलाबहनसे मँगानेमें तनिक भी संकोच न करना। तुझे मँगानाही क्या है? जो थोड़ा-बहुत चाहिये, सो वे प्रेमसे भेजेंगी। लेकिन जिसकी जल्दी ही ज़रूरत न हो, वह तू मेरे मारफ़त मँगायेगी तो बस होगा। मैं तजवीज़ कर दूँगा। दाँत बरत सकती हो? लालपानीके कुल्ले करती हो? दूधाभाईकी लक्ष्मीको छठा महीना चल रहा है — मारुतिका पत्र तो यह आज मिला। इन सब ख़बरोंको सुनकर मुझे दुःख या आश्चर्य नहीं होता! होना भी नहीं चाहिये। ब्याहका यह नतीजा तो सबके लिए है ही। इसमें दुःख क्या और आश्चर्य क्या? रामदासको भी मैंने कोई उलाहना नहीं दिया। ऐसे मामलोंमें उलाहना क्या कर सकता है? सब अपनी शक्तिके अनुसार संयम पालें। संयमकी यह बात भी अभी इधर-इधरकी है। वरना लोग तो अपनी इच्छाके अनुसार भोग भोगते ही आये हैं। ठक्कर बापा इस समय मेरे साथ नहीं हैं; १५वींको मिलेंगे। आजकल मलकानी मेरे साथ हैं। वह तो ख़ूब काम कर रहे हैं। और सब तो करते ही हैं। चंद्रशंकरकी तबियत ठीक ही रहती है। ओम, किसन बराबर अपनी तन्दुरुस्तीको सँभालते हैं। ओम भरसक मेहनत करती है। बहुत भोली और सरल है। किसन भी ऐसा ही है। सुरेन्द्रको ताक़त आ गई है। आन्ध्रदेशकी यात्रा ३री तारीखको पूरी होती है। उसके बाद मैसूर जाना होगा। जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ धाँधली तो रहती ही है। परेशानी भी रहती है। मुझे तो सब सँभाल लेते हैं, इसलिए परेशानी कम मालूम होती है। छोटी-से-छोटी बातका

खयाल मीराबहन रख लेती हैं, इसलिए यात्रामें मुझे तकलीफ़ रहती ही नहीं । तू मुलाक़ात छोड़े, तो मुझसे हर हफ़्ते पत्र पायेगी । मैं हर हफ़्ते प्रवचन भेजता रहूँगा । तू दूसरी बहनोंसे मिल सकती है, इससे संतोष मानना । लेकिन जैसा तेरी मर्ज़ीमें आये, करना । तू मुलाक़ात चाहेगी, तो मिलने आनेवाले तो बहुत तैयार हो जायँगे, चाहेंगे भी । जान-बूझकर मुलाक़ातें कम रखनेका रिवाज डाला है । लेकिन तू जो चाहे, सो बिना संकोचके लिखना । जानकीबहनकी तबियत ठीक है । उनके रामकृष्णके टॉन्सिल कटवानेकी बात मैं शायद तुझे लिख चुका हूँ । कमला अब खाना लेने लगी है । किशोरलालको बुख़ारने अभी छोड़ा नहीं, लेकिन चिन्ताका कारण नहीं । मेरा मौन आजकल रविवारकी रातको शुरू होता है, इसलिए सोमवारकी रात तक बोलना नहीं रहता । आज रातको ९–१० बजे मौन टूटेगा । और उस वक़्त किसीसे बोलनेका शायद ही कोई काम पड़े, क्योंकि फिर तो सोनेका समय हो जायगा । सुबह तीन बजे उठना रहता है । ब्रजकृष्णका बुख़ार अब उतर गया है । ताक़त आनी बाक़ी है । हेमबहन गुज़र गई हैं ।

अब प्रवचन :

पिछली बार भक्तके लक्षण लिखे थे । यह भी सूचित किया था कि सेवाके बिना भक्ति नहीं होती । इस बार सेवा कैसे की जाय, सो लिखता हूँ । क्योंकि लोग अक्सर यह सवाल पूछते हैं । कुछ कहते हैं, सेवा अमुक स्थितिमें ही हो सकती है । कुछ कहते हैं, अमुक अभ्यास करने पर ही सेवा हो सकती है । यह सब भ्रम है । इतना तो पिछले हफ़्ते ही लिख चुका था । आदमी किसी भी हालतमें रहता हुआ सेवा कर सकता है । हमारे पास जितनी भी शक्ति हो, सो सब हम कृष्णार्पण कर दें, तो हमें पूरे गुण (नम्बर) मिल जायँ । जिसकी शक्ति करोड़ देनेकी है, पर जो आधा करोड़ देता है, उसे ५० गुणसे ज़्यादा नहीं मिलेंगे । लेकिन जिसके पास एक पाई है, और जो वह पाई दे डालता है, उसे सौमेंसे सौ नंबर मिलेंगे । इसलिए तुम वहाँ रहनेवाली बहनों और तुम्हारे सम्पर्कमें आनेवाली बहनों या अफ़सरोंके साथ अच्छा व्यवहार करो, तो कहा जायगा कि तुमने सेवाधर्मका पालन किया । अफ़सरोंके साथ

सेवाभावसे बरतनेका मतलब है कि कभी उनका बुरा न चाहना, उनके साथ विनयका पालन करना, उन्हें धोखा न देना। नियमोंका पालन करना, और तुम्हारे सम्पर्कमें आनेवाली गुनाहोंके लिए सज़ा पाई हुई बहनोंके साथ सगी बहनका-सा व्यवहार करना। उन पर तुम्हारे प्रेमकी छाप पड़े, वे तुम्हारी पवित्रताको पहचानें, तो वह भी सेवाधर्मका पालन कहा जायगा। दोनोंमें हेतु अच्छा होना चाहिये। स्वार्थके कारण या डरको वजहसे जो अच्छा व्यवहार किया जाता है, वह सेवामें शुमार नहीं होता। एक काम एक आदमी स्वार्थ साधनेके लिए करता है और दूसरा परमार्थकी दृष्टिसे करता है, सो तो हम भी अक्सर देखते ही हैं। जहाँ ईश्वरार्पण भाव है, वहाँ स्वार्थको कोई स्थान ही नहीं। इस प्रकार सेवाकरनेवाला रोज़ अपनी शक्ति बढ़ाता जाता है। वह अभ्यास करता है, उद्यम करता है, सो भी सेवाके विचारसे ही। इस प्रकार जो सेवा परायण रहता है, उसके हँसनेमें, खेलनेमें, खानेमें, पीनेमें भी सेवाभाव ही भरा रहता है। यानी उसके सब कामोंमें निर्दोषता होती है। ऐसे भक्तोंको परमात्मा सब आवश्यक शक्ति दे देता है। इससे सम्बन्ध रखनेवाले तीन श्लोक स्त्रियोंकी प्रार्थनामें हैं, सो तुम्हें याद होंगे। ये रहे वे श्लोक:

अनन्याश्चिंतयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

इसका अर्थ 'अनासक्ति योग'में देख लेना। ये श्लोक ९वें, १०वें अध्यायोंमें मिलेंगे। याद रहे, कि गीताजीको हम अपने अमलमें लानेके लिए पढ़ते हैं। यह समझो, कि ऊपर मैंने जो लिखा है, सो सब गीताजीके आधार पर लिखा है।

बापूका सबको आशीर्वाद

५

१३–२–’३४

बा,

यह पत्र ट्रेनमें लिख रहा हूँ। तेरा पत्र मिला है। काम इतना था कि मंगलवारको लिख न सका। आज गुरुवार है। तू जो तेरी मर्ज़ीमें आवे वह काम मुझे सौंपना। जो चाहे सो सवाल पूछना, मैं उसे पूरा करूँगा: कोशिश तो करूँगा ही। तूने हरिलालके बारेमें पूछा है। वह पांडेचेरी गया था। वहाँ भी पैसोंकी भीख माँगकर ख़ूब शराब पीता था। कुछ पैसे मिले भी। आजकल कहाँ है, पता नहीं। उसका यों ही चलेगा। ईश्वर जब उसे सुबुद्धि दे, तब सही। इसमें हमारे पाप-पुण्य भी तो काम करते ही हैं न? हरिलालके गर्भके समय मैं कितना मूढ़ था? जैसा मैंने और तूने किया होगा, वैसा ही हमें भरना होगा। इस तरह बच्चोंके आचरणके लिए माँ-बाप ज़िम्मेदार हैं ही। अब तो हम यही कर सकते हैं कि हम शुद्ध बनें। सो वैसी कोशिश हम दोनों कर रहे हैं, और उससे हम संतोष मानें। हमारी शुद्धिका प्रभाव जाने-अनजाने भी हरिलाल पर पड़ता ही होगा। इधर मनुका पत्र नहीं, लेकिन जमनादासने उसकी खबर दी थी। सुशीलाको लिखूँगा। पुरुषोत्तमकी सगाई हरखचंदकी लड़की के साथ हो गई है। पुरुषोत्तमकी तबियत अभी अच्छी नहीं कही जा सकती। रणछोड़भाईके भाईकी पत्नी गुज़र गई हैं, इससे मोतीबहन उदास रहती हैं। उनकी जवाबदारी बढ़ी है। अम्बालालभाई और मृदुला मुझसे मिल गये। अम्बालालभाई और सरलाबहन विलायत जा रहे हैं। तीन-चार महीने वहाँ रहेंगे। देवदास-लक्ष्मी ठीक हैं। क्या लक्ष्मीको बालकोंका बोझ उठाना कठिन मालूम होता है? रामदास-नीमु ठीक हैं। उन दोनोंको तेरे पत्रकी नक़ल भेजता हूँ। असल पत्र मणिलालको भेज रहा हूँ। नक़ल वल्लभभाईको भी भेजी है। वे भी चिन्ता करते हैं। माधवदासका अभी तक कोई जवाब नहीं आया। मथुरादास मेरे साथ हैं। एक-दो दिन रहकर बम्बई जायँगे। एस्थर मेनन विलायतसे आ गई हैं। वह मुझे मिल गईं। मिस लेस्टर लंका गई हैं। कल मद्रासकी यात्रा समाप्त करके राजाजी चले गये। वे दिल्ली जायँगे सही।

अमतुलसलामको अभी कमज़ोरी बाक़ी है, इसलिए उसे मद्रास छोड़ आया हूँ। राजाजी उसे सँभालेंगे। तुझे पूनी मिल गई होगी। जब ख़तम हो जाय, तो फिर लिखना। भेज दूँगा। कुसुमका भाई जंगबहारमें मर गया, इसका उसे काफ़ी दुःख हुआ है। प्यारेलाल कल छूटे। किशोरलाल देवलाली हैं। कुछ ठीक हैं। लक्ष्मीकी प्रसूति बारडोलीमें होगी। मंजुकेशा उसकी सार-सँभाल रक्खेगी। मोती या लक्ष्मी भी वहाँ होंगी। नानीबहन झवेरीका उस तकलीफ़के लिए ऑपरेशन हुआ है। अब तो काफ़ी खबरें दे दीं न? ९वीं तारीखको हैदराबादसे चलकर मैं पटना जाऊँगा। राजेन्द्रबाबूने बुलाया है। प्रभावती वहीं है। मुमकिन है, कि बिहारमें काफ़ी रहना पड़ जाय।

तुम सब बहनोंको बापूके आशीर्वाद।

६

पेशावर, ७–१०–'३६

बा,

तूने मुझे ख़ूब फ़िकरमें डाल दिया है। तेरी तबियतके बारेमें जितनी फ़िकर मुझे इस बार रही, उतनी कभी नहीं रही। आज देवदासका तार मिलने पर मैं बेफ़िकर हुआ। मेरी चिन्ताका कारण तो यह था कि मैंने तुझको दुःखी हालतमें छोड़ा था। मैं अच्छा करने गया और तुझे दुःख हुआ। फिर तो तू भूली, लेकिन मैं कैसे भूलता? बीमार तो थी ही। मालूम होता है, ईश्वरने कृपा की। अब तबियत ख़ूब सुधार लेना। लक्ष्मी, रामू, तारा, सब बिलकुल अच्छे हो गये होंगे? यहाँकी हवा तो बहुत अच्छी है। ठण्ड अभी तो सही जा सकती है।

बापूके आशीर्वाद।

७

१८–१०–'३८

बा,

अब तो ९ दिन बाक़ी हैं और ईश्वरने चाहा तो मिलेंगे। उसी दिन सेगाँव चलेंगे। तेरे पत्रमें एक बात थी, जिसका जवाब देना रह गया है। तूने लिखा है, मैंने चलते समय तेरे सिर पर हाथ तक न

रक्खा। मोटर चली और मैंने भी महसूस किया। लेकिन तू दूर थी। अब भी तुझे बाहरकी निशानी चाहिये क्या? यह क्यों मान लेती है कि मैं बाहर दिखाता नहीं, इसलिए मेरा प्रेम सूख गया है? मैं तो तुझसे कहता हूँ, कि मेरा प्रेम बढ़ा है और बढ़ता जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि पहले कम था, लेकिन जो था, वह रोज़ अधिक निर्मल बनता जाता है। मैं तुझे केवल मिट्टीकी पुतली नहीं समझता। और क्या लिखूँ? इसका मतलब न समझो हो तो देवदास समझायेगा। लेकिन जिस तरह अमतुल, लीलावती वग़ैरा बाहरी चिह्न चाहती हैं, उस तरह तू भी चाहे, तो मैं दूँगा।

बापूके आशीर्वाद।

* * *

[आग़ाखान महलसे लिखे गये बाके पत्रोंके कुछ नमूने]

१

२६–५–'४३, सोमवार

चि० काशी,

तुम्हारे दोनों कार्ड मिले। पढ़कर आनंद हुआ। सबकी अपेक्षा एक तुम्हारा पत्र नियमित आता है। पढ़कर .ख़ूब ही आनन्द होता है। ता० १४ का पत्र ठेठ आज मिला। यानी पत्र बहुत देरमें मिलते हैं। वहाँ सब अच्छे हैं, जानकर .ख़ुशी हुई। किशोरलालभाईकी तबियत अच्छी है, यह एक .ख़ुश होने जैसी बात है। इससे पहले मेरी सहीवाला पत्र तुम्हें मिला है या नहीं? आर्यनायकमजी नागपुरसे आ गये, इसलिए उनको और आशादेवीको मेरे आशीर्वाद। पत्र लिखा, तो प्रभुको और अंबाको मेरे आशीर्वाद लिखना। कल॰ लक्ष्मीका पत्र था। लिखती है, कि कभी-कभी अंबाका पत्र आता है। और सब यहाँ मज़ेमें हैं। मेरी तबियत अच्छी है। मेरी चिन्ता न करना। तुम्हारी तबियत अच्छी होगी? बच्चु मज़ेमें होगा? यहाँ प्रार्थनाके समय तुम सबको .ख़ूब ही याद करती हूँ। चि० कहाना क्या लिखता रहता है? शाक तो सभी थोड़ा-थोड़ा काटते हैं। कहना कि थोड़ा तू भी काट। भणसालीभाईके पास पढ़ता है या नहीं? बढ़ईका काम करने जाता है या नहीं? वैसे,

मेरी राख तो आयेगी, पर मैं कैसे आऊँ? चि० कहानासे कहना, वह सबसे हिलमिलकर रहे। लीलावतीसे कहना, हमें उसका सँदेशा मिल गया है। कहते हैं, कि जो तुझे अच्छा लगे, कर। वैसे, मुझे तो लगता है, कि तू स्कूलमें भरती हो जा। यह तो लम्बा रास्ता है। छगनलालको आशीर्वाद। लीलावती, गोमतीबहन, आनंद, बचु वग़ैरा सबको और सब आश्रमवासियोंको मेरे आशीर्वाद। कृष्णचंद्रजी, जैसे बने वैसे कहानाको अच्छी तरह रखना। तिस पर उसे अच्छा न लगे तो भेज देना। नागपुरमें सब बहनोंको आशीर्वाद लिखना।

लि० बाके शुभ आशीर्वाद, बापूजीके शुभ आशीर्वाद।

२

२–८–'४३, सोमवार

चि० काशी,

तुम्हारा पत्र मिला था। पढ़कर आनन्द हुआ। वहाँ सब अच्छे हैं, जानकर .खुशी हुई। बचु, आनन्द, सब मौज करते होंगे? बारिश तो यहाँ .खूब ही है, वहाँ भी होगी। काठियावाड़में तो अच्छी बारिश हुई। पत्र लिखो, तो दुर्गाको, बाबलाको और दूसरे सबको मेरे आशीर्वाद लिखना। छगनलालको आशीर्वाद। लौकी जैसे तुम्हारे वहाँ होती है, वैसे हमारे यहाँ भी .खूब ही होती है। चि० मनु मज़ेमें है। मेरी और बापूजीकी तबियत अच्छी है। मुझे खाँसी है, और तो सब ठीक है। खंडू है या गया? मणिबाई है या नहीं? कल शंकरनका पत्र था। लीलावती गई। रसोई कौन सँभालता है? आज अमावस है। कलसे श्रावण महीना लगेगा। अब सब बार-त्यौहार आयँगे। अगले रविवारको भैयादूज है। जेलमें सबको आशीर्वाद। मनोज्ञा, कृष्णदास, प्रभुदास, अंबादेवी सबको मेरा आशीर्वाद लिखना। अब तो लीलावतीके बिना सूना मालूम होता होगा?

विनोबाके पत्र कभी-कभी आते हैं। बालकोबाको आशीर्वाद। बस, यही।

लि० बाके और बापूजीके आशीर्वाद।

३

९-८-'४३, सोमवार

चि० काशी,

ता० २२-७-'४३ का तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर आनन्द हुआ। बारिश और हवा वग़ैराको देखते हुए मेरी तबियत अच्छी है। खाँसी आती है। दुर्गाके समाचार जाने। वहाँ सब मज़ेमें हैं, जानकर आनन्द हुआ। उसको और बाबलाको और दूसरोंको भी मेरे शुभ आशीर्वाद। वैसे, मुझे तो लगता है कि उसे सेवाग्राममें अच्छा नहीं लगेगा, इसलिए वहीं रहेगी। जहाँ रहे, वहाँ सुखी रहे, तो बस है। हमने सुना था कि सावित्री फिरसे मंदिरमें गई है। आश्रममें सबको आशीर्वाद। दूसरे, मेरी पेटी खोलना और उसमें चार-पाँच साड़ियाँ हैं, उनमेंसे दो काली किनारकी हैं, सो फूफीजीको और कोई चार गज़का टुकड़ा है, वह भी फूफीजीको भेजवा देना। और दूसरी दो लाल किनारकी हैं, उनमेंसे एक रामीको और एक मनुको भेज देना। और मेरी पेटीमें गोरखपुरकी बड़ी गीता है, और आलमारीमें लाल किनारका चादरा है, सूती है, सो शान्तिकुमारके पास भेजवा देना, तो वह यहाँ भेज देंगे। अब बापूजीका जन्मदिन आयेगा। इसलिए फूफीजीको और लड़कियोंको कुछ देनेकी मेरी इच्छा है। इसीलिए यह लिखा है। दूसरे, एक खाकी रंगका टुकड़ा भी है, वह भी रामीको दे देना। इनके सिवा मेरे कुछ जाकट हों, और तुम्हें देने-जैसे लगें, तो दे देना। लाल किनार और बड़ा अर्ज़ जिसका है, वह रामीको देना। मेरा बाँहोंवाला भूरे रंगका स्वेटर है, वह भी भेज देना। डॉ० मनुभाई और हीराबहनको आशीर्वाद।

आज तो भैयादूज है। तुमने भी मनाई होगी ?

लि० बाके और बापूके आशीर्वाद।

भाग दूसरा

वात्सल्यमूर्ति बा

प्रथम दर्शन

पूज्य कस्तूरबाका दर्शन मैंने पहली बार सन् १९२०में श्रीमती सरलादेवी चौधरानीके घर लाहौरमें किया था। मेरे भाई (प्यारेलालजी) गांधीजीके साथ हो गये थे। इससे मेरी माँ दुःखी थीं। वे अपने लड़केको वापस लाने गांधीजीके पास गई थीं। गांधीजी बहुत काममें थे, इसलिए माताजी दुपहर-भर पूज्य कस्तूरबाके पास बैठी रहीं। जी भरकर बातें कीं। गांधीजीने उन्हें शामका वक़्त दिया था। लेकिन इस बीच तो उनका काफ़ी हृदय-परिवर्तन हो चुका था। उस दिन दुपहर-भर पूज्य कस्तूरबाके साथ बातें करनेके बाद माताजीको लगने लगा था, कि "आखिर ये भी मेरे-जैसी ही एक स्त्री हैं न? ये इतना त्याग कर सकती हैं, तो मेरा लड़का भी देशकी सेवामें भले अपना कुछ समय दे।" इसलिए उन्होंने गांधीजीसे कह दियाः "आप चाहे चार-पाँच साल तक मेरे लड़केको अपनी सेवामें रखिये, लेकिन बादमें मुझे मेरा लड़का लौटा दीजिये। मेरे पति नहीं हैं। यह लड़का ही मेरा आधार है।"

उन दिनों मैं पाँच-छह सालकी थी। माताजीके साथ बात करती हुई बाका वह चित्र आज भी मेरी आँखोंके सामने खड़ा होता है। माताजी बा पर मुग्ध हो गई थीं। गांधीजीने तो माताजीको ख़ुद विदेशी कपड़े पहनने और मुझे भी पहनानेके लिए और घर व दुनियाके प्रति इतनी ममता रखनेके लिए एक मीठा उलाहना भी दिया था। मगर बाने उनके साथ पूरी हमदर्दी दिखाई थी। आपबीती सुनाकर बदलते हुए ज़मानेके साथ उन्हें अपने विचारोंको भी बदलनेकी सलाह दी थी। माताजी कई दिनों तक बाकी ही बातें किया करती थीं। बाने इतना बड़ा त्याग सिर्फ़ बापूजीके प्रति अपनी वफ़ादारी अदा करनेके लिए ही

किया था, इसका माताजी पर गहरा असर पड़ा था। बाकी सहानुभूतिसे उनमें स्वयं भी त्याग करनेकी शक्ति आ गई थी। माताजीने यह भी देखा कि बा उन्हींकी तरह 'माँ' थीं। उनमें माँका इतना प्रेम देखकर माताजीको संतोष हुआ। इस विचारसे कि मेरे लड़केकी सार-सँभाल एक 'माँ' ही कर रही है, माताजीके लिए अपने पुत्रके वियोगको सहना ज़रा आसान बन गया।

प्रथम परिचय

सन् १९२० और १९२९के अरसेमें मुझे कभी-कभी बाके और बापूजीके दर्शन हो जाया करते थे। बा हमेशा बहुत प्रेमसे पेश आती थीं। १९२९की गर्मियोंमें मुझे बाके कुछ अधिक निकट संपर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे भाई मुझे बहुत समयसे आश्रममें बुला रहे थे। मैं तो हमेशा तैयार ही थी, लेकिन माताजी अकेली लड़कीको घरसे बाहर भेजना पसन्द नहीं करती थीं। भाईका आग्रह था कि अगर सचमुच ही मुझे कुछ सीखना हो, या नया अनुभव पाना हो, तो मुझको अकेले ही सफ़र करना चाहिये। आखिर मेरे कॉलेजमें दाखिल होनेके बाद माताजीने मुझे अकेले जानेकी इजाज़त दी। भाई किसी कामसे बापूजीके साथ आगरे आये हुए थे, वे दिल्ली आकर मुझे ले गये। रेलके चौबीस घंटेके सफ़रके बाद हम लोग अहमदाबाद पहुँचे। मैं पहली ही दफ़ा माताजीसे अलग हुई थी, इसलिए मन कुछ उदास था। मगर साथ ही नई जगह और नये प्रकारके जीवनको देखनेकी उत्सुकता भी ख़ूब थी। आश्रमके बारेमें मैंने जो कुछ पढ़ा और सुना था, उसकी मुझ पर गहरी छाप पड़ी थी। मैं किसी देवलोकमें जा रही हूँ, और मेरे-जैसे तुच्छ व्यक्तिको बापूजीने वहाँ कुछ दिन रहनेकी इजाज़त दी है, इस विचारसे मेरा हृदय कृतज्ञतासे गद्‌गद् हो रहा था। जब भाईने मुझे ट्रेनमेंसे साबरमती आश्रमकी दूर पर टिमटिमाती हुई बत्तियाँ दिखाईं, तो मैं रोमांचित हो उठी।

ट्रेनसे उतरकर हम घोड़ागाड़ी पर सवार हुए और आश्रम पहुँचे। रात काफ़ी बीत चुकी थी। मैं थकी भी थी। इसलिए गाड़ीमें ही सो गई। एकाएक गाड़ी एक छोटेसे बरामदेके सामने आकर खड़ी हो गई।

हम आश्रममें पहुँच चुके थे। बादमें मुझे पता चला कि वह स्व० मगनलाल गांधीके घरका बरामदा था। जबसे मगनलालभाईकी मृत्यु हुई थी, बापू दिनमें उनके घर बैठकर ही अपना सारा काम करते थे और रात 'हृदयकुंज' (बाका घर)में जाकर सोते थे। बापूजी हमसे एक दिन पहले आश्रममें आ चुके थे। जब हम पहुँचे, सब लोग सो रहे थे। अकेले रामदासभाई जागते थे। वे उसी बरामदेमें सोते थे। मैं और भाई भी वहीं बरामदेमें फ़र्श पर बिस्तर बिछा कर सो गये। ज़मीन पर सोनेका यह मेरा पहला ही तजरबा था। उस रात कुतूहल और घबराहटके कारण मैं शायद ही कुछ देरको सो पाई हूँगी।

सुबह चार बजे प्रार्थनाकी घंटी बजी। भाई मुझे बापू और बाके पास ले गये। बापूजीने रास्तेका हाल पूछा और अगले दिनसे बाके पास ही अपने बरामदेमें सोनेकी सूचना की।

प्रार्थनाके बाद बा मुझे अपने कमरेमें ले गईं। कमरेमें सामान बहुत कम था, मगर हरएक चीज़ क़रीनेसे रखी थी। कहीं भी गन्दगी या कचरेका कोई निशान न था। एक छोटे-से स्टोव् पर चाय-कॉफी बनानेके लिए पानी उबलनेको रखा था। बाने बड़े प्रेमसे मुझको और भाईको नाश्ता कराया। यहाँ मैंने पहली ही दफ़ा बाके हाथों कॉफी पी। जितने दिन मैं आश्रममें रही, बा मुझे अपने साथ ही नाश्ता कराती थीं। मुझे अपने घरकी और माताजीकी याद बहुत सताया करती थी। मैं माताजीके साथ ज़िद करके न आई होती, तो शायद एक ही दो दिनमें वापसी गाड़ीसे घर लौट जाती। लेकिन अब तो किसी भी तरह छुट्टियाँ यहाँ बितानी थीं। लोग सब नये थे। मैं उनकी भाषा नहीं समझती थी। मुझे लगता था कि ये लोग मुझसे बहुत ऊँचे हैं। इसलिए मारे भयके मैं किसीसे बात भी नहीं करती थी। लेकिन जब मैं बाके पास जाती, मेरा डर बहुत कम हो जाता। वे माताजीकी भाँति ही मुझे प्रेमसे खिलाती-पिलातीं और बातचीत करती थीं। उन्होंने कभी ऐसी कोई बात नहीं कही, जिससे मुझे लगता कि मैं कितने महान् व्यक्तिके पास बैठी हूँ। वे माँ थीं और उनके आसपास माताका प्रेमल वातावरण हमेशा ही बना रहता था। मैं सारा दिन नाश्तेके समयकी ही राह देखा करती थी।

आश्रममें सुबह सब बहनें अनाज साफ़ करने, रोटी बनाने, और शाक वग़ैरा काटनेके लिए जाती थीं। मैं भी वहाँ जाती। अक्सर बा भी वहाँ मिलतीं। वे सबके साथ बैठकर बराबरीसे अपने हिस्सेका काम करतीं। उनके चलने, फिरने और काम करनेमें आश्चर्यजनक स्फूर्ति थी, और लगभग अख़ीर तक उनकी यह स्फूर्ति क़ायम रही। बीमारीके दिनोंमें मुझे उनसे उनकी इस स्फूर्तिके लिए और आराम न करनेके लिए कितनी ही दफ़ा झगड़ना पड़ा है।

मैंने देखा कि बा ख़ूब काता करती थीं। वे बापूजीके पास बहुत कम बैठी नज़र आती थीं। फिर भी वे सारा समय इस बातकी निगरानी रखती थीं कि किस वक़्त कौन बापूजीकी शारीरिक सेवा करनेवाला है, और वह वक़्त पर पहुँचा है या नहीं। एक रोज़ मैंने देखा कि दुपहरकी जलती धूपमें बा साबरमती आश्रमके रसोईघरकी ओर जा रही हैं। यह जगह उनके अपने घरसे काफ़ी दूर थी। पूछने पर पता चला कि वे भाईको बापूजीके पैरोंमें घी मल देनेके लिए ढूँढ़ रही थीं। बापूजीके सोनेका वक़्त हो चुका था और भाई अभी पहुँचे नहीं थे। मैंने कहा: "मुझे काम बताइये, मैं कर दूँ।" इस पर बा बोलीं: "नहीं, प्यारेलालको बापूकी सेवाका अवसर खोना अच्छा नहीं लगेगा। वही आकर करेगा। तुम उसे ढूँढ़ लाओ। खाना खा रहा हो, तो मत बुलाना!" यहाँ फिर माँ बोल रही थी: "खाना खा रहा हो, तो मत बुलाना!"

उन दिनों मुझे कपड़े धोना नहीं आता था। कुएँसे पानी खींचनेकी मेहनत बचानेके लिए मैं नदी पर चली जाया करती थी और पानी साफ़ हो या मटमैला, उसीमें जैसे-तैसे अपने कपड़े धो लाती थी। नतीजा यह हुआ कि मेरे सारे कपड़े मिट्टीके रंगके हो गये। और किसीको तो इन बातोंकी ओर ध्यान देनेकी फ़ुरसत नहीं थी, मगर बाकी आँखसे यह छिपा न रहा। उन्होंने मुझे समझाया और बताया कि कपड़े किस तरह धोने चाहिये। भाईसे कहा कि वे मेरी मदद करें। बा मेरे कपड़े किसीसे धुलवा देनेको तैयार थीं, मगर मैं जानती थी कि आश्रममें तो सारा काम हाथहीसे करना चाहिये, इसलिए किसीसे नहीं धुलवाये। मैंने ख़ुद ही कुएँ पर जाकर धोना शुरू कर दिया। कुएँ पर अक्सर मुझे

कोई न-कोई पानी खींच दिया करता था। मुमकिन है, कि इसमें भी बाका ही हाथ रहा हो।

मेरी छुट्टी पूरी होनेको आई। एक दिन बापूजी अपने बरामदेमें बैठे अकेले कुछ काम कर रहे थे। उस वक़्त वहाँ बरामदेमें मेरे सिवा और कोई नहीं था। इतनेमें कुछ दर्शक आये। उन्होंने बापूजीको प्रणाम किया, कुछ भेंट भी दी और आश्रम देखनेकी इच्छा जताई। बापूजीने मुझे बुलाया और कहा कि मैं उनको आश्रम और आश्रमकी गोशाला वग़ैरा दिखा दूँ। फिर एकाएक उन्हें कुछ खयाल आया और उन्होंने मुझसे पूछा: "तूने .खुद यह सब देखा है?" मुझे कहना पड़ा: "नहीं।" बापूने किसी औरको बुलाकर दर्शनार्थियोंको उनके साथ भेज दिया। मुझे एक भाषण सुननेको मिला: "कोई अंग्रेज़ लड़की इतने दिनों तक यहाँ रहनेके बाद इस तरह अपने आसपासकी चीज़ोंसे नावाक़िफ़ न रहती। मगर हमारे लड़कों और लड़कियोंको तो आजकल किताबोंकी ही पड़ी है। बी० ए० पास कर लिया, तो जीवन सफल हो गया; और कहीं दुर्भाग्यसे नापास हो गये, तो बस ख़तम! सामान्य ज्ञानकी तो उन्हें कोई परवाह ही नहीं है।" मैं बहुत शरमिन्दा हुई। अक्सर मैं किताब लेकर बैठती थी। मगर इसका कारण यह था कि मेरे पास दूसरा कुछ करनेको नहीं था। सब कुछ देखनेकी इच्छा तो थी, लेकिन संकोचवश मैं किसीसे कुछ पूछती नहीं थी। और यों दिन बीत रहे थे। बाको पता चला। वे फ़ौरन अपने आप मेरी कठिनाई समझ गईं। उन्होंने भाईसे और बापूसे कहकर मुझे आश्रम और अहमदाबाद शहर दिखानेका बन्दोबस्त करवा दिया। इस तरह आख़िर मुझको सब जगहें देखनेका मौक़ा मिला।

कुछ दिन बाद बापूजीके दौरे पर जानेका समय आया। मेरी भी छुट्टियाँ खतम हो रही थीं। मुझे वापस भेज देनेकी बात हुई, लेकिन मैंने तो कभी अकेले सफ़र किया ही नहीं था। मुझको अकेले दिल्ली कैसे भेजा जाय? आखिर बापूजीने मुझे अपने साथ ले जानेका निश्चय किया। आगरा उनके रास्तेमें पड़ता था। वहाँसे मुझे दिल्ली भेजना आसान था। अहमदाबादसे हम लोग बंबई गये। वहाँ मैंने ट्रेनमेंसे पहली ही दफ़ा समुद्रके दर्शन किये। आश्रममें मेरी चप्पल खो गई थी। सोचा था, बंबईसे ले

छूँगी। मगर वहाँ उस दिन दूकानें बन्द थीं। बंबईसे बापूजी भोपाल गये। गाड़ीसे उतरकर पुल पार करते समय बाने देखा कि मैं नंगे पाँव चल रही हूँ। मुकाम पर पहुँचते ही उन्होंने अपने पासकी नई चप्पलें, जो कुछ ही दिन पहले उनके लिये आई थीं, निकालीं और मुझे पहनाईं। इस प्रकार बाके साथ रहते हुए मुझे क़दम-क़दम पर उनकी मृदुलताका और उनके मातृ-प्रेमका अनुभव होता रहा। मुझे मुक्तकंठसे बाकी स्तुति करते सुन कर किसीने कहा: "तुम बाके पास अधिक समय रहोगी, तो तुम्हें पता चलेगा कि वे ग़ुस्सा भी कर सकती हैं।" लेकिन मैं इसे मान नहीं सकी।

बाको अंग्रेज़ी बहुत नहीं आती थी। मगर अपनी थोड़ी-सी अंग्रेज़ीसे भी वे कितनी अच्छी तरह अपना काम चला लेती थीं, इसका उन दिनोंका एक उदाहरण मुझे याद आता है। भोपालमें बापूजी नवाब साहबके मेहमान थे। बाको शहदकी ज़रूरत थी। उन्होंने एक चुस्त-से अमलदारको, जो हम लोगोंकी तैनातमें था, पूछा: "आप हिन्दी जानते हैं?" बाकी मंशा हिन्दीसे बोलचालकी हिन्दुस्तानीकी थी। मगर मुस्लिम रियासतके एक मुसलमान अफ़सरको हिन्दीसे क्या वास्ता होता? उन्होंने शुद्ध हिन्दुस्तानीमें जवाब दिया: "जी नहीं।" बा बोलीं: "अंग्रेज़ी जानते हैं?" जवाब मिला: "जी हाँ।"

इस पर बाने कहा: "Bees, flowers, honey." और वह अफ़सर झट जाकर शहदकी बोतल ले आया।

नवाब साहबकी माँने बाको मिलनेके लिए बुलाया था। मैं बाके साथ थी। बेगमोंसे मिलने और उनके साथ बातचीत करनेमें बाको किसी क़िस्मका संकोच या कठिनाई मालूम नहीं हुई। धन-दौलतकी और राज-पाटकी चमक-दमक उन्हें ज़रा भी चकाचौंध नहीं कर पाती थी। उनके मन इनकी कोई क़ीमत न थी। वे अच्छी तरह जानती थीं, कि उनके पतिका दर्जा राजा-महाराजाओंसे कहीं बढ़-चढ़कर था। उन्होंने बेगमोंको खादीका पैग़ाम सुनाया। उनकी बातें सुननेवालेको यह कल्पना भी नहीं आ सकती थी, कि वे लगभग एक निरक्षर महिला थीं। उनका अक्षरज्ञान

चाहे कम रहा हो, मगर उनका साधारण ज्ञान, मनुष्य-स्वभावका और मानव-जीवनका उनका ज्ञान, बहुत गहरा था।

आगरेसे मैं वापस दिल्ली आई। कॉलेज खुलनेका वक़्त हो चुका था, इसलिए मैं दिल्लीसे लाहौर गई। लेकिन मेरे दिलमें तो बाका और आश्रमका चित्र खिंच चुका था। वहाँकी स्वतंत्रता और सादगीकी मेरे मन पर गहरी छाप पड़ी थी। इसलिए लाहौरका बनावटी जीवन मुझे बहुत चुभने लगा। मैंने मन ही मन निश्चय किया कि मैं अपने बस भर सादा जीवन बिताऊँगी। जब मैं भाईके साथ आश्रम जा रही थी, माताजीने मुझसे कहा था: "वहाँसे कोई व्रत वग़ैरा लेकर न आना।" मैंने वचन दिया कि मैं ऐसा कुछ नहीं करूँगी। माताजीका इशारा खासकर खादी पहननेके व्रतकी ओर था। उन्होंने उसी साल मेरे कॉलेजमें भरती होने पर मुझे बहुतसे नये कपड़े बनवा दिये थे। वे उनको ज़ाया करना नहीं चाहती थीं। मैंने आश्रममें खादी पहननेका व्रत तो नहीं लिया था, मगर वहाँसे लौटकर मैं खादीके सिवा दूसरा कपड़ा पहन ही न सकी। मैं खादीके तीन जोड़ कपड़े लेकर आश्रम गई थी। वापस आने पर मैंने उन्हींसे कोई तीन महीने अपना काम चलाया। आश्रममें जाकर मैंने बासे यह सीख लिया था, कि खादीके सादे कपड़ोंमें भी खासी अच्छी शोभा आ सकती है। बा हमेशा बहुत सफ़ाई और सलीक़ेसे कपड़े पहनती थीं। वहाँ मैंने कपड़े धोना भी सीख लिया था। इसीलिए मैं रोज़ अपने हाथके धुले कपड़े पहनकर कॉलेज जाती थी। आखिर माताजीने मुझे मिलके कपड़े पहनानेका आग्रह छोड़ दिया और खादीके नये कपड़े बनवा दिये।

बापूसे सूने आश्रममें

सन् १९३०में भाईके कहने पर मैं फिर आश्रम पहुँची। उन दिनों गर्मीकी छुट्टियाँ थीं और भाई और बापूजी दोनों जेलमें थे। आश्रम सूना था। बा उन दिनों कुछ दिनके लिए वहाँ आई थीं। उस समयकी बा दूसरी ही बा थीं। वे काफ़ी थकी हुई थीं। देशके दुःखसे दुःखी थीं। मैंने सुना कि वे गाँव-गाँव घूमकर कार्यकर्त्ताओं और सेवकोंका उत्साह बढ़ानेमें लगी थीं। उनके मुरझाये हुए चेहरे पर अपूर्व दृढ़ता

और आत्म-विश्वास झलकता था। वे अब सिर्फ़ एक कोमलांगी माता ही नहीं थीं, बल्कि रणभूमिमें उतरी हुई वीरांगना भी थीं। उनके मनमें हमारी लड़ाईकी न्याय्यताके और हमारी अंतिम विजयके बारेमें ज़रा भी शंका नहीं थी।

बापूजीकी निर्णयात्मक बुद्धि पर उन्हें अपूर्व श्रद्धा थी। वे राजनीति नहीं समझती थीं, मगर बापूको पहचानती थीं। उनके लिए यह काफ़ी था। उनमें हिन्दुस्तानके करोड़ों मूक लोगोंकी मनोवृत्ति प्रतिबिम्बित होती थी।

आश्रममें आनेके बाद बा साबरमती जेलमें रामदासभाई, मणिलाल-भाई और दूसरे कुछ मित्रोंसे मिलने गईं। जाते समय वे दूसरे कुछ आश्रमवासियोंको और मुझे भी अपने साथ ले गईं। जेलकी कठिनाइयाँ सहते-सहते उन लोगोंके चेहरे सूख गये थे। यह सब देखकर मेरा जी भर आया — मुझे रुलाई-सी आने लगी। लेकिन बाने तो बहुत जेल देखे थे, बहुत कठिनाइयाँ सहन की थीं। वे बिलकुल शान्त रहीं। स्वतंत्रताकी वेदी पर बलि चढ़ानेकी उन्हें इतनी आदत हो गई थी, कि उनको अपने पतिका, पुत्रोंका या अपना जेल जाना बलिदान-सा मालूम ही न होता था। हज़ारों लोग जेलोंमें बन्द थे न? उनके अपने लड़के दूसरोंसे अनोखे थे क्या? यह था उनका भाव! उनकी हिम्मत और बहादुरी देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ।

दिखावेसे नफ़रत

१९३०में देवदासभाई गुजरात (पंजाब) जेलमें थे और भाई (प्यारेलालजी) साबरमती जेलमें थे। सारी दुनियाको अपना परिवार बना लेनेके बापूजीके आदर्शको बाने अपना लिया था। बरसोंसे वे उस पर अमल करनेकी कोशिश कर रही थीं। देवदासभाई उनके लाड़ले लड़के थे, मगर बा साबरमती जेलमें भाईसे और दूसरे कार्यकर्त्ताओंसे मिलकर अपने लड़केसे मिल लेनेका आनन्द और आश्वासन पा लेती थीं। वे जिन लोगोंको मिलने जाती थीं, उन्हें उनसे मिलकर कितना आनन्द होता, और कितना आश्वासन व उत्साह मिलता, सो तो कहनेकी बात नहीं। वे सिर्फ़ एक बार देवदासभाईसे मिलने गुजरात आई थीं। मैं और

माताजी उनके साथ थीं। वहाँसे माताजीके कहने पर वे हमारे गाँवमें, जो गुजरात रेल्वे स्टेशनसे ४ मील आगे है, आईं। उस वक़्त मैंने देखा कि इतना महान् व्यक्तित्व होने पर भी बाको अपने जुलूस वगैराके दिखावेसे कितनी नफ़रत थी! वे तो भाईके प्रति अपने प्रेमके वश होकर उनके घर आई थीं। मगर लोगोंने उनका जुलूस निकालनेकी कोशिश की। उनका हेतु इस बहाने जनताका उत्साह बढ़ाना था। लेकिन बाको वह अखरा। इसे लेकर वे इतनी परेशान हुईं कि आख़िर लोगोंको अपना हठ छोड़ ही देना पड़ा। जनताके प्रेम-प्रदर्शन और स्वागत-समारोहके प्रति बाकी इतनी अरुचि देखकर पंजाबवालोंको बहुत आश्चर्य हुआ। हर आदमी एक ही सवाल पूछता था: "लीडरोंको तो यह सब बहुत अच्छा लगता है। बा क्यों हमें जुलूस निकालनेसे रोकती हैं?"

१९३१की गर्मीकी छुट्टियोंमें मैं फिर आश्रम गई। इस बार भी बापूजी वहाँ नहीं थे। कुछ दिनों बाद वे वहाँ आये। मगर आश्रममें न रहे। दाँडी मार्चके समय वे यह प्रण करके निकले थे, कि जब तक स्वराज्य नहीं मिलेगा, वे वापस आश्रममें आकर नहीं रहेंगे। इसलिए वे विद्यापीठमें ठहरे थे। कुछ दिनों बाद बा भी वहाँ आ पहुँचीं। एक अरसेके बाद उन्हें बापूजीके साथ रहनेका यह मौक़ा मिला था। इसके दो-चार दिन बाद ही बापू वहाँसे वाइसरायको मिलने शिमला चले गये और शिमलेसे सीधे उन्हें गोलमेज़ परिषद्के लिए विलायत जाना पड़ा। वे बंबईसे जहाज़ पर सवार हुए। उन दिनों बा साबरमतीमें ही थीं। उनके मनमें बापूजीके साथ विलायत जानेका तो क्या, बंबई जानेका भी विचार नहीं उठा। बरसों हुए, वे अपने पतिको हिन्दुस्तानकी और मानवजातिकी सेवाके लिए दे चुकी थीं। बापू'पर जितना उनका अधिकार था, उतना ही दूसरोंका भी। इस उसूल पर अमल करनेकी कोशिशमें लगी हुई बाको यह स्वाभाविक मालूम होने लगा था कि बापूजीके कामकी दृष्टिसे जिसका साथ रहना ज़रूरी हो, वही उनके साथ रहे।

गोलमेज़ परिषद्से लौटनेके बाद बापूजी फिर तुरन्त ही सन् '३२में जेल चले गये। माताजी विलायतसे लौटे हुए भाईको मिलने बंबई गई हुई थीं। वहाँसे वापस लौटते समय जब वे बापूजीको प्रणाम करने गईं,

तो बापूने कहा : "अब वापस क्या जाती हैं ? हमें जेल भेजकर आप भी जेल जाइये ।" बापूजीकी गिरफ्तारी माताजीके सामने ही हुई। बादमें भाई पकड़े गये । उसके बाद माताजी भी जेल गईं । कुछ दिनों तक वे और बा एक ही जेलमें थीं । माताजी मुझसे कहती थीं कि जेलमें बा बहुत प्रसन्न रहती थीं । जेलकी तकलीफ़ें उन्हें तकलीफ़ें ही नहीं मालूम होती थीं । यही नहीं, बल्कि उनकी छायामें रहनेवाले दूसरे क़ैदियोंका जीवन भी बहुत कुछ सरल और मधुर बन गया था ।

१९३५की गर्मीकी छुट्टियोंमें मैं दो-तीन हफ्तोंके लिए बापूजीके पास वर्धा गई थी । बापू उन दिनों मगनवाड़ीमें रहते थे । बा दिन भर अपने काममें लगी रहतीं । उसी साल नवंबरमें अपनी परीक्षाके बाद मैं भाईके साथ फिर वर्धा गई ।

बाकी सार-सँभाल

उन दिनों देवदासभाईकी तबियत अच्छी न थी। बाने जिस धीरज और समझसे उस बीमारीमें देवदासभाईकी सेवा की, वह अद्भुत थी । १९३६की गर्मियोंमें बा और भाई देवदासभाईको लेकर शिमले गये । भाई कहते थे कि किस तरह बा अपने साधारण ज्ञान और अपनी सहज बुद्धिके ज़रिये बड़े-बड़े डॉक्टरोंसे भी ज्यादा काम कर लेती थीं । आखिर उनकी मेहनत फली । देवदासभाई अच्छे हो गये । बा वापस बापूके पास पहुँच गईं ।

१९३७के दिसंबरमें बापूजी कलकत्तेमें बीमार पड़े । मैं वहाँसे कुछ दिनोंके लिए उनके साथ वर्धा आई। इसके बाद कुछ ऐसी घटनायें घटीं कि थोड़े दिनोंके बदले मैं बरसों उन्हींके पास रह गई । अब मुझे बाका और भी निकट परिचय हुआ । वहाँ पहुँचते ही बाने मुझे अपने चार्जमें ले लिया । उनके पास एक छोटा-सा कमरा, ग़ुसलखाना और बरामदा था। वहीं उन्होंने मेरा बिस्तर रखवाया । रात मुझे अपने पास बरामदेमें सुलातीं और सब प्रकारसे सगी माँकी तरह मेरी संभाल रखतीं । शुरूमें सुबह मैं अक्सर अपना बिस्तर उठाना भूल जाती और बा बिना कुछ कहे चुपचाप अपने हाथसे उठाकर उसे कमरेके अन्दर रख देतीं । जब मुझे इसका पता चला, तो मैं बहुत शर्मिन्दा हुई और फिर बिना भूले नियमसे अपना बिस्तर उठाने लगी । मैं बाका बिस्तर भी उठानेकी कोशिश करती,

लेकिन अक्सर बा मेरे पहुँचनेसे पहले ही अपना बिस्तर वगैरा उठाकर रख देती थीं। मैंने देखा कि बहुत बार वे दूसरोंके रखे हुए बिस्तरोंको उठाकर उन्हें फिर क़रीनेसे रखती थीं। बड़े-बड़े वज़नी गद्दोंको भी उठानेमें वे बिलकुल आलस्य नहीं करती थीं। उन्हें सफ़ाई और क़रीनेसे इतना प्रेम था कि अव्यवस्था और गन्दगी उनसे सही नहीं जाती थी। उनकी नियमितता भी इतनी ही आश्चर्यजनक थी। मुझे याद नहीं पड़ता कि एक भी ऐसा अवसर आया हो, जब बा कोई काम करना भूल गई हों। एक बार मैंने उनकी छोटी पेटी (अटैचीकेस)मेंसे कुछ निकाला। उसे बन्द करनेकी एक स्प्रिंग कुछ बिगड़ी हुई थी। इसलिए मैंने उसे एक तरफ़से ही बन्द करके दूसरीको खुला छोड़ दिया। बाने देखा, और चुपचाप उसे बन्द कर दिया। जब दुबारा उसमेंसे कुछ निकालनेका मौक़ा आया, तो बा कहने लगीं: "ज़रा यहाँ लाओ, मैं बन्द कर दूँ।" मैंने कहा: "मैं करती हूँ।" बाकी आँखें हँस रही थीं — मानो कहती हों: "कहीं भूल तो न जाओगी?"

बाकी दिनचर्या

बाकी तबियत अच्छी नहीं रहती थी। बरसोंसे खाँसी और दमेके कारण उनका हृदय और फेफड़े कमज़ोर पड़ गये थे। लेकिन उनको अपने शरीरकी कोई परवाह नहीं थी। उनकी स्फूर्ति अद्भुत थी। धीमे-धीमे काम करना या चलना वे जानती ही न थीं।

बा सुबह चार बजे प्रार्थनाके लिए उठनेका आग्रह रखती थीं। प्रार्थनाके बाद बापूजी आधा-पौना घंटा फिर सो लेते, मगर बा उनके उठनेसे पहले उनके लिए नाश्ता तैयार करने या करवानेको चली जातीं। आश्रमवासियोंमें बापूजीकी सेवा करनेकी लालसा तो हमेशा रहती ही थी। इसलिए बा अक्सर उनकी सेवाके कामोंको बाँट दिया करतीं। लेकिन किसीको कोई काम सौंपनेके बाद भी वे ख़ुद सामने खड़ी होकर देखतीं, कि सारा काम बराबर हो रहा है या नहीं। सफ़ाई बराबर रखी जा रही है या नहीं। नाश्ता तैयार करके वह उसे बापूजीके कमरेमें

लिवा लातीं और ख़ुद पास बैठकर उन्हें खिलातीं । इसके बाद वे इस बातका ख़याल रखतीं कि बरतन वग़ैरा भलीभाँति साफ़ होते हैं या नहीं । अक्सर मैंने देखा है कि किसी लड़कीके साफ़ किये हुए बरतनोंको बाने अपने हाथों फिर साफ़ किया है । उनके बरतन हमेशा चमकते रहते थे ।

जब बापूजी घूमनेको निकल जाते, बा स्नान वग़ैरासे निपटकर अपने पूजा-पाठमें लगतीं । वे रोज़ घंटा डेढ़ घंटा रामायण, गीताजी वग़ैराका पाठ करतीं । फिर रसोई घरमें पहुँच जातीं और बापूजीका खाना तैयार करवातीं; दूसरोंके लिए बननेवाले खाने पर भी नज़र रखतीं । परोसनेके समय बापूजीको और आसपास बैठे दूसरे मेहमानोंको परोसकर वे बापूके पास ही खाने बैठ जातीं । उस समय भी उनकी एक आँख बापूजी पर रहती । ज्यों ही कोई मक्खी बापूजीके नज़दीक आती, बाका बायाँ हाथ पंखे या रूमालसे उसे उड़ा दिया करता । खानेके बाद बा बापूजीके पास आकर बैठतीं और उनके पैरोंमें घीकी मालिश करतीं । इसके बाद वे अपने कमरेमें जाकर थोड़ा आराम करतीं और फिर कातने बैठ जातीं । वे रोज़के चारसौ-पाँचसौ तार कातती थीं । कई बार बीमारीसे उठनेके बाद कमज़ोरीकी हालतमें मुझे उनको टोकना पड़ा था । मैं कहती : "बा, आप कातनेकी इतनी मेहनत न किया करें ।" लेकिन बा हँसकर टाल देतीं । उन्हें लगता था कि जो भी बापूजीके लिखने-पढ़नेके और राजनीतिके कामोंमें वे मदद नहीं कर सकतीं, तो भी कातकर वे उनके कामको आगे तो बढ़ा ही सकती हैं न ? और, बापूने ही कहा है न, कि सूतके धागेसे स्वराज्य बँधा है ! इसलिए कताई छोड़ना उनको हमेशा खटकता था । शामको वह फिर रसोई घरमें पहुँच जातीं । बापूजीका खाना तैयार करवातीं । दूसरे कामोंकी देखभाल करतीं । फिर सुबहकी तरह बापूजीको भोजन करातीं । वे ख़ुद तो बरसोंसे शामको खाना खाती ही न थीं । सिर्फ़ कॉफी पी लिया करती थीं । इधर-इधर, इन अख़ीरके दो-चार सालसे, उन्होंने कॉफी भी छोड़ रखी थी, और उसकी जगह वे दूधमें कुछ मसाले उबालकर उसे लिया करती थीं । शामको जब बापू घूमने निकलते, बा आश्रमके बीमारोंको देखनेके लिए उनके

पास जातीं, और फिर आश्रमकी दूसरी बहनोंके साथ अक्सर ख़ुद भी थोड़ा घूम आतीं। आश्रमसे कोई आधे फर्लांग पर बापूजी उन्हें वापस आते हुए मिलते और वे भी उनके साथ हो लेतीं। घूमकर लौटनेके बाद शामकी प्रार्थना होती थी। बा पूरी प्रार्थनामें अच्छी तरह भाग लेतीं और रामायण भी गाती थीं। रामायणकी तैयारी वे सुबह नाणावटीजीके साथ बैठकर पहलेसे ही कर लिया करती थीं। वे सुबह इतने प्रेम और रसके साथ गीता और रामायणका अभ्यास करती थीं, कि कोई विद्यार्थी भी अपनी परीक्षाके लिए उससे अधिक ध्यान-पूर्वक तैयारी न करता होगा। शामकी प्रार्थनाके बाद प्रार्थनाके स्थान पर ही बाका दरबार लगता। लगभग सभी बहनें बाके आसपास बैठ जातीं। कोई पाँव दबातीं, कोई पीठ। उस समय वहाँ आश्रमकी सब खबरें कही-सुनी जातीं और इधर-उधरकी चर्चाएँ होतीं। आधे-पौने घंटेके बाद दरबार बरखास्त करके बा अपने और बापूजीके सोनेकी तैयारीमें लग जातीं।

उन दिनों बाके पास रामदासभाईका छोटा लड़का कनु रहा करता था। बा उसकी देख-भाल एक नौजवान माँ के-से उत्साहके साथ करती थीं और उसके पीछे काफ़ी मेहनत उठाती थीं। वे बच्चोंके मनको ख़ूब समझती थीं। नतीजा यह हुआ कि कनु अपनी माँको भूल ही गया। उसके लिए उसकी 'मोटी बा' (बड़ी माँ) ही सब कुछ थीं। १९३९में जब बा राजकोटके सत्याग्रहमें शरीक होनेके लिए चली गईं, तो बापूजीके लिए कनुको शान्त रखना असंभव हो गया। उन्हें आशा थी कि वे उसे अच्छी तरह सँभाल सकेंगे, मगर वैसा कुछ हो नहीं सका। कनु सारे दिन अपनी 'मोटी बा'को याद करता रहता था। आख़िर एक दिन बापूजीने उससे हँसते-हँसते कहा: "तू मोटी बाके नामकी माला जप, मोटी बा आकर तेरे सामने खड़ी हो जायँगी।" कनु ख़ुश होकर बोला: "आपो माळा!" (माला दीजिये)। बापूजीने माला दी। वह माला लेकर और आँख बन्द करके 'मोटी बा,' 'मोटी बा'के नामका जप करने लगा। कुछ देर बाद रोता-रोता आया और बोला: "मोटी बा तो नहीं आईं।" आख़िर बापूजीको हारकर उसे उसकी माँके पास भेज देना पड़ा।

बाका त्याग

कलकत्तेसे बापूजी काफ़ी बीमार होकर आये थे। उनकी बीमारीकी चिन्ता करते-करते कई आश्रमवासी तो बहुत घबरा गये थे। मगर बाके पास घबराहट नामकी कोई चीज़ न थी। जब हम कलकत्तेसे लौटे, दिसंबरका महीना चल रहा था। सेवाग्राममें .खूब ठण्ड पड़ती थी। बापूको वर्षोंसे आकाशके नीचे सोनेकी आदत थी, लेकिन इस समय ठण्डकी वजहसे .खूनका दबाव इतना बढ़ जाता था, कि डॉक्टरी सलाहके कारण उन्हें खुलेमें सोना छोड़ना पड़ा। कलकत्ता जानेसे पहले बापूजी सेवाग्राममें सबके साथ एक बड़े 'हॉल' के कोनेमें रहा करते थे। उनकी बीमारीकी खबर सुनकर उन्हें एकान्त और शान्ति देनेके खयालसे मीरा बहनने उनके लिए अपना कमरा ठीक करवा कर रखा। मगर बापूको वहाँ रहना स्वीकार न था। वे बोले: "मीराने तो वह कमरा अपने लिए और अपने खादी-कामके लिए बनाया था। मैं वहाँ कैसे रह सकता हूँ? और मुझसे बिना पूछे इस तरहका परिवर्तन क्यों किया गया? मैं तो अपने पुराने कोनेमें ही रहूँगा।"

मगर कोनेमें रातको सोया कैसे जा सकता था? दूसरे लोग वहाँ पहलेसे ही सोते थे। अगर बापू वहाँ सोने लगें, तो उन्हें तकलीफ़ हो। बापू इसे कभी बरदाश्त नहीं कर सकते थे। मीरा बहनवाले कमरेमें सोनेके लिए कहनेकी किसीकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। आखिर बा आगे बढ़ीं। बोलीं: "मेरा कमरा है न?" और, बापू बाके कमरेमें सोने लगे। उनका कमरा भी छोटा ही था। बापूके साथ एक-दो जने और भी उस कमरेमें सोनेको पहुँचे। बा, कनु और मैं बरामदेमें सोने लगे। बाने एकबार भी यह नहीं कहा, कि "बापू सोयें, तो भले सोयें लेकिन और किसीके लिए मैं अपना कमरा क्यों खाली करूँ?" दूसरे दिन सवेरे नाश्ता करते समय बापू कहने लगे: "मैंने खास तौर पर यह घर बाके लिये बनवाया था, और अब मैं इस पर कब्ज़ा करके बैठ गया हूँ। बाको आज तक कभी अलग कोठरी मिली ही नहीं। मेरा और बाका जो कुछ था, सो शुरूसे ही सबके लिए था। लेकिन इस खयालसे कि बाके इस बुढ़ापेमें उनको थोड़ा एकान्त मिल जाय तो अच्छा हो, मैंने उनके लिए

यह घर बनवाया था। बाने इसका उपयोग भी सिर्फ़ अपने लिए कभी नहीं किया। उन्होंने इसमें कई लड़कियोंको अपने साथ रखा है। लेकिन मेरे आ जाने पर तो बाको यहाँसे बिलकुल निकल ही जाना पड़े न? मैं जहाँ जाता हूँ, वहीं मेरे रहनेकी जगह धर्मशाला बन जाती है। मुझको यह खटकता है, लेकिन मुझे कहना चाहिये कि बाने कभी इसकी शिकायत नहीं की। मैं जो चाहता हूँ, बासे ले लेता हूँ। हर किसीको बाके पास रहने भेज देता हूँ। इसमें वह हमेशा रज़ामन्द रही हैं।" बा बापूके पास ही खाट पर बैठी थीं। बापू उनसे सहज हँसकर बोले: "होना भी तो यही चाहिये न? अगर मियाँ एक कहे, और बीवी दूसरा, तो जीवन खारा हो जाय। लेकिन यहाँ तो मियाँकी बातको बीवीने सदा माना ही है।" सब हँसने लगे।

अन्दर सोनेसे भी बापूजीके ख़ूनका दबाव ठिकाने नहीं आया। सर्दीके वक़्त बहुत बढ़ जाता था। आख़िर डॉक्टरी सलाहसे बापूजीने जुहू जाना स्वीकार किया। इस पर कुछ लोग तो रोने लगे। "क्या बापूजीकी हालत इतनी ख़राब है? वे वापस फिरसे लौटेंगे तो सही न?" लेकिन बाके पास घबराहटका नाम नहीं था। वे आदर्श नर्स बनकर उनकी सेवामें लगी हुई थीं। अपना आराम वग़ैरा सब कुछ भूल बैठी थीं। वे सारा दिन बापूजीके आस-पास रहा करतीं और कहीं भी कोई काम हो, तो करने या करवानेको तैयार रहतीं। बा जुहू आईं।

जुहूमें बापू करीब दो महीने रहे। वहाँ उनकी तबियत ख़ूब सुधर गई। वे समुद्र-किनारे घूमने जाते। बा उन दिनों बराबर उनके साथ घूमने निकलतीं। तबियत सुधरनेके बाद १९३९के शुरूमें बापू वापस सेवाग्राम आये। वहाँसे वे राजबन्दियोंको छुड़वानेके कामसे कलकत्ते गये। मैं, भाई, महादेवभाई और कनु सब उनके साथ थे। बाने खुशीसे उनको बिदा किया। जब बापू अच्छे रहते थे, तब बा उनके साथ रहनेका आग्रह नहीं रखती थीं।

जगन्नाथजीके दर्शनोंवाली घटना

कलकत्तेसे बापूजी गांधी-सेवा-संघकी बैठकके लिए कटक गये। सेवाग्रामसे बा, दुर्गाबहन वग़ैरा भी वहाँ आ पहुँची थीं। एक दिन कुछ

लोगोंने जगन्नाथपुरी जानेका विचार किया । बा, दुर्गाबहन, लीलावतीबहन, नारायण और दूसरे कुछ लोग रवाना हुए । देवालयोंके प्रति बाके मनमें हमेशासे ही अपूर्व भक्ति थी । इसलिए दुर्गाबहनने और बाने अन्दर जाकर जगन्नाथजीको प्रणाम किया, प्रदक्षिणा दी और शामको सब लोग वापस आये । जब बापूजीने सुना कि बा और दुर्गाबहन मंदिरमें गईं थीं, तो उन्हें बहुत दुःख हुआ । वे बहुत नाराज़ हुए : " जिस मंदिरमें हरिजनोंको नहीं जाने दिया जाता, उसमें हम कैसे जा सकते हैं ? " शामको घूमते समय बापूजी बाके कंधे पर हाथ रख कर चले और उनसे इस बारेमें बात की । बाने एक छोटे बालककी तरह अत्यन्त सरलतासे अपनी भूल स्वीकार कर ली और बापूजीसे क्षमा माँगी । बापूजीका रोष ग़ायब हो गया । उन्होंने बासे कहा : " इसमें कसूर तो मेरा ही है । मैं तेरा शिक्षक ठहरा, और मैंने तेरे शिक्षणको अधूरा रहने दिया । फिर तू क्या करे ? " कुछ देर बाद महादेवभाईसे बातें करते हुए बापूजीने कहा : " बाने इतनी सरलतासे मेरे सामने अपनी भूल क़बूल की है, कि मैं मुग्ध हूँ । इस घटनासे मुझे ज़बरदस्त आघात पहुँचा है । लेकिन मुझे लगता है कि इसकी ज़िम्मेदारी बा या दुर्गाकी नहीं, मेरी और तुम्हारी है । अपना दोष तो मैंने कई बार क़बूल किया है । लेकिन इस वक़्त तो मुझे तुम्हारी बात करनी है । तुम्हारी और दुर्गाकी तो एक असाधारण जोड़ी है । तुम परस्पर मित्र हो । तुमने दुर्गाको अपनेसे इतना पीछे क्यों रहने दिया ? जिस तरह तुम बाबलाकी शिक्षाके बारेमें सोचते रहते हो, उसी तरह दुर्गाके बारेमें क्यों नहीं सोचा ? " महादेवभाई बेचारे क्या कहते ! उन्हें अपनी भूल इतनी साफ़ दिखाई पड़ी कि उन्होंने बापूको एक पत्र लिखा : " मैं आपके पास रहनेके लायक़ नहीं हूँ । इसलिए आप मुझे अपने पाससे चले जानेकी इजाज़त दें । " मगर बापू यों उनको छोड़नेवाले थोड़े ही थे ! भूले-भटकोंको रास्ते पर लाना ही तो बापूका काम रहा है । फिर अपने निकटतम व्यक्तिकी छोटी-सी भूलके लिए वे उसे छोड़ कैसे सकते थे ? लम्बी-चौड़ी चर्चा हुई । पत्रव्यवहार हुआ । बापूजी और उनकी पार्टी डेलाँगसे वापस कलकत्ते आई । बा वग़ैरा सेवाग्राम लौट गये थे । कलकत्तेमें भी कुछ समय तक इसकी चर्चा चलती रही । बापूजी महादेवभाईको

समझाते रहे। आखिर महादेवभाईने यह सारा क़िस्सा एक लेखके रूपमें 'हरिजन'में छपाया और .खुद शान्त हुए।

सेवाग्राममें कॉलरा

१९३८ या '३९की गर्मियोंमें सेवाग्राममें हैज़ा फैला। मैंने सब आश्रमवासियोंसे हैज़ेका टीका लगवा लेनेको कहा। बापूजीने प्रार्थनामें कह दिया कि सब लोग सूई लगवा लें तो अच्छा है; क्योंकि गाँवके लोग आश्रममें आते-जाते रहते हैं और छूत फैलनेका काफ़ी डर है। वर्धामें काका साहब वग़ैरा हैज़ेसे बीमार थे। हम लोग आश्रममें हैज़ेको न्योतनेका खतरा उठाना नहीं चाहते थे। कइयोंके दिलमें इंजेक्शनके प्रति अश्रद्धा थी। वे उससे बचना चाहते थे। लेकिन किसीकी बोलनेकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। आखिर बाने कहा: "मैं तो इंजेक्शन नहीं लूँगी; जो होना हो, सो हो। बापू बोले: "जो इंजेक्शन न लेंगे, उन्हें बालकोबावाली झोंपड़ीमें जाकर रहना पड़ेगा।" बाको यह स्वीकार था, लेकिन इंजेक्शन लगाना स्वीकार न था। नतीजा यह हुआ कि बहुत थोड़े लोगोंने टीका लगवाया। गाँवमें तो क़रीब सभीको टीका लगाया गया था। दूसरी खबरदारी और सार-सँभालके कारण सेवाग्रामसे हैज़ा जल्दी ही दूर किया जा सका और आश्रम बिलकुल बच गया।

राजकोट सत्याग्रह

१९३९के शुरूमें सरदार वल्लभभाईके आग्रह करने पर बापूजी बारडोली गये। उसी समय राजकोटमें सत्याग्रह शुरू हुआ। वहाँके ठाकुर साहबने प्रजाको कई हक़ देने स्वीकार किये थे। मगर बादमें वे बदल गये। उन्होंने वचनभंग किया। जनताने इसके खिलाफ़ अपना विरोध प्रकट करनेके लिए सत्याग्रह करनेका निश्चय किया। बाने सुना, तो वे झट बापूजीके पास पहुँचीं। राजकोट तो उनका अपना घर था। राजकोटमें सत्याग्रह हो, तो उसमें उन्हें भाग लेना ही चाहिये। बापूजीने उन्हें इजाज़त दे दी, और बा राजकोटमें सविनयभंगके कसूरके लिए नज़रबन्द कर ली गईं। पहले तो उन्हें एक बिलकुल अकेले गाँवमें रखा गया। देवदासभाई वहाँ उनसे मिलने गये। वहाँका वातावरण इस क़दर खराब

था कि आज भी उसका वर्णन करते हुए देवदासभाईकी आँखें डबडबा आती हैं। लेकिन बाने अपने किसी पत्रमें इसकी कोई शिकायत नहीं की। वे स्वतंत्रताकी सिपाही बन कर गई थीं और मानती थीं कि सिपाहियोंको कठिनाइयाँ सहन करनेसे घबराना नहीं चाहिये। लेकिन जनतामें इसको लेकर बहुत हलचल मची। बाकी सेहत इतनी खराब थी कि उन्हें डॉक्टरी मददसे इतनी दूर रखना पाप था। आखिर राजकोट सरकार उनको राजकोटसे १०-१५ मील दूर अपने एक महलमें ले आई। वहाँ उनके साथ मणिबहन और मृदुलाबहन थीं। उन दिनोंके बाके पत्र बहुत दिलचस्प होते थे। उन्हें सिर्फ़ बापूजीकी तबियतकी और चि० कनुकी चिन्ता रहा करती थी।

बाके जानेके कुछ ही दिनों बाद बापूजीने .खुद राजकोटके जंगमें कूदनेका निश्चय किया। बापू, भाई, कनु और मैं राजकोट पहुँचे। बापूजीके साथ हम बासे उस जगह मिलने गये, जहाँ वे नज़रबन्द थीं। सरकारने उन्हें सब तरहका आराम दिया था, तो भी उनका चेहरा मुरझाया-सा था। बा बापूजीके वियोगको बहुत दिनों तक सह ही नहीं सकती थीं। मनसे भले वे हिम्मत रख लें, मगर उनके शरीर पर उसका असर हुए बिना न रहता था।

फिर तो बापूजीके राजकोटवाले उपवास शुरू हुए। जब बाको यह खबर मिली, उन्हें आघात तो पहुँचा, लेकिन वे इस तरहके सदमोंको सहनेकी आदी हो चुकी थीं। बाके पास उपवासकी खबर लेकर मैं ही गई थी। बा कहने लगीं: "मुझे खबर तो देनी थी, कि बापूजी उपवासका विचार कर रहे हैं।" मैंने कहा: "लेकिन बा, हममेंसे कोई यह जानता ही नहीं था कि बापू उपवासका विचार कर रहे हैं। एकाएक सुबह उठकर बापूने एक पत्र लिखा और उससे सबको पता चला। दलील करनेका उन्होंने मौका ही नहीं दिया।"

इस पर बाने कोई उत्तर नहीं दिया। तुरन्त ही खाना बनानेवालीको कहलवाया कि जब तक बापूजीका उपवास चलेगा, वे एक बार खायेंगी और सो भी सिर्फ़ फलाहार। बापूके उपवासोंमें वे हमेशा ऐसा ही करती थीं, जिससे सेवा भी कर सकें और बापूके साथ तपस्या भी।

दूसरे या तीसरे दिन एकाएक बा बापूके सामने आकर खड़ी हो गईं। बापूने पूछा : "क्यों आईं ?" सरकारकी तरफ़से बाको कहा गया था कि वे गांधीजीसे मिलने जाना चाहें, तो जा सकती हैं। इसीलिए वे आई थीं। मगर रात तक बाको कोई लेने नहीं आया। सरकारने इस बहाने उन्हें छोड़ दिया था। लेकिन बापू इसे क्यों सहन करने लगे ? उन्होंने कहा : "छोड़ना हो, तो सबको छोड़े। मृदुला और मणिको भी छोड़े, और बाक़ायदा छोड़े।" यों बापूजीने रातके एक बजे बाको वापस जेल भेजा। किसीने कहा : "वह रास्ता तो बन्द है। बग़ैर खास पासके वहाँ किसीको जाने नहीं देते। बाको रास्तेमें ही रोक लिया जायगा।" बापूजीने बासे कहा : "तुझे रास्तेमें रोकें, तो तू वहीं सत्याग्रह करना। जहाँ रोकें, वहीं पड़ी रहना। चाहे सड़क पर ही सारी रात क्यों न पड़ा रहना पड़े !" बा बिना किसी तरहकी दलील किये चली गईं। उस समय उनके मनकी क्या दशा रही होगी ? बापूजीको उस हालतमें छोड़ कर जाना कैसा लगा होगा ? लेकिन इन बातोंमें बापूजीके साथ दलील करनेका विचार तक उनके मनमें नहीं उठता था। बापूजीने सरकारको भी पत्र लिखा। राजकोट दरबारकी हिम्मत न हुई कि वह बाको सारी रात सड़क पर रहने दे। बा वापस महलमें ले जाई गईं। दूसरे दिन अच्छी तरह लिखा-पढ़ी करके सरकारने बा, मणिबहन और मृदुलाबहनको छोड़ दिया। दुपहरको तीनों बापूके पास पहुँच गईं। उस दिन बापूजीकी हालत थोड़ी गंभीर थी। बा उनकी सेवामें लीन हो गईं। अपनी थकान, बीमारी, सब भूल गईं।

पहली सख़्त बीमारी

राजकोटसे बापूजी कलकत्ते गये और वहाँसे गांधी-सेवा-संघके वार्षिक सम्मेलनके लिए वृन्दावन पहुँचे। वृन्दावनसे वे वापस राजकोट गये। रास्तेमें दिल्ली उतरे। वहाँ बाको बुख़ार आ गया। मैंने बापूजीसे कहा, कि वे बाको दो-चार रोज़ सफ़रमें न रखें। मगर बापूजी माने नहीं। रास्तेमें ट्रेन ही में बाको १०५ डिग्री बुख़ार हो आया। लेकिन बापूजी पास थे इसलिए उनको अपनी बीमारीकी कोई चिन्ता न थी। राजकोट पहुँचने पर दवा वग़ैरा देनेसे बा अच्छी हो गईं। इसके कुछ

समय बाद जब बापूजी सरहद जानेके लिए बंबई गये, तब बा बहुत बीमार हो गईं। उनकी सेहत गिरी-सी तो थी ही, रास्तेकी तकलीफ़के असरसे बंबई लौटने पर उन्हें निमोनिया हो गया। लेकिन बामें स्वस्थ होनेकी शक्ति भी अद्भुत थी। उनका बुखार उतरने पर बापूजी सरहदी सूबेके लिए रवाना हुए। बाको भी वहाँ जाना था। मगर कमज़ोरीके कारण ८-१० दिन बाद जानेका निश्चय हुआ। मैं और भाई बाके साथ बंबईमें रहे। उस समयका बाका सहवास और बादमें सरहदी सूबेकी यात्राके स्मरण बहुत मधुर हैं। मेरे पास इन दिनों बाकी सार-सँभालके सिवा दूसरा कोई काम नहीं था। मैं सारा समय उनकी सेवामें रहती। बा भी हम दोनों भाई-बहनके साथ बराबरीके एक मित्रकी तरह रहने लगीं। तब मैंने देखा कि उनका मन कितना ताज़ा था और नये-नये दृश्योंमें और दूसरी कई चीज़ोंमें वे कितना रस ले सकती थीं। बा मुझ-पर अपनी लड़कीकी तरह प्रेम रखती थीं। माँ हमेशा यह सोचती है, कि उसके बच्चेके समान बुद्धिशाली दुनियामें दूसरा कोई नहीं! इसी तरह बा भी मानने लगी थीं कि उनकी सुशीलाका डॉक्टरी ज्ञान गहरा था। मुझे इससे घबराहट होती। मैं अपनी अपूर्णताको जानती थी। लेकिन बाको बड़े-से-बड़े डॉक्टरके नुस्ख़ेसे भी तबतक संतोष न होता था, जबतक वे मुझसे उसके बारेमें सम्मति न ले लें। बाके इस प्रेम और विश्वासने अपने डॉक्टरी ज्ञानको बढ़ानेकी मेरी इच्छाको ख़ूब उत्तेजित किया।

दूसरी सख़्त बीमारी

सरहदी सूबेसे लौटने पर मैं कुछ दिन दिल्ली ठहर गई। मुझे अपना अभ्यास पूरा करना था। एम० डी० की परीक्षा देनी थी। उसके बारेमें सब जानकारी हासिल की। मगर उस साल मैं अभ्यासके लिए दिल्ली ठहर नहीं सकी। सेवाग्राममें कई बीमार इकट्ठा हो गये थे। बापूजीको मेरी हाज़िरीकी ज़रूरत थी। इसलिए मैं वापस सेवाग्राम आई। लेकिन १९४० के जूनमें फिर दिल्ली गई और अभ्यास शुरू किया। १९४१ के शुरूमें बापूजीका पत्र मिला: "बा बीमार रहती हैं। रोज़ कहती हैं, 'मुझे सुशीलाके पास भेज दो'। तू मुझे तारसे जवाब दे कि

मैं उन्हें भेजूँ या नहीं।" मैंने तुरन्त तार किया कि बा .खुशीसे आवें। सो मार्चमें बा दिल्ली आ पहुँचीं। बिलकुल अकेली थीं। मैंने इस बारेमें बहुत शिकायत की कि इस हालतमें, इतनी कमज़ोर सेहतके रहते, बाको यों अकेले नहीं भेजना चाहिए था। महादेवभाईने लिखा: "बापूने कहा था, कि अकेली ही भेज दो। बाको भी लगा कि वे अकेली जा सकती हैं, सो मैं उन्हें गाड़ीमें बैठा आया। साथके मुसाफिरोंसे कह दिया था कि ध्यान रखें"। बा कहने लगीं: "इसमें हुआ क्या! तुम तो व्यर्थ चिन्ता करती हो। सीधा सफ़र था। गाड़ीमें ही बैठे रहना था। किसीने वहाँ बैठा दिया, और यहाँ कोई उतार कर ले आया। इतना बस नहीं है क्या?" मैं चुप हो गई। इस दृढ़ता और आत्म-विश्वासके सामने कोई क्या कह सकता है?

बा देवदासभाईके यहाँ ठहरीं। मैं दिनमें दो-तीन बार उन्हें देखने जाती और दवा वग़ैरा लगानेका काम कर आती। इसी बीच ईस्टरकी छुट्टियाँ आईं। बापूजीने मुझे सेवाग्राम बुलाया। मैंने अपने अभ्यासके लिए बंबई जानेका कार्यक्रम पहलेहीसे बना रखा था। बा ख़ास तौर पर सेवाग्रामसे मेरे पास आई थीं। जो भी उन्होंने तो बिना संकोचके मुझसे कह दिया: "तू जा कर आ, मैं आठ दिन यहाँ रहूँगी," लेकिन मुझको यह अच्छा नहीं लगा। बापूजीको तार करके उनके पास ही रहनेकी इजाज़त ले ली। बंबई जानेका कार्यक्रम रद कर दिया। अच्छा ही हुआ। बाको बवासिरका इंजेक्शन दिलाना पड़ा। इसके लिए मैं उन्हें अस्पताल ले गई। दुपहरको उन्हें अपने कमरेमें लाई। बाने कहा कि वे दो-चार दिन मेरे पास ही रहना पसंद करेंगी। मेरे लिए इससे बढ़ कर .खुशीकी बात और क्या हो सकती थी? मगर मुझे डर था कि मैं बाको पूरा आराम नहीं पहुँचा सकूँगी। जब मैं अस्पताल जाऊँगी, बा अकेली कैसे रहेंगी? मगर बाको दूसरी परवाह न थी। उन्होंने कहा: "तू सबेरे-शाम प्रार्थना सुनायेगी, तो मुझे अच्छा लगेगा। इसीलिए मैं यहाँ ठहरना चाहती हूँ।" मैं देवदासभाईके घर जा कर भी बाको प्रार्थना सुनानेके लिए तैयार थी, लेकिन मैंने इस बारेमें आग्रह नहीं किया। कहीं बा यह न समझ लें कि मैं उन्हें रखना नहीं चाहती। मुझे जो संकोच था, सो

सिर्फ़ उनके आरामके ख़यालसे था। सो मैं उनके आग्रहके वश हुई और बा मेरे पास ही रह गईं।

बाको आराम पहुँचानेके ख़यालसे मैंने दुपहरमें उनके कमरेको पानीसे तर करके .खूब ठंडा कर दिया। बिजलीका पंखा तो था ही। बाको बहुत अच्छा मालूम हुआ। वे .खूब सोईं, मगर सर्दी बरदाश्त न कर सकीं। दूसरे दिन उन्हें थोड़ा बुखार हो आया। तीसरे दिन लक्ष्मी भाभी उन्हें अपने घर ले गईं, क्योंकि बीमारीमें वे बाके पास आये बिना रह नहीं सकती थीं, और धूपमें आने-जानेसे बच्चे बीमार पड़ने लगे थे। बाकी बीमारी बढ़ गई। उन्हें पेशाबमें भी थोड़ी तकलीफ़ रहने लगी। निमोनियाका भी असर था। बस, मैं तो अपनी परीक्षाको भूलकर दिन-रात बाकी सेवामें ही लगी रहती थी, और ईश्वरसे सतत प्रार्थना करती थी, कि हे भगवन्, बा अच्छी हो जायँ! वही मेरी एम० डी०की डिग्री होगी। मुझे चिन्ता खाये जाती थी। सेवाग्रामसे चलकर बा मेरे पास आईं; अब बाको कुछ हो गया, तो मैं बापूको क्या मुँह दिखाऊँगी? आख़िर भगवान्‌ने मेरी लाज रख ली। बाकी तबियत धीरे-धीरे सुधरने लगी। उन दिनों बापूजी बाको हर रोज़ पत्र लिखा करते थे। बहुत दफ़ा पत्र मेरे अस्पतालके पते आता। जब मैं बापूजीका पत्र लेकर बाके पास जाती, तो उनके चेहरे पर निराली ही रोशनी दिखाई देने लगती थी। मुझे ज़रा भी शक नहीं कि बाके अच्छा होनेमें उन पत्रोंका बहुत बड़ा हाथ था। आख़िर अप्रैलके अन्तमें देवदासभाई अपने परिवारके साथ बाको सेवाग्राम छोड़ने गये। बा अच्छी हो कर गईं। जिस तकलीफ़का इलाज करवाने आई थीं, वह भी मिट गई थी और थोड़ी कमज़ोरीको छोड़कर सब तरहसे उनकी सेहत खासी अच्छी हो गई थी।

अन्तिम कारावासकी तैयारी

मई, १९४२के अन्तमें मैंने एम० डी०की परीक्षा पास की। लेकिन अस्पतालमें काम करनेका मेरा समय अगस्तके दूसरे हफ़्तेमें खतम होता था। अगस्तके शुरूमें माताजी भाईसे मिलने सेवाग्राम गईं। मैंने सोचा था कि ए० आई० सी० सी०की बैठकके बाद जब बापू बंबईसे सेवाग्राम

लौटेंगे, तभी मैं वहाँ जाऊँगी। मगर ५ या ६ अगस्तको मुझे पता चला कि बापूजी तो सेवाग्राम पहुँचनेसे पहले ही गिरफ़्तार हो जानेवाले हैं। मैंने अपने प्रिंसिपालसे चार-पाँच दिनकी ज्यादा छुट्टी माँगी और बा, बापू, भाई वग़ैरासे मिलनेके लिए मैं बंबईकी गाड़ीमें सवार हुई। ८ अगस्तकी शामको मैं बंबई पहुँची। ए० आई० सी० सी०के पंडालमें गई, तो देखा, बापूजीका भाषण होनेको था। भाषण सुना। मुझे इस बातकी बहुत .खुशी थी कि मैं वह भाषण सुन सकी। मुझे देखकर बापूजीको और भाई वग़ैरा सबको आश्चर्य ही हुआ। मेरा तार उन्हें मिला नहीं था। किसीको पता नहीं था कि मैं आ रही हूँ। बा ए० आई० सी० सी०में नहीं आई थीं। वे बिड़ला हाऊसमें थीं और हमेशाकी तरह बापूकी सेवामें लीन थीं। ए० आई० सी० सी०से लौटनेके बाद प्रार्थना करके क़रीब १२ बजे हम लोग सोये।

सुबह चार बजेकी प्रार्थनाके समय महादेवभाईने बापूजीसे कहा, कि रात एक बजेतक टेलीफोन आते रहे कि बापूजीको पकड़ने आ रहे हैं, वग़ैरा। बापू कहने लगे: "मुझे कोई नहीं पकड़ेगा, सरकार इतनी मूर्ख नहीं कि मेरे-जैसे मित्रको पकड़े; और आजके मेरे भाषणके बाद तो पकड़ ही कैसे सकती है?"

बापूजीका यह आत्मविश्वास बापूके दलके सभी लोगों पर असर डाल रहा था। बाने मुझसे कहा: "तू क्यों इस तरह भाग-दौड़ मचाकर आई? बापूके सेवाग्राम लौटने तक तेरा काम भी हो जाता। तभी आना था न?" लेकिन यह आत्मविश्वास झूठा साबित हुआ। नौ अगस्तको सुबह ५॥ बजे महादेवभाई दौड़ते हुए आये और बोले: "बापू! पकड़ने आये हैं।" बापूजी झट तैयार हुए। पुलिस अफ़सरने तैयारीके लिए आध घंटा दिया था। सबने मिलकर प्रार्थना की: "हरिने भजतां हजी कोईनी लाज जती नथी जाणी रे।" ६ बजे बापू, महादेवभाई और मीराबहनको ले कर पुलिस चली गई। बा और भाई भी चाहते, तो साथ जा सकते थे; मगर बापूजीने समझाया: "तू न रह सके, तो भले चल; लेकिन मैं चाहता तो यह हूँ कि तू मेरे साथ आनेके बदले मेरा काम कर।" बाके लिए इतना काफ़ी था। उन्होंने बिना दलील किये बापूका काम

करनेका निश्चय कर लिया। बापू शामको शिवाजीपार्ककी आम सभामें भाषण करनेवाले थे। बाने ऐलान किया कि उस सभामें वे भाषण देंगी।

बापूजीके जानेके बाद शहरमें एक बिजली-सी दौड़ गई। कार्य-कर्त्ताओंके झुण्ड-के-झुण्ड बिड़ला हाऊस आने लगे। बाका दरबार दिनभर भरा रहा। वे थककर चूर हो गई थीं। बापूकी गिरफ़्तारीके लिए वे बिलकुल तैयार न थीं। उसका उन्हें बहुत सदमा पहुँचा था। फिर भी वे बड़ी हिम्मतके साथ तन-मनकी थकानकी परवाह किये बिना बैठी रहीं।

ख़बर मिली कि बहुत करके बाको सभामें जाते हुए रास्तेमें ही पकड़ लिया जायगा। अगर बा पकड़ ली जायँ, तो उनकी इस कमज़ोर हालतमें उनके साथ मेरा जाना ज़रूरी माना गया। सो मैंने अपना और बाका सामान बाँधा। इसके बाद बाने मुझसे बहनों और भाइयोंके नाम एक-एक सँदेशा लिखवाया। बस, वाणीका एक प्रवाह-सा चल निकला। बाके हृदयसे जो उद्गार उमड़ रहे थे, वे उन्होंने लिखवा डाले। सँदेशे लिखवाते समय उन्हें न तो किसी किस्मका विचार करना पड़ा, और न कोई मेहनत पड़ी। बहनों के लिए बाने नीचे लिखे मतलबका सँदेशा लिखवाया था :

"महात्माजी तो आपसे बहुत-कुछ कह गये हैं। कल उन्होंने ढाई घंटे तक ए० आई० सी० सी० की बैठकमें अपने दिलकी बातें कही हैं। उससे ज़्यादा और क्या कहा जाय? अब तो उनकी सूचनाओंपर अमल ही करना है। बहनोंके लिए अपना तेज दिखानेका अवसर आया है। सब क़ौमोंकी बहनें मिलकर इस लड़ाईको सफल बनावें। सत्य और अहिंसाका मार्ग न छोड़ें!"

गिरफ़्तारी

पौने पाँच बजे मैं और बा सभाके लिए रवाना हुईं। पुलिस अफ़सर दरवाज़े पर ही खड़ा था। हाथ जोड़कर बोला: "माताजी, आपकी उम्र घरमें बैठकर आराम करनेकी है। आप सभामें न जायँ!" लेकिन बा क्यों मानने लगीं? इसपर उसने हम दोनों को गिरफ़्तार कर लिया; क्योंकि मुझे बाके साथ रखनेके लिए पुलिससे यह कह दिया गया था कि बाके बाद मैं सभामें भाषण करनेवाली हूँ। पुलिसको यह भी

पता चल गया था, कि हमारे बाद भाई सभामें भाषण करेंगे, इसलिए उनको भी हमारे साथ ही गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारीके समय बापू कह गये थे कि आज़ादीका हर सिपाही 'करेंगे या मरेंगे' का बिल्ला अपने कपड़ोंपर सी ले। कनुने काग़ज़के एक टुकड़ेपर यह मंत्र लिखकर दिया। जब बाको देने लगे, तो उन्होंने लेनेसे इनकार किया। बोलीं : "मुझे इसकी क्या ज़रूरत है?" यह मंत्र तो उनके मनमें भरा ही था। बाहर लिखनेसे क्या फ़ायदा?

ऑर्थररोड जेल

मोटर हम तीनोंको लेकर चली। बाके चेहरे पर खेद था। उनकी आँखोंमें आँसू थे। मैंने पूछा : "बा, आप घबरा क्यों गईं?" वे कुछ बोली नहीं। उनका शरीर गरम था। मैंने आश्वासन देनेकी कोशिश की। इस पर बा कहने लगीं : "इस बार ये ज़िन्दा नहीं निकलने देंगे। बहन, यह सरकार तो पापी है।"

मैंने कहा : "हाँ बा, पापी तो है ही। इसलिए इसका पाप ही इसे खा जायगा और बापू फ़तह पाकर बाहर निकलेंगे।"

मोटर ऑर्थररोड जेलके सामने जा कर खड़ी हो गई। कुछ लोग रास्ते पर आ-जा रहे थे। वे बग़ैर कोई ध्यान दिये आगे बढ़ गये। मुझे आश्चर्य हुआ। क्या ये लोग बाको नहीं पहचानते? क्या ये नहीं जानते, कि आज क्या हो रहा है?

फाटक खुला। हमें ऑफिसमें ले गये। थोड़ी देरमें स्त्री-विभागकी मैट्रन बाको और मुझे स्त्री-विभागमें ले गई। अन्दर जाकर मैंने बाका और अपना बिस्तर खोला। लकड़ीके दो पटे आ गये थे। उन पर बिस्तर बिछाये। उस समय बाको ९९.६ बुखार था। उन्हें कुछ खाना नहीं था। वे खूब थकी हुई थीं, सो लेट गईं और लेटते ही सो गईं। मुझे भी तीन दिनसे पूरी नींद नहीं मिली थी।

ऑर्थररोड जेलमें

ता० १०-८-'४२

रातके क़रीब दो बजे कुछ आवाज़ सुनकर मैं उठ बैठी। देखा, तो बा पायख़ानेसे आ रही थीं। उन्हें रातमें पतले दस्त होने लगे थे,

और वे कई बार पायखाने जा चुकी थीं। मैंने उठकर मदद की। उन्हें बिस्तरमें सुलाया। दूसरे दिन जब डॉक्टर आये, मैंने बीमारीकी बिना पर बाके लिए खास ख़ुराक माँगी। वह कहने लगे: "खरीद सकती हैं।" मैंने कहा: "तो आप हमारे मित्रोंको फोन कर दीजिये, ताकि वे रुपये भेज सकें। हमारे पास खरीदनेके लिए पैसा नहीं है।" मगर जेलर वग़ैराने कहा: "फोन नहीं हो सकता, क्योंकि सरकारका हुक्म है, कि बाहरकी दुनियाके साथ आप लोगोंका कोई संपर्क नहीं रहना चाहिये।" यह एक अजीब हालत थी। मैंने डॉक्टरसे कहा: "तो आप या तो अस्पतालसे बाके लिए सब कुछ भेजिये या अपनी जेबसे। कभी मौक़ा मिलने पर मैं आपको पैसे लौटा दूँगी।" बहुत कहा-सुनी करने पर शामको दो सेब आये। लेकिन साथमें उनका रस निकालनेका कोई साधन नहीं था। इधर बाको दिनभर दस्त आते रहे। मुझे चिन्ता होने लगी, कि अब क्या होगा। दवाके लिए कहा, मगर दवाका प्रबन्ध करनेके लिए भी कोई नहीं आया।

बाका चेहरा मुरझाया हुआ था। मैंने दो-चार बार इधर-उधरकी बातें करनेकी कोशिश की, मगर कुछ चला नहीं। बाको आज भी थोड़ा बुखार था। दस्तोंके कारण कमज़ोरी बढ़ रही थी। जिस कमरेमें हमें रखा गया था, उसकी हवा इतनी खराब थी कि बैठते ही सिरमें दर्द होने लगता था। मैट्रनने हमसे कहा कि हम उसके कमरेमें जाकर बैठें। मैंने बाके लिए गादी बिछाई। बा वहाँ कुछ देर तक लेटीं। मगर फिर जल्दी ही उनको पाखाने जाना पड़ा। बार-बार वहाँसे आना-जाना बाकी शक्तिके बाहर था। इसीलिए हम वापस अपने कमरेमें आगईं। बाने आग्रह करके मुझे बाहर भेजा। लेकिन मैं थोड़ी देर बाद ही भीतर चली आई। उसी समय एक और बहन हमारे कमरेमें लाई गईं। वह तीन-चार छोटे-छोटे बच्चे छोड़ कर आई थीं। बाने बहुत प्रेमसे उनका सब हाल पूछा। उनका दुःख और चिन्ता देख कर बा अपना दुःख भूल गईं। आखिर वे हिन्दुस्तानकी माँ जो थीं! जब सारा हिन्दुस्तान दुःखी हो रहा था, ऐसे समय एक-एक व्यक्तिके दुःखका क्या खयाल करना था? लेकिन बाके मन पर व्यक्तिगत दुःख और चिन्ताका बोझ नहीं था।

उन्हें तो एक दूसरी ही चिन्ता सता रही थी। क्या बापूजी हिन्दुस्तानका दुःख दूर करनेमें सफल हो सकेंगे? मैंने समझानेकी कोशिश की: "बा, आप क्यों चिन्ता करती हैं? आखिर बापूने तो भगवान्का आश्रय लिया है न? और, जो कुछ किया है, शुभ हेतुसे ही किया है। उन्हें सफलता देनेवाला भगवान् है।" बा चुप हो गईं, मगर उनकी आँखोंमें और चेहरेके भावमें वेदना भरी थी।

कल रात हमारे सो जानेके बाद हमें बाहरसे बन्द कर दिया गया था। इसलिए आज शामको ही हम तीनोंने बाहर बरामदेमें अपने बिस्तर लगा लिये। मैट्रन जेलरके पास गई। जेलरने उसे हमारे साथ छेड़-छाड़ करनेसे मना किया। बाहर सोनेका एक कारण तो यह था कि कमरेकी हवा बन्द थी। हवाई हमलेसे बचनेके लिये सब खिड़कियोंका तीन चौथाई भाग ईंटोंसे चुन दिया गया था। इस कारण अन्दर हवा आ नहीं सकती थी। पाखानेकी नाली टूटी लगती थी, और उससे ख़ूब ही बदबू आती थी। तिस पर कमरेकी फ़र्शमें बहुत नमी थी। बरामदोंमें भी ऊँची-ऊँची दीवारें चुनवाई गई थीं। मगर वहाँ कमरेसे ज्यादा हवा आती थी।

बा थकी थीं। इसलिए तुरन्त ही सो गईं। हम दोनों भी अपने-अपने बिस्तरों पर लेटी हुई बाके उठनेकी राह देख रही थीं। वे उठें, तो प्रार्थना करें। नौ बजे मैट्रन आई। कहने लगी: "ग्यारह बजे तुम दोनोंको (बाको और मुझे) यहाँसे ले जायँगे।" मैंने उठकर सामान बाँधा। दस बजे बाको जगाया। उन्हें दूसरी बहनके बिस्तर पर बैठाकर उनका बिस्तर बाँधा। फिर बैठकर प्रार्थना शुरू की। राम-धुन चल रही थी, कि इतनेमें जेलर वग़ैरा आ गये। आज सुबहके अनुभवकी यह बात सुनकर, कि मेरे पास बाके लिए फल वग़ैरा मँगानेको पैसे नहीं थे, नई बहनने मुझे अपना बटुआ दे दिया। उनके पास भी ज्यादा पैसे नहीं थे। शायद सब मिला कर क़रीब बीस रुपये रहे होंगे। मैंने पाँच रुपयेका नोट उनसे ले लिया। वह अपने लिए रंगीन साड़ी लाना भूल गई थीं। सो मैंने उनको अपनी एक रंगीन साड़ी दे दी। मनमें खयाल यह भी रहा कि कौन जाने, कहीं मैं जेलमें मर जाऊँ, तो मेरे सिर किसीका क़र्ज़ तो न रहेगा?

सुपरिन्टेंडेण्टके ऑफिसमें पहुँचने पर बाने उनसे पूछा : "कहाँ ले जायेंगे ? यरवड़ा या बापूजीके पास ?" मेट्रनसे भी पूछा था, मगर उसने जवाब नहीं दिया था। अबकी जवाब मिला : "बापूजीके पास।" इस उत्तरसे हमारा मन काफ़ी हल्का हो गया। स्टेशन ले जाकर हमें एक वेटिंग रूममें बैठाया गया। दरवाज़ा आधा खुला था और हमारे साथका पुलिस अफ़सर दरवाज़ेके सामने आरामकुर्सी लगाकर यों बैठा था, मानो उसे हमारे भाग जानेका डर हो! मुझे नींद आ रही थी। मगर बा भलीभाँति जाग रही थीं। स्टेशन पर हमेशाकी तरह लोगोंका आना-जाना, भीड़-भड़क्का और शोर-गुल जारी था। बा ध्यानपूर्वक सब कुछ देख रही थीं। एकाएक वे बोल उठीं : "सुशीला! देख, यह दुनिया तो ऐसे चल रही है, जैसे कुछ हुआ ही न हो! बापूजीको स्वराज्य कैसे मिलेगा ?" उनकी वाणीमें इतनी करुणा भरी थी कि सुनकर मेरी आँखें डबडबा आईं। मैंने कहा : "बा, ईश्वर बापूजीकी मदद पर है न? सब ठीक ही होगा।"

पुलिस अफ़सर आया। गाड़ीका समय हो चुका था। हमें पहले दर्जेके एक छोटे डब्बेमें चढ़ाया गया, और गाड़ी पूनाकी तरफ़ रवाना हुई।

आगाखान महलमें प्रवेश

ता० ११-८-'४२

सुबह क़रीब सात बजे गाड़ी एक छोटेसे स्टेशन पर खड़ी हुई। बादमें पता चला कि वह चिंचवड़ स्टेशन था। एक पुलिस अफ़सर हमें लिवानेके लिये आया हुआ था। लेकिन बा उस वक़्त पायखानेमें थीं। सारी रात उन्हें दस्त आते रहे थे। वे बिलकुल कमज़ोर हो गई थीं। गाड़ी कोई पाँच मिनट रोकनी पड़ी। बा निकलीं। स्टेशन पर उनके लिए कुरसी तैयार रखी गई थी, मगर उन्होंने कुरसी पर बैठनेसे इनकार किया। बाका स्वभाव ही था, कि जबतक शरीर चल सके, उसे चलाना; दूसरों पर उसका बोझ न डालना। वे चलकर बाहर आईं। एक मिनट भी नहीं चलना पड़ा। मोटर तैयार थी। हम दोनों उसमें बैठीं। क़रीब आध घंटेमें मोटर आगाखान महलके फाटक पर पहुँची। पहरेदारोंने एक बड़ा फाटक खोला। कुछ दूर जाने पर तारका एक दरवाज़ा खुला।

मोटर 'पोर्च'में जाकर खड़ी हो गई। बा मेरा सहारा लेकर धीमे-धीमे सीढ़ियाँ चढ़ीं। बरामदेमें कुछ क़ैदी झाड़ू लगा रहे थे। हमने उनसे पूछा: "बापूजीका कमरा कौनसा है?" किसीने जवाब दिया: "अखीरका" बा मेरे सहारे धीमे-धीमे चलकर बापूजीके कमरेमें पहुँचीं। बापू एक ऊँची गद्दी पर बैठे थे। हाथमें कुछ काग़ज़ थे। पेन्सिल हाथमें लेकर वे ध्यानपूर्वक कोई लेख सुधार रहे थे। महादेवभाई पास खड़े उनके कंधेके पीछेसे उन काग़ज़ोंको देख रहे थे। कुछ चर्चा चल रही थी। जब हम उनके काफ़ी नज़दीक पहुँच गईं, तो महादेवभाईने हमें देखा। बहुत .खुश हुए। मगर बापूकी त्योरियाँ चढ़ने लगीं। उन्हें लगा, "कहीं बा दुर्बलताके कारण, मेरा वियोग असह्य लगनेकी वजहसे तो यहाँ मेरे पीछे-पीछे नहीं चली आई? वह अपना कर्त्तव्य तो नहीं न भूल गई!" बापूजीने तनिक तीखे स्वरमें पूछा: "तूने यहाँ आनेकी इच्छा प्रकट की थी या उन लोगोंने तुझे पकड़ा?" बा एक पलको चुप रहीं। वे कुछ समझ ही न पाईं कि बापू क्या पूछ रहे थे। मैंने जवाब दिया: "नहीं बापूजी, गिरफ़्तार हो कर आई हैं। इस पर बा समझीं कि बापू क्या कह रहे थे। बोलीं: "नहीं, नहीं, मैंने कोई माँग नहीं की थी। उन्होंने हमें पकड़ा।" इतनेमें हमारे साथका पुलिस अफ़सर आ पहुँचा। बोला: "ज़रा बाहर चल कर अपना सामान देख लीजिये"। मैंने बासे बैठनेको कहा, मगर वे तो सामान देखनेके लिए उस लम्बे बरामदेको पारकर वापस 'पोर्च' तक आईं। उनके स्वभावमें फुर्ती और सुघड़ता कूट-कूट कर भरी थी। आराम लेना वह जानती ही न थीं, और बापूजीसे मिलकर तो उनके शरीरमें मानो नया जीवन ही आ गया था। बहुत रोकने पर भी वे सामान देखनेके लिए आनेसे रुकी नहीं।

मैंने कहा था कि बा बीमार हैं, सो महादेवभाई उनके लिए खाट वग़ैराका प्रबन्ध करने लगे। हम लोग सामान देखकर लौट रही थीं कि रास्तेमें उस जेलके सुपरिण्टेण्डेट मि० कटेली हमें मिले। वे बहुत आदरके साथ बाको भीतर लिवा गये। उन्हें पता भी नहीं था कि हम एक बार अन्दर हो आई थीं। बाको खाटमें सुलाकर मैंने उनके लिए दवाका नुस्खा लिखा, मगर बाके दस्त तो बापूजीके दर्शनसे और उनके अपने

मनके बोझके हल्के हो जानेसे यों ही बन्द हो गये थे। दवाकी सिर्फ़ एक ही .खूराक़ उन्हें दी गई। दूसरी देनेकी ज़रूरत ही नहीं पड़ी। शायद एक भी न देते तो भी काम चल जाता।

दूसरे रोज़से ही बा खटिया छोड़कर थोड़ा-थोड़ा घूमने-फिरने लगीं। बापूजीके खानेके समय वे उठकर उनके पास जा बैठतीं और उनका खाना परोस देतीं। बाका खाना भी मैं वहीं ले आती थी। हमेशाकी तरह खाते समय भी बा एक हाथमें पंखा लेकर मच्छरों और मक्खियोंसे बापूजीकी रक्षा किया करती थीं। उन दिनों आगाखान महलमें मक्खियों और छोटे-छोटे जन्तुओंकी भरमार थी; मालिशके समय भी मच्छर वग़ैरा उड़ानेकी ज़रूरत रहती थी। नहीं तो मालिशके वक़्त बापूजी सो नहीं पाते थे। शुरूमें एक-दो दिन महादेवभाई मच्छर वग़ैरा उड़ाते रहे। फिर बाने यह काम भी अपने हाथमें ले लिया। क़रीब डेढ़ घंटा कुरसीपर बैठे-बैठे वे यह काम करती थीं। हम लोग तो किसी मच्छर या मक्खीके दीखने पर ही पंखा हिलाते थे, मगर बाका पंखा सारे समय बराबर चलता ही रहता था, ताकि कोई जीव-जन्तु आने ही न पाये।

गवर्नर और वाइसरायको पत्र

बा और मैं मंगलवार ता० ११ अगस्तको सुबह आगाखान महलमें पहुँची थी। बापूजीने उसी रोज़ बम्बईके गवर्नर लॉर्ड लुम्लीको लिखे अपने पत्रका मसविदा पूरा किया था। महादेवभाईके हाथों उसकी साफ़ नक़ल हुई। पत्र सुपरिण्टेण्डेटको डाकमें डालनेके लिए दिया गया। इस पत्रमें बापूजीने चिंचवड स्टेशनवाली उस घटनाका ज़िक्र किया था, जिसमें पुलिसने एक सत्याग्रही युवकके साथ बुरा सलूक किया था। साथ ही, अख़बार माँगे थे और सरदार और मणिबहनको आगाखान महलमें रखनेकी दरख़ास्त की थी। पत्रके चले जानेपर हमलोग बैठकर सोचने लगे कि सरदार आवेंगे, तो उन्हें कौनसा कमरा देंगे। महादेवभाई यह सोचकर बहुत .खुश थे कि सरदार आ जायँगे तो अपने हँसी-मज़ाकसे वे बापूको .खुश रखेंगे। बा भी उनके आनेके विचारसे .खुश थीं।

बापूजी वाइसरायके नाम पत्र लिखनेमें लगे थे। उसमें हम सबकी मददकी ज़रूरत पड़ती थी। पत्रकी दो तीन कच्ची नक़लें तैयार हुईं।

बापूजीने हमसे कहा कि हम सब पत्रको ध्यान-पूर्वक पढ़ जायँ और अपनी सूचनायें दें। महादेवभाई पर सबसे ज्यादा बोझ था। आखिर शुक्रवारको पत्र तैयार हुआ। आखिरी नक़ल फिर महादेवभाईने ही की। जब वे बापूजीके पास उसे हस्ताक्षरके लिए लाये, तो बोले: "नक़ल करनेमें मुझे पूरे दो घंटे लगे।" अक्षर मोतीके दानों-जैसे थे। बापूजी क्षणभर महादेवभाईके सुंदर अक्षरोंको देखते रहे। फिर दस्तखत करके पत्र सुपरिंटेंडेण्टके पास भेजा। पत्रके चले जानेपर सबको छुट्टी-सी महसूस होने लगी।

इन चार-पाँच दिनोंमें बाकी तबियत खासी सुधर गई थी। ताक़त भी काफ़ी आगई थी। घूमने-फिरने लगी थीं। रसोई-घरमें भी पहुँच जाती थीं। अपना पूजा-पाठ करतीं और .खुश रहती थीं।

शनिवार, १५ अगस्त '४२

हमेशाकी तरह बापू सुबह ७॥ बजे घूमने निकले। महादेवभाई भी उस दिन घूमने आये। आठ बजे सब लोग वापस आ गये। बापूजी मालिश वाले घरमें चले गये, और महादेवभाई अपने काममें लग गये। बा पंखा झलने नहीं आईं। उस दिन जेलोंके इन्स्पेक्टर जनरल कर्नल भण्डारी आनेवाले थे। क़ैदी लोग बरामदे वग़ैराकी सफ़ाई बड़ी फुर्तीसे कर रहे थे। बा श्रीमती नायडूके कमरेमें थीं।

थोड़ी देरमें कर्नल भण्डारीकी मोटर आई। बापूको और मुझे छोड़कर बाक़ी सब लोग श्रीमती नायडूके कमरेमें उनसे बातें करने लगे। मैं बापूजीकी मालिश कर रही थी। महादेवभाई वग़ैराके हँसनेकी आवाज़ आ रही थी। एकाएक आवाज़ बंद हो गई। किसीने मुझे पुकारा। मैं समझी, कर्नल भण्डारीसे मिलनेके लिये बुलाते होंगे। इतनेमें बा .खुद दौड़ी-दौड़ी आईं और बोलीं: "सुशीला, जल्दी चलो। महादेवको फ़िट् आई है।" मैं दौड़ी गई। महादेवभाई महाप्रयाणकी तैयारीमें थे। नाड़ी बन्द थी। हृदयकी गति बन्द थी। साँस चल रही थी। बदन ऐंठा जा रहा था।

मैंने बापूजीको बुलवाया। बापू भी समझे कि कर्नल भण्डारीसे मिलनेके लिए ही उन्हें बुलाया जा रहा है। किसीने उनसे कहा:

"महादेवभाईकी तबियत ठीक नहीं है।" लेकिन बापूको यह कल्पना कैसे हो, कि महादेवभाई हमेशाकी छुट्टी पर जानेको तैयार हैं? बापू महादेवभाईकी खटियाके पास आकर खड़े हुए: "महादेव! महादेव!!" पुकारने लगे। मगर जवाब कौन दे? बाने पुकारा: "महादेव, ओ महादेव! बापूजी आये हैं। महादेव, बापूजी बुलाते हैं।" लेकिन महादेवभाई तो उस दिन किसीको भी जवाब देनेवाले नहीं थे। धीरे-धीरे साँस भी बन्द हो गई। पहला बलिदान पूरा हुआ!

बाके लिये इस वज्रपातको सहना सबसे अधिक कठिन था। वे बड़ी हिम्मतके साथ प्रार्थना वग़ैरामें शामिल हुईं; मगर आँसुओंकी धारा तो अखण्ड बहती ही रही। उनकी आँखोंके सामने सारी दुनिया घूम-सी रही थी।

आखिर जब शवको जलानेके लिये नीचे ले गये, तो बा भी आग्रह-पूर्वक नीचे आईं। अभी उनमें सीढ़ियाँ चढ़ने-उतरनेकी ताक़त नहीं थी। मगर वे अपने महादेवको पहुँचाने भी न जायँ, यह कैसे हो सकता था? बाकी कमज़ोर हालतको देखते हम यह चाहते थे कि वे दाहक्रिया न देखें, तो अच्छा हो; लेकिन बा रुकनेवाली न थीं। चितासे थोड़ी दूर पर उनकी कुरसी रखी गई। वहाँ तक आते हुए रास्तेमें भी और वहाँ बैठे-बैठे भी बा सारा समय हाथ जोड़कर यही पुकारती रहीं, कि "महादेव, तू जहाँ जाय, वहाँ सुखी रहना। हे भाई, तू सदा सुखी रहना। तूने बापूजीकी बहुत सेवा की है। तू सदा सुखसे रहना!" इसके साथ ही वे बार-बार यह पूछती थीं: "महादेव क्यों गया, और मैं क्यों नहीं? ईश्वरका यह कैसा न्याय है?" शवको जला कर हम लोग घर लौटे। शामके पाँच बज चुके थे। घरमें सन्नाटा था। कौन किसे सान्त्वना देता?

ब्राह्मणकी मृत्यु

बा कहती थीं: "ब्राह्मणकी मृत्यु तो भारी अपशकुन है।" बापू कहते: "हाँ, सरकारके लिए।" लेकिन बाके मनसे यह शंका मिटी नहीं। कुछ दिनों बाद वे फिर मुझसे कहने लगीं: "सुशीला, ब्राह्मणकी यह मौत तो हमारे ही सिर रही न? बापूजीने लड़ाई छेड़ी,

महादेव जेलमें आया और यहाँ उसकी मृत्यु हुई। यह पाप तो अपने ही मत्थे चढ़ा न?" मैंने समझाया: "नहीं बा, आप ऐसा क्यों सोचती हैं? महादेवभाई तो देशकी सेवामें बलि चढ़े हैं। उनकी मृत्युका पाप कैसा? और अगर हो भी, तो वह सरकारके सिर हो सकता है। सरकारने नाहक़ उन्हें पकड़ा। बापूजीने लड़ाई शुरू ही कब की थी?" इस पर बा बोलीं: "हाँ, बात तो सच है। बापूजीने लड़ाई शुरू नहीं की थी। वे तो अभी सरकारके साथ समझौतेकी चर्चा करने जा रहे थे। लेकिन यह सरकार बड़ी पापी है। इसने कुछ करने ही नहीं दिया।"

शंकरका मंदिर

बामें गहरी धर्म-भावना थी। दुनियाकी कोई भी ताक़त उनकी धार्मिक भावनाको डिगा नहीं सकती थी। बा हमेशा तुलसीमाताकी पूजा करती थीं। मीराबहनने अपने कमरेमें बालकृष्णकी एक मूर्ति रक्खी थी। बा उसे फूल चढ़ाती थीं। वह बाका दूसरा मन्दिर था। और महादेवभाईका चितास्थान बाके लिये तीसरा मन्दिर — शंकर महादेवका मन्दिर — बन गया था। जब तक बामें ताक़त रही, वे बापूजीके साथ चिता-स्थान पर जाती रहीं और समाधिकी प्रदक्षिणा करके उसे नमस्कार करती रहीं। दूसरी अक्तूबरको बापूजीका जन्मदिन आया। उस दिन श्रीमती नायडूने छोटी-सी दीपमालिकाका प्रबन्ध किया था। बाने मुझे पुकारा और कहा: "सुशीला, शंकरके वहाँ दीया ज़रूर रख आना।" पहले तो मैं कुछ समझी ही नहीं, कि बा क्या करना चाहती थीं। हमारे एक सिपाहीका नाम शंकर था। मगर बा उसके वहाँ दीया क्यों भेजवाने लगीं? एकाएक मुझे ध्यान आया। मैंने पूछा: "बा आप महादेवभाईकी समाधि पर दीपक रखनेको कह रही हैं न?"

"हाँ, हाँ, वही तो महादेवका — शंकरका — मंदिर है न?" बाने जवाब दिया।

बा विद्यार्थीके रूपमें

महादेवभाईकी मृत्युसे वातावरण बहुत ग़मगीन हो गया था। इस तरहकी मौत कहीं भी हिलानेवाली होती। मगर जेलमें तो इसका असर बहुत

लम्बे अरसे तक बना रहता है। आखिर बापूजीने उपाय सोचा: "हम सब अपने एक-एक मिनटका हिसाब रखें, सारा समय काममें ही लगे रहें, ताकि इधर-उधरके विचार मनमें आ ही न सकें। हिंसासे भरी इस दुनियामें अहिंसाको अपना स्थान ढूँढ़ना है, तो उसका भी यही रास्ता है।" बापूजी ख़ुद तो सारा समय काममें लगे ही रहते थे। अब उन्होंने दूसरोंका भी कार्यक्रम तय कर दिया। मेरा समय तो पहलेहीसे भरा हुआ था। बापूजीने मुझे आग्रहभरी सलाह दी कि मैं अपने कार्यक्रमको ध्यान-पूर्वक पूरा करूँ। उन्होंने मेरे साथ थोड़ा समय बाइबल और गीताजी पढ़ना शुरू किया। बाको वे गुजराती सिखाने लगे। गीताजी भी सिखाते थे। गुजराती किताबमें कोई भजन आ जाता, तो बापू उसे बाको सस्वर गाना सिखाने बैठ जाते। भूगोल शुरू किया। कभी-कभी इतिहास भी पढ़ा दिया करते। दुपहरको खाना खाकर लेटने पर सोनेसे पहले बापू बाको कुछ-न-कुछ पढ़ कर सुनाते और उस पर आलोचना करते। बा बहुत ख़ुश होतीं। वे बड़ी दिलचस्पीके साथ सब कुछ सीखनेकी कोशिश करतीं। कभी-कभी उन्हें अफ़सोस भी होता, कि उन्होंने यह सब बहुत देरमें सीखना शुरू किया। वे कहतीं: "मैंने पहले ही से सीखनेकी कोशिश की होती, तो कितना अच्छा होता।"

बा सीखतीं तो बहुत दिलचस्पीके साथ थीं, लेकिन उनका मन और मस्तिष्क बापूजीकी तरह जवान नहीं था: उनके लिए अब नई चीज़ सीखना कठिन था। शुरू-शुरूमें बापूजी उनसे प्रश्न पूछते; यह जाननेकी कोशिश करते, कि उन्हें पहले दिनका पाठ याद है या नहीं। अक्सर बाको वह याद नहीं रहता था। बापू बा पर नाराज़ तो नहीं होते थे, फिर भी प्रश्नका उत्तर न दे सकनेके कारण बाको बुरा लगता था। वे पाठ याद करनेके लिए मेहनत भी ख़ूब करती थीं। एक दिन बापूजीने उन्हें पंजाबकी नदियोंके नाम सिखाये। बापूके सो जाने पर बा मेरे पास आईं और बोलीं: "सुशीला, वे नाम तू मुझे एक काग़ज़ पर लिख दे।" मैंने लिख दिये। बा उस काग़ज़को सामने रख कर सारा दिन चलते-फिरते नदियोंके नाम रटती रहीं। मगर ७४ सालकी उम्रमें नई चीज़ें सीखनेकी शक्ति किसी बिरलेमें ही पाई जाती है। दूसरे दिन वे फिर

इन नदियोंके नाम बापूजीको नहीं बता पाईं। बापूजीने बाको प्राकृतिक भूगोल सिखाना शुरू किया। रेखांश और अक्षांश, भूमध्य रेखा या विषुवृत क्या हैं, सो सब समझाया। लेकिन याद रखना कठिन था। हर रोज़ दुपहरको खानेके बाद बापू एक नारंगी मँगवाते और उससे बाको विषुवृत वगैरा समझाते। आखिर बाको वे याद हो गये। इसके कई दिन बाद एक रोज़ भाई मनुको भूगोल पढ़ा रहे थे। बा खड़ी हो कर सुनने लगीं। भाईको अंग्रेज़ी नाम आते थे, उर्दू नाम आते थे, मगर हिन्दी नाम याद करनेमें कुछ गोलमाल हो गया था। बा मुझसे आकर कहने लगीं: "सुशीला, प्यारेलाल जिसे रेखांश बता रहा है, बापूजीने उसे अक्षांश बताया था।" और, उनकी बात सच थी। भाईने अपनी भूल सुधारी।

बापूजीने बाके साथ गुजरातीकी पाँचवीं किताब पढ़नी शुरू की। उसमें कवितायें आईं। उनके शुरूमें रागका नाम लिखा रहता। बापूजी बाको उनका राग सिखाने लगे। आठ दस दिनतक शामकी प्रार्थनाके बाद बापूजी और बा उन कविताओंको गाया करते। हमारी अम्माजान (श्रीमती नायडू) अक्सर मज़ाक करतीं। बापू हँस देते और फिर बाके साथ गाने लगते।

बापूजीने बाको हिन्दुस्तानके प्रांतोंके नाम सिखाये। फिर हरएक प्रांतकी राजधानीका नाम सिखाया। बाने उन्हें सीखनेकी मेहनत तो बहुत की, मगर फिर भी जब बापू पूछते, तो बाके मुँहसे "कलकत्तेकी राजधानी लाहौर है," या ऐसा ही कोई दूसरा जवाब निकल जाता।

धीरे-धीरे बाका उत्साह मन्द पड़ने लगा। वे अक्सर कहतीं: "मैं बीमार रहती हूँ। इसलिए मेरा दिमाग़ कमज़ोर पड़ गया है। मैं कुछ याद नहीं रख सकती।" फिर भी बाने अभ्यास नहीं छोड़ा। वे गीताजीके अभ्यासमें अधिक समय देने लगीं। बापूजीके साथ गीता पढ़तीं। फिर शामकी प्रार्थना के बाद मेरे साथ पढ़तीं। कहा जा सकता है, कि गीताजीका उनका अभ्यास तो लगभग मृत्युके समय तक चलता रहा।

महादेवभाईकी मृत्युके बाद बा सुबह-शाम नियमसे बापूजीके साथ घूमने निकलने लगीं। बापू कई बार उन्हें काफ़ी तेज़ चला ले जाते, लेकिन यह सिलसिला एक महीनेसे ज्यादा नहीं चल सका। एक दिन

वे बापूजीके साथ ५५ मिनट तेज़ीसे घूमीं। उसी रोज़से उनकी छातीमें दर्द शुरू हो गया। बस, उसके बाद बा बापूजीके साथ अच्छी तरह घूम ही नहीं सकीं। सुबह जब बापूजी नीचे बग़ीचेमें घूमने जाते, तो बा ऊपर बरामदेमें थोड़े चक्कर लगाकर कुर्सीपर बैठ जातीं। हम घूम-कर लौटते, तो बाको हाथमें 'आश्रम-भजनावलि' और 'अनासक्तियोग' लिए बरामदेमें कुर्सी पर बैठी पाते। वे रोज़ क़रीब एक घंटा इन दोनों पुस्तकोंके साथ बिताती थीं। भजन गातीं, अनासक्तियोग पढ़तीं और फिर मालिश वग़ैरा करवानेके लिए उठतीं।

बाके पढ़नेका ढंग बच्चोंका-सा था। बापूजीने उन्हें समझाया कि उनको अपने पढ़नेका ढंग सुधारना चाहिये। अक्सर बा सुबह 'अना-सक्तियोग' और दोपहरमें अख़बार ऊँचे स्वरसे पढ़ा करती थीं। बापूजीने उनके पढ़नेके ढंगकी टीका की, तो उन्होंने ज़ोरसे पढ़ना ही छोड़ दिया, और दोपहरको अख़बार लेकर भाईके या मेरे पास सुननेको आने लगीं। बादमें जब मनु आगई, तो वह सुनाने लगी। 'अनासक्ति-योग' भी बा अब मन ही मन पढ़ लिया करती थीं। इसी तरह बाके लिखनेका ढंग भी बच्चोंका-सा था। वे अक्षरोंको अलग-अलग करके लिखती थीं। बापूजीने उन्हें अच्छी तरह लिखना सिखानेकी कोशिश की। उन्हें लिखनेका अभ्यास करनेको कहा। बामें ७४ सालके अनुभव और बुद्धिमत्ताके साथ ही बालककी-सी सरलता थी। किसीको कोई नया काम करते देखतीं, तो उससे वह सीख लेनेकी उनकी इच्छा हो जाती। हाल ही अचानक बाकी १९३१-'३३की डायरियाँ मेरे हाथ पड़ गईं। उन्हें देखनेसे पता चला कि उन दिनों भी जेलमें बाकी अभ्यासवृत्ति आजके ही समान थी। वे मीराबहनसे हिन्दी सीखती थीं और दूसरी किसी बहनके साथ गुजराती पढ़ती-लिखती थीं। इसी तरह कुछ बहनोंको 'नैपकिन' बनाते देख कर उन्होंने जेलमें वह काम भी शुरू कर दिया था। सेवाग्राममें छोटे कनुको इतिहास-भूगोल सीखते देख कर बाने भी इतिहास-भूगोल सीखना शुरू किया था।

आग़ाख़ान महलमें हम सबको नोटबुक मंगाते देख कर उन्होंने एक दिन बापूजीसे अपने लिए भी नोटबुक मँगा देनेको कहा। बापूजीने

उनके हाथमें दो-चार काग़ज़ दे दिये और कहा: "इन पर लिखनेका अभ्यास कर; जब कुछ प्रगति कर लेगी, तो नोटबुक मँगा दूँगा।" बाको इससे बहुत आघात पहुँचा। बापूजीने भी अपनी भूल तो महसूस की, लेकिन अब क्या हो सकता था? श्रीमती गायडूने चुपचाप बाके लिए एक नोटबुक मँगवा ली। मैं उसे बाके पास ले गई। बाने उसे बापूजीकी किताबोंमें रख दिया। बहुत कहने पर भी उन्होंने उसका इस्तेमाल नहीं किया। बल्कि बापूजीके दिये काग़ज़ों पर ही लिखना पसन्द किया; बापूजीने भी समझाया, लेकिन बा तो स्वाभिमानिनी महिला थीं। उन्होंने शान्तिके साथ उत्तर दिया: "मुझे नोटबुककी आवश्यकता ही क्या है?" अन्त तक वह नोटबुक बापूकी किताबोंमें ही पड़ी रही।

रामायण और भागवतमें श्रद्धा

बाकी पुरानी डायरियोंसे पता चलता है कि सन् १९३१-'३३ में वे तीन बार जेल गईं और हर बार वे वहाँ नियमित रूपसे रामायण और भागवत सुनती रहीं। आग़ाखान महलमें शामकी प्रार्थना के साथ तुलसी-रामायणकी दो चौपाइयाँ हमेशा गाई जाती थीं। बा बड़ी दिलचस्पीके साथ दोपहरको रामायण उठा कर ले जातीं और शामको पढ़ी जानेवाली चौपाइयोंको पहलेसे पढ़ लेतीं और उनका हिन्दी अर्थ समझनेकी कोशिश करतीं। सेवाग्राममें भी उनका यही कार्यक्रम रहा करता। वहाँ वे किसी न किसीसे उनका अर्थ समझ लिया करती थीं। आग़ाखान महलमें प्रार्थनाके बाद बापूजीने बाको ख़ुद अर्थ समझाना शुरू किया। बाकी श्रद्धा अन्धश्रद्धा नहीं थी। जहाँ कहीं बहुत अतिशयोक्ति आती, बा कह उठतीं: "यह तो सब निरी गप मालूम होती है।" इसी तरह बालकाण्डमें दशरथ और जनकके वैभवके लम्बे-लम्बे वर्णन सुनकर और यह देखकर कि स्वयंवरके मण्डपकी रचनाका वर्णन करनेमें तुलसीदासजीने पन्नेके पन्ने भर दिये हैं, बा बोल उठतीं, "क्या तुलसीदासजीको और कोई काम ही न था, कि बैठे-बैठे ऐसे लम्बे वर्णन लिखते रहे?" बापूजीको ख़याल आया कि रामायणमेंसे इस तरहके वर्णन, उपाख्यान वग़ैरा निकाल कर एक संक्षिप्त तुलसी-रामायण

तैयार कर ली जाय, तो वह बाके बहुत काम आये। सो उन्होंने रामायणमें निशान लगाना शुरू किया। बाल-काण्डमें और अयोध्या-काण्डके कुछ हिस्सेमें निशान लगा भी लिए। प्रार्थनामें भी संक्षिप्त रामायण पढ़नेका सिलसिला शुरू किया। भाईसे उसका गुजराती अनुवाद करनेको कहा। बोले: "हररोज़ दो चौपाईका अनुवाद करके उसे सुन्दर अक्षरोंमें लिख लिया करो और बाको दे दिया करो। इससे बाको बहुत अच्छा लगेगा और मुझे भी बहुत संतोष होगा।" भाईने अनुवाद शुरू किया। बापू .खुद उस अनुवादको सुधारने लगे। लेकिन आगे चल कर बापूका उपवास आया और दूसरी भी कई बातें पैदा हुईं। नतीजा यह हुआ कि बापूजीका बाके लिए रामायणमें निशान लगाना और भाईका अनुवाद करना सब अधूरा रह गया।

बापूजीके उपवासके दिनोंमें शामकी प्रार्थनाके बाद बाको रामायणकी चौपाइयोंका अर्थ सुनाना मेरे ज़िम्मे आया और बादमें भी यह काम मुझ पर ही रहा। बा बहुत ध्यानके साथ अर्थ सुनती थीं और जहाँ कहीं गहरी धर्म भावनासे भरी चौपाइयाँ आ जातीं या बहुत करुण-रस आ जाता, वहाँ वे आलोचना भी किया करती थीं। यह सिलसिला लगभग बाकी मृत्युके समय तक ज़ारी रहा। मृत्युके दो एक रोज़ पहले बा बहुत थकी दीखती थीं। आँख बन्द करके पड़ी थीं। मैंने पूछा: "बा, रामायणका अर्थ सुनेंगी क्या?" बाने आँखें खोलीं: "पूछती क्यों है, कि सुनेंगी क्या? रामायण लाकर अर्थ करना शुरू क्यों नहीं कर देती?" बाने जरा चिढ़कर कहा। मैं बोली: "बा आप थकी-सी लगती थीं, इसलिए मैंने पूछ लिया।" बाने शान्तिके साथ उत्तर दिया: "लेकिन लेटे-लेटे रामायणका अर्थ सुननेमें मुझे कौन थकान लगनेवाली है? लाओ, सुनाओ अर्थ।"

तुलसी-रामायणके बाद बापूजीने दोपहरके समयमें बाको बाल-रामायण पढ़कर सुनाई। बादमें उन्होंने वाल्मीकि-रामायणका गुजराती अनुवाद पढ़ा। शुरूमें बा उसे भी बापूके पास बैठकर सुना करती थीं। लेकिन बापूजी उसे जल्दी पूरा करना चाहते थे, और बा सारा समय बैठकर सुन नहीं सकती थीं, इसलिए उसको भी बाने मुझसे सुनना शुरू

किया। बादमें जब मनु आ गई, तो यह काम उसने संभाल लिया। बाने मनुसे सारी वाल्मीकि-रामायण सुनी।

दोपहरमें भोजनके समय मैं बापूजीके पास संस्कृतमें वाल्मीकि-रामायण पढ़ा करती थी। बा उस समय भी बापूजीके पास आकर बैठ जातीं और बहुत रसके साथ सब सुनतीं। बाकी बीमारीके बढ़ने पर संस्कृत वाल्मीकि-रामायणका अभ्यास बन्द कर देना पड़ा, नहीं तो बापूजीका इरादा उसमेंसे भी एक संक्षिप्त रामायण तैयार करनेका था। बाल-काण्ड और अयोध्या-काण्डका कुछ हिस्सा तैयार हो भी चुका था।

गुजराती वाल्मीकि-रामायण पूरी होने पर मनुने बाको "बारडोली सत्याग्रहका इतिहास" पढ़कर सुनाना शुरू किया। लेकिन बाने उसे यह कह कर बन्द करवा दिया कि यह सब तो मैं जानती हूँ। उन्हें धार्मिक पुस्तकोंमें अधिक दिलचस्पी थी। इसलिए 'भागवत' मँगाई और समूची भागवत सुनी। इसके बाद भी खास-खास दिनोंमें (जैसे, एकादशी वग़ैरा) बा भागवत सुना करती थीं। अपने अंतिम दिनोंमें बाने फिर नियमित रूपसे भागवत सुनना शुरू किया था। उन दिनों वे शामको चारसे साढ़े चार तक भागवत सुना करती थीं। लेकिन कोई मिलनेवाले आ जाते, तो भागवत बन्द रहती थी। एक बार पाँच-छह रोज़ तक लगातार मुलाक़ाती आते रहे। आखिर जिस दिन कोई नहीं आया उस दिन भी मैं भागवत सुनाने नहीं पहुँची। सिलसिला टूट चुका था। और बाकी बीमारी बढ़ जानेके कारण मुझे रातमें भी काफ़ी काम रहता था। इसलिए उस दिन मैं दोपहरमें सो गई। भागवतके समय नींद तो खुल गई थी। मगर थकी थी, सो सुस्ती कर गई। मनको मना लिया कि आज बाको शायद ही भागवतकी याद आये। मगर बा यों भूलनेवाली नहीं थीं। उन्होंने मनुको बुलाकर उससे भागवत सुनी; इसके बाद जो कुछ दिन उन्होंने भागवत सुनी, सो मनुसे ही सुनी। मेरी फिर सुनाने जानेकी हिम्मत ही नहीं हुई। लेकिन मनमें तो आज भी इसका पछतावा बना हुआ है। मैं जानती थी, कि बाको मुझसे भागवत सुनना अच्छा लगता था, क्योंकि मैं उन्हें थोड़ा-बहुत अर्थ भी समझा सकती थी। मगर मैं एक दिनका आलस्य कर गई। दूसरे दिनसे जाने

लगी होती, तो शायद एकाध बार बा कोई तीखी बात कहतीं, लेकिन मनमें तो .खुश ही होतीं। मगर मुझसे यह न हो सका। कुछ देरके लिए मैं यह भूल ही गई, कि जीवन क्षण-भंगुर है, इसका कोई भरोसा नहीं। इसलिए सेवाका मौक़ा मिलने पर, तो उसे किसी हालतमें भी खोना न चाहिये।

व्रत-उपवास वग़ैरामें श्रद्धा

आग़ाखान महलमें पहुँचनेके कुछ दिन बाद बाने बापूसे पूछा: "एकादशी कब है?" बापूजीने मि० केटलीसे एक पंचांग मँगवा देनेको कहा। लेकिन बाहरकी कोई भी चीज़ मँगवानेके लिए सरकारी इजाज़तकी ज़रूरत थी और उसके मिलनेमें देर लग सकती थी। इसलिए बापूजीने मुझे एक जंत्री (कैलेंडर) बनानेको कहा। उसका तरीक़ा भी बताया। जिस दिन बापू पकड़े गये थे, उस दिनकी तिथि, वार वग़ैरा हम जानते थे। उस परसे सारे सालका हिसाब लगाया। मेरा एक पूरा दिन इसमें खर्च हुआ। कैलेंडरमें बापूजीने पूनोंके दिन पर लाल पेंसिलका और अमावस पर नीलीका निशान लगवाया। उस परसे उन्होंने बाको तिथियाँ समझाईं और एकादशी किस दिन पड़ेगी, सो बताया। क़रीब एक महीने तक हमारे पास वही एक कैलेंडर था। बादमें पंचांग आ गया और कैलेंडर भी।

एकादशीके दिन बा हमेशा फलाहार किया करती थीं। मुझे याद नहीं पड़ता, कि कभी किसी एकादशीको वे उपवास करना भूली हों। इसी तरह हर सोमवारके दिन, सोमवती अमावसके दिन, और अक्सर पूनों, जन्माष्टमी, शिवरात्रि वग़ैरा पवित्र तिथियों पर वे उपवास करना चूकती न थीं। कभी-कभी सोमवार, एकादशी और दूसरी कोई तिथि एक साथ आ जाती, तो बा तीन-चार दिन तक लगातार उपवास रखतीं। बीमार हों या अच्छी, इनमेंसे किसी भी उपवासको छोड़नेका उन्हें कभी विचार तक नहीं आता था। राष्ट्रीय सप्ताह, स्वतंत्रतादिन और 'हिंदुस्तान छोड़ो' दिनके उपवास इन उपवासोंके अलावा होते थे, और बा इन्हें भी कभी चूकती न थीं।

पतिव्रता सती

बा बहुत पढ़ी–लिखी न थीं। लेकिन उनकी बुद्धिका खासा अच्छा विकास हो चुका था। देशमें क्या हो रहा है, इसे वे अच्छी तरह समझती थीं। बापूजीमें उनकी अपूर्व श्रद्धा थी। हिन्दू स्त्री पातिव्रत धर्मको सबसे पहला स्थान देती है। अतएव बा भी बापूजीके पीछे-पीछे चलना ही अपना धर्म समझती थीं।

जेलमें सुबह-शाम घूमते समय मनु अक्सर बापूजीसे कहानी सुनानेको कहती। बापूजीने उसे दो-चार छोटी-छोटी कहानियाँ सुनाईं भी। एक दिन मैंने कहा: "कहानी कहना हो, तो हमें अपनी ही कहानी कहिये न?" बापू मान गये। उनके मुँहसे उनकी आत्मकथा सुननेमें और 'आत्मकथा' पढ़ जानेमें ज़मीन-आसमानका फ़र्क़ था। बापूजीने हमें अपने बचपनकी, बाके साथ खेलनेकी, विवाहकी, विलायत जानेकी, और दक्षिण अफ्रीकाकी कहानियाँ सुनाईं। लेकिन बादमें बाकी बीमारी बढ़ जानेके कारण कहानी सुनानेका यह सिलसिला टूट गया। बापूजीने बताया कि किस तरह बाने हिन्दूधर्मके अपने पुराने संस्कारों पर विजय पाकर बापूजीके पीछे-पीछे चलनेकी कोशिश की थी। उन्होंने कहा: "मुझे कहना चाहिये, कि इस काममें मेरे परिवारकी सब स्त्रियोंकी मदद मुझे मिली। वे सब बासे कहती थीं: 'दूसरे लोग चाहे .खुद पुराने रीति-रिवाजोंका पालन करें, अछूतोंको घरमें न आने दें, मुसलमानोंका छुआ पानी तक न पीयें, मगर तुझे तो ये सब विचार छोड़ देने ही चाहियें। अपने पतिके पीछे चलना ही तेरा धर्म है। उनके पीछे चलते हुए तू कुछ भी क्यों न करे, तुझे उसका पाप लग ही नहीं सकता। उसका तो शुभ परिणाम हो सकता है।' और, बाने हमेशा उनकी सलाह पर अमल करनेकी कोशिश की है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उसने हर एक क़दम अपनी बुद्धिसे समझ कर उठाया है, लेकिन मैं तो हमेशासे यह मानता आया हूँ, कि बुद्धि हृदयके पीछे चलनेवाली चीज़ है। बाने जो कुछ किया है, श्रद्धासे किया है, हृदयसे किया है, और बादमें बुद्धिसे भी वह उन चीज़ोंको बहुत हद तक समझ सकी है।"

बा रोज़ नियमसे कातती थीं। अक्सर वे तीन सौसे पाँच सौ तार हररोज़ कात लेती थीं। रचनात्मक कार्यक्रमके महत्त्वको वे अच्छी तरह समझती थीं। लेकिन आग़ाखान महलमें आनेके बाद वे बहुत कात नहीं सकीं। हृदयका दर्द शुरू हो जानेके कारण उनको कातनेसे रोकना पड़ा। इसमें मुझे कितनी कठिनाईका सामना करना पड़ा, सो कहना मुश्किल है। बा कहतीं: "भला, कातनेसे मेरे हृदयको क्या श्रम पहुँचेगा?" इसी तरह उन्हें घरमें घूमने-फिरनेसे रोकना भी कठिन था। आखिर कर्नल भण्डारीने उनको डराया: "देखिये, आप आराम नहीं करेंगी, तो मुझे आपको यरवड़ा ले जाना पड़ेगा।" बा इतनी भोली थीं, कि धमकी काम कर गई। उन्होंने खाट पर रहना शुरू किया और दो ही चार दिनोंमें तबीयत सुधरने लगी। मगर चर्खा तो जो छूटा, सो छूटा ही। बाके मनमें यह ख्याल जम गया कि चर्खा चलानेसे हृदयका दर्द बढ़ता है। इसलिए बादमें हम लोग उनसे चर्खा चलानेको कहते भी थे, तो वे चलाती नहीं थीं। हमें लगता था कि उनके लिए अपनी बीमारीके विचारको भूल कर दिल बहलानेके लिए चर्खा अच्छा साधन होगा। एक दो बार बाने चर्खा निकाला भी, मगर वह सिलसिला फिर चल नहीं सका।

छुआ-छूत

मैंने बामें छुआ-छूतकी भावना भी कभी नहीं देखी। १९३० में, जब मैं पहली बार गर्मीकी छुट्टियोंमें आश्रम गई थी, वहाँ लक्ष्मी नामकी एक लड़की थी, जिसे सब बा और बापूकी लड़की कहा करते थे। वह बाके पास ही रहती थी। बा माँकी तरह उसकी सँभाल रखती थीं। जब मैं आश्रमसे लौटकर घर पहुँची, तो वहाँ किसी बहनने कटाक्ष करते हुए पूछा: "आश्रममें भंगीकी वह लड़की तेरी सहेली बनी थी या नहीं?" मैं ज़रा चक्करमें पड़ गई; पूछा, "भंगीकी लड़की कौन?"

"वही, जिसे महात्माजी अपनी लड़की बनाये हुए हैं।"

तब मुझे पता चला कि लक्ष्मी बाकी अपनी लड़की नहीं थी; वह हरिजन लड़की थी, जिसे बा और बापू अपनी लड़कीकी तरह रखते थे।

इसी तरह सेवाग्राम आश्रममें काम करनेवाले हरिजनोंके प्रति बा बहुत ही उदारताका और प्रेमका भाव रखती थीं। उन्हें .खुद कभी कोई सेवा लेनी ही पड़ती, तो वे हरिजन सेविका मणिबाईसे ही लेना पसंद करती थीं। आग़ाखान महलमें वे अक्सर मणिबाई, खंडू मामा वग़ैरा हरिजन सेवकोंको याद किया करती थीं। कई बार चर्चा चलने पर वे कहतीं: "आखिर तो ईश्वरहीने सबको बनाया है न! फिर ऊँच क्या और नीच क्या? यह तो भावना ही ग़लत है।"

पुराने संस्कार

लेकिन साथ ही वे अपने पुराने संस्कारोंको बिलकुल भूल नहीं सकी थीं। ब्राह्मणके प्रति उनके मनमें विशेष श्रद्धा थी। आग़ाखान महलमें वहाँके सिपाही हम लोगोंकी बहुत-सी सेवा कर दिया करते थे। उनमें एक ब्राह्मण था। उसे रसोईघरके काम पर रक्खा गया था। बा उस पर विशेष प्रेम रखतीं और उसे दूध-फल वग़ैरा देती रहतीं। कभी उससे कोई भूल भी हो जाती तो माफ़ कर देतीं। वे अक्सर कहतीं: "बेचारा ब्राह्मणका लड़का है। यहाँ और तो कोई धर्म हो नहीं सकता; इसे कुछ दे सकें, तो अच्छा ही है।"

लेकिन इसकी वजहसे दूसरे सिपाही उसकी ईर्ष्या करने लगे, और आखिर सुपरिण्टेण्डेण्ट तक शिकायत पहुँची। उन्होंने बासे कहा कि वे किसीको कुछ न दिया करें। मगर बा क्यों मानने लगीं? वे तो चुपचाप जो देना होता, दे आतीं और कहतीं: "मैं अपने हिस्सेमेंसे देती हूँ। किसीको क्या?"

एक रोज़ बा उससे पूछने लगीं: "महाराज, तुम ब्राह्मण हो। कहो तो, हम घर कब जायँगे?" वह बेचारा क्या उत्तर देता? बोला: "अच्छा बा, किताब देख कर बताऊँगा।" बादमें उसने कुछ बताया या नहीं, मैं नहीं जानती।

हिंदू-मुसलमानके प्रति समभाव

यह सब होते हुए भी बाके दिलमें दूसरी क़ौमके लोगोंके लिए कोई अप्रेम या अरुचि नहीं थी। आग़ाखान महलमें एक-दो मुसलमान

सिपाही भी थे। बा उनके साथ भी अच्छी तरह हिलती-मिलती और बातचीत करती थीं। उनसे रसोईघरका काम भी करातीं। ईद वग़ैरा त्यौहारोंके दिन वे उन्हें फल और मिठाई भी देतीं। सिपाहियोंमें हिन्दू या मुसलमानका कोई भेदभाव वे नहीं रखती थीं, हालाँ कि इतिहासकी किताबोंमें मुसलमानी हुकूमतके ज़मानेके .जुल्मोंकी बात पढ़ कर वे बेचैन हो उठती थीं। डॉक्टर अन्सारी, हकीम साहब अजमल खान, खान अब्दुल गफ़्फ़ार खान, डॉ. खान साहब, और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद साहब-जैसे तमाम मुसलमान मित्रोंको देख कर उनके मनमें अक्सर यह सवाल पैदा होता, कि आखिर इतिहासमें यह सब ऐसा क्यों लिखा है? इन मुसलमान मित्रोंके लिए उनके मनमें सरदार वल्लभभाई या जमनालालजीके जितना ही प्रेम और मित्रभाव था। उनके दिलमें कभी यह खयाल तक नहीं आता था कि इनमें कुछ हिन्दू हैं और कुछ मुसलमान! इसी तरह आश्रममें रहनेवाले मुसलमान भाई-बहनोंके प्रति भी उनके बरतावमें कभी कोई भेद-भाव मैंने नहीं देखा। हाँ, बा यह जरूर ताड़ जाती थीं कि कौन उनकी सेवा मनसे करता है, और कौन सिर्फ़ बापूजीको .खुश करनेके लिये करता है। ऐसे लोगोंसे सेवा कराना उन्हें अच्छा नहीं लगता था, फिर भले वे हिन्दू हों या मुसलमान। इसी तरह जो भी कोई बापूजी तक उनकी शिकायत लेकर जाता था, उसे वे आसानीसे माफ़ नहीं कर सकती थीं। मुसलमानोंके मनमें हिन्दुओंके प्रति जो अविश्वास पैदा हो गया है, उसे दूर करनेके लिये मुसलमानोंके साथ खास उदारता दिखानेकी ज़रूरत है, इस चीज़को वे समझ नहीं सकती थीं। उनके पास सबके लिए समभाव था, और इतना उनके लिए बस था।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यकी आवश्यकता और उसके महत्त्वको भी वे समझती थीं। एक दिन अखबारमें मि० एमेरीका यह बयान पढ़ कर कि गांधी और जिन्ना एक दूसरेसे मिलना तक क़बूल नहीं करते हैं, बा बहुत नाराज़ हो गईं। कहने लगीं: "यह बिलकुल झूठ है। गांधी तो जिन्नाके घर उनसे मिलने गया था। महादेवने यह सब लिख कर रखा है। एमेरी ज़रा मेरे सामने तो आवे। मैं उसे लिखा हुआ दिखाऊँगी

और पूछूँगी कि गांधी जिन्नासे मिलने उनके घर गया था या नहीं?" अखबारोंमें बापूजीकी टीका पढ़कर बाको बहुत दुःख होता था। उनके लिए यह एक नई चीज़ थी। एक तो वे बाहर इतने ध्यानके साथ अखबार पढ़ती ही नहीं थीं, उन्हें इतना समय ही नहीं मिलता था; दूसरे गांधीजीके खिलाफ़ जितना ज़हर इस बार उगला गया है, उतना शायद ही पहले कभी उगला गया हो। बा अक्सर कहतीं : "देखो न, ये लोग कितना झूठ बोलते हैं? इनके पाप का घड़ा भी कभी तो भरेगा न? ईश्वर कबतक इनके पापको सहता रहेगा?" खास तौरपर जब बापूजीकी अहिंसापर कोई हमला करता था तो बासे वह बिलकुल नहीं सहा जाता था।

इस बारके जेलका बापर असर

बा कई बार जेल जा चुकी थीं। दक्षिण अफ्रीकाके जेलखानोंमें तो उन्हें बहुत ही कष्ट सहने पड़े थे। कभी-कभी बा मुझको अपने अनुभवोंकी बातें सुनाया करती थीं। हिन्दुस्तानमें भी वे काफ़ी बार जेल जा चुकी थीं। कम-से-कम तीन बार तो वे सन् १९३१-'३३ के आन्दोलनमें ही गिरफ़्तार हुई थीं। लेकिन बाको इस बारका जेल-जीवन पहलेके मुक़ाबले बहुत खटकता था। वे महसूस करती थीं, कि इस दफ़ा सरकारने सबको बिला वजह पकड़ लिया है। जनतापर सरकारकी सख़्ती की जो थोड़ी-बहुत खबरें अखबारोंमें आती थीं, उन्हें पढ़कर वे बहुत दुःखी होती थीं। इस बारका बेमियाद जेल-जीवन उन्हें बहुत खटकता था। महादेवभाईकी मृत्युके बाद उनके मनमें यह खटका पैदा हो गया था, कि शायद वे इस जेलसे जीते जी बाहर न जाँयगी। ता० १९-९-'४२ के दिन पहली बार उन्होंने अपना यह भय प्रकट किया था। चर्चा चल रही थी, कि बाहर जाने पर कौन क्या करेगा? इस पर बा कह उठीं : "मेरा क्या ठिकाना है? मैं बाहर जाऊँ भी, न भी जाऊँ। यह भी हो सकता है, कि मैं अभी हूँ, और शाम तक न रहूँ।" बापूने यह बात सुन ली। बोले : "ऐसा क्यों कहती हो? वैसे देखा जाय, तो तुम जो कहती हो, सो सब पर लागू हो सकता है। यह सुशीला अभी एम० डी० होकर आई है। हो सकता है, कि यह अभी है, और शामको न रहे। महादेवका ऐसा ही हुआ न? तू और मैं, जो बीमार-से थे, अभी बैठे हैं।

इसलिए तुझे तो अच्छा होना ही है। जितनी सेवाकी ज़रूरत हो, ले; और मनसे सब तरहकी चिन्ताको निकाल डाल।"

लेकिन बाके लिए चिन्ता छोड़ना कठिन था। दूसरे जेलोंमें बाके पास दूसरी बहुतेरी बहनें रहती थीं। उनसे बातचीत करनेमें, बीमारोंको देखनेमें, कातनेमें और भजन-कीर्तनमें उनका समय निकल जाता था। लेकिन यहाँ तो इस बार हरएक अपने-अपने काममें लगा हुआ था। जब बाको कुछ पढ़कर सुनाना होता, या उनकी दूसरी कोई सेवा करनी होती, तभी लोग उनके साथ रहते। बादमें तो बातें करनेके लिए भी कोई उनके पास बैठनेवाला नहीं था। और बाको तो हमेशा दरबार लगाकर बैठना अच्छा लगता था, ख़ास करके शामके वक़्त। सो बा अक्सर विचार-सागरमें डूब जाया करती थीं। एक दिन कहने लगीं: "बापूजी इतनी बड़ी सल्तनतके साथ लड़ रहे हैं। उसके पास साधनोंका पार नहीं है। बापूजी कैसे जीतेंगे?"

मैंने कहा: "बा, आख़िर ईश्वर तो है न? बापूने तो उसीके भरोसे यह लड़ाई ठानी है। वही इसे पार भी लगायेगा।"

बा बोलीं: "लेकिन आज तो ईश्वर भी हमारे ही विरुद्ध जा रहा है। देखो न, महादेवको किस तरह ले गया?"

बापूजीने सुना तो बोले: "महादेवका जाना एक शुद्धतम बलिदान है। उससे आज़ादीकी लड़ाईको लाभ ही होनेवाला है।"

मगर बाके मनसे शंका गई नहीं। एक दिन उनकी तबियत कुछ ज़्यादा ख़राब थी। चिढ़कर बापूजीसे कहने लगीं: "देखिये, मैं आपसे कहती थी कि इतनी बड़ी सल्तनतके साथ छेड़छाड़ न कीजिये, मगर आपने एक न सुनी। अब उसका फल सबको भुगतना पड़ रहा है। सरकारकी ताक़तका पार नहीं है। वह लोगोंको कुचल रही है। लोग बेचारे कहाँ तक सहेंगे? इसका परिणाम क्या होगा?"

पहले तो बापूने बाको दलीलोंसे समझानेकी कोशिश की, लेकिन उस दिन वे इस तरह समझने को तैयार न थीं। आख़िर बापूने कहा: "तो तू क्या चाहती है? चल, तू और मैं सरकारसे माफ़ी माँगें।"

बा चिढ़ बैठी थीं। बोलीं: "मैं क्यों किसीसे माफ़ी माँगूँ?"

"तो तू कहे, तो मैं वाइसरायको माफ़ीके लिए पत्र लिखूँ ?"

बापूकी मानहानिको बा किसी भी हालतमें सह नहीं सकती थीं। वे ज़रा गुस्सेमें आकर बोलीं : "सुकुमार (कमसिन) लड़कियाँ जेलोंमें पड़ी हैं। वे माफ़ी नहीं माँगतीं और आप माँगेंगे ? अब किया है, तो उसका फल भुगतिये ! आपके साथ हम भी भुगतेंगे। महादेव जेलमें खतम हो गया है, अब मेरी बारी आ रही है।" बापूजी चुपचाप सुनते रहे। बा जब गुस्सा होतीं, बापू आम तौर पर मौन धारण कर लिया करते थे।

कुछ दिनों बाद बाने बापूसे कहा : "मैं तो यह कहती हूँ, कि आप अंग्रेज़ोंको हिन्दुस्तानसे जानेके लिए क्यों कहते हैं ? भले वे यहाँ रहें। हमारा देश बहुत बड़ा है। उसमें हम सब समा सकते हैं। आप उनसे कहिये, कि वे यहाँ हमारे भाई बनकर रहें।"

बापूने कहा : "तो मैं और कहता ही क्या हूँ ? मैं भी तो उनसे यही कहता हूँ कि आप हमारे भाई बनकर रहें, सरदार बनकर नहीं। आप अपनी सरदारी हटा लें, तो आपके साथ हमारा कोई झगड़ा ही नहीं।"

बा बोलीं : 'सो तो ठीक ही है। हम अंग्रेज़ोंको अपना सरदार बनाकर नहीं रख सकते, भाई बनकर .खुशीसे रहें।"

दूसरे दिन मैं बाकी मालिश कर रही थी। वे मुझसे कहने लगीं : "सुशीला, ये लोग बहुत बदमाश हैं। बापूजी कहते हैं, हमारे देशमें हमारे भाई बनकर रहो, लेकिन उन्हें तो हमारी सरदारी करनी है। हिन्दुस्तानको लूटना है। इसीलिए बापूजीको और दूसरे सब नेताओंको पकड़कर जेलमें बन्दकर दिया है।"

बा बापूजीसे कुछ भी नया सुनतीं, तो दूसरे दिन मालिशके समय अक्सर मुझसे उसका ज़िक्र किये बिना न रहतीं। किताबमें भी कुछ नया-नया पढ़तीं, तो प्रायः हम सबसे उसकी चर्चा करतीं। एक रोज़ उन्होंने किताबमें पारसियोंका इतिहास पढ़ा। शामको हमारी छावनीके पारसी सुपरिंटेंडेण्ट मि० कटेली बाको देखने आये। बा उनसे कहने लगीं : "कटेली साहब, आप जानते हैं, पारसी किस तरह हिन्दुस्तानमें आये ?" और, किताबमें पढ़ा हुआ सारा इतिहास वे उन्हें सुना गईं। मि० कटेली बहुत ही

सज्जन पुरुष थे। बाको देखकर उन्हें अपनी बूढ़ी माँकी याद हो आती थी। उन्होंने अत्यन्त सज्जनताके साथ बैठकर बासे सारी कहानी सुनी।

बापूके उपवासकी तैयारी

सत्याग्रहमें उपवासका क्या स्थान है, इसकी चर्चा तो बहुत समयसे चलती थी। बहुतोंको डर था कि इस बार जेलमें जाते ही बापू उपवास शुरू कर देंगे। महादेवभाईने जेलमें जो ६ दिन बिताये, सो तो सारा समय इसी चिन्तामें बीते, कि बापू उपवास करेंगे, तो क्या होगा? लेकिन महादेवभाईकी मृत्युके बाद कुछ समय तक उपवासकी बात ठण्डी पड़ गई। बापूजीने महादेवभाईकी मृत्युको आज़ादीकी वेदी पर चढ़ा हुआ शुद्धतम बलिदान कहा है। उस बलिदानका असर देखनेके लिए भी शायद उन्होंने उस समय तो उपवासका विचार छोड़ दिया।

लेकिन जैसे-जैसे समय बीतने लगा, वैसे-वैसे देशकी दुर्दशा, दुष्काल, और सरकारके ज़ुल्म वग़ैराके समाचार पढ़कर बापूजीकी शान्ति ग़ायब होने लगी और वे बहुत ही गंभीर दीखने लगे। उपवासका विचार फिर उनके मन पर अपना प्रभुत्व जमाने लगा था। वे बराबर यह सोचने लगे, कि सरकारके ज़ुल्मोंके खिलाफ़ वे अपना विरोध किस तरह प्रकट कर सकते हैं? जनताके दुःखमें ख़ुद किस तरह हिस्सा बँटा सकते हैं?

२८ दिसंबरको सोमवारका मौन था। उस दिन बापूजीने वाइसरायके नाम एक पत्रका मसविदा तैयार किया। दूसरे दिन बाको पता चला, तो कहने लगीं: "पत्र आप भले लिखें, लेकिन उपवासकी कोई बात न निकालें।" बापू हँस दिये। उस पत्रमें उपवासका ज़िक्र तो था ही। हम सबने बापूजीसे आग्रह किया: "उपवासकी बात निकाल दीजिये। मुमकिन है, कि आपके पत्रहीसे वाइसरायकी सद्‌बुद्धि जाग्रत हो जाय। कम-स-कम उन्हें यह कहनेका मौक़ा तो हरगिज़ न मिलना चाहिये, कि गांधीने उपवासकी धमकी दी थी, इसलिए मैंने उसकी बात नहीं सुनी।"

बापू मान गये। ३१ दिसंबरको बापूजीका एक छोटा-सा सुन्दर खत, उनके अपने हाथों लिखा, भेजा गया। जवाबकी राह देखते हुए बापू बहुत ध्यान-मग्न रहने लगे। इस पर मीराबहनने कहा: "बापूको

एकान्तकी ज़रूरत है। आमके पेड़के नीचे एक झोंपड़ी बना दी जाय, तो अच्छा हो।" बाने मना किया। बोलीं: "झोंपड़ीकी क्या ज़रूरत है? बापू तो हर जगह एकान्त सेवन कर सकते हैं।" बापूने भी कहा: "मेरा एकान्त दूसरी तरहका है। बाको मैं अपनेसे दूर नहीं रख सकता, रखना भी नहीं चाहता।"

ज्यों-ज्यों वाइसरायके साथका पत्र-व्यवहार बढ़ा, उपवास नज़दीक आने लगा। मदसे चूर सरकार बापूकी क्यों सुनने लगी? लेकिन हम सब तो उपवासके विचारसे ही घबराते थे। एक दिन भाईने (प्यारेलालजीने) मुझसे पूछा: "तुम्हारे खयालसे बापू कितने दिनोंका उपवास सहन कर सकते हैं?"

मैंने कहा: "निश्चित रूपसे कहना कठिन है, लेकिन राजकोटके उपवासके वक़्त तो पाँचवें दिन ही हालत गंभीर हो गई थी। उस हिसाबसे देखें, तो बापू इस बार बहुत दिन तक टिक नहीं सकेंगे।"

श्रीमती नायडू कहने लगीं: "बापूको उपवास करना ही न चाहिये। इस उमरमें वे उपवासके बाद बच नहीं सकेंगे, और अभी अंतिम बलिदानका समय आया नहीं है।"

बा चिन्तित रहने लगीं। सरोजिनी देवीने उनसे कहा: "आप चिन्ता न करें। बापू तो कहते हैं कि जब तक ईश्वरकी आज्ञा न होगी, अन्तरात्माकी आवाज़ सुनाई न पड़ेगी, वे उपवास करेंगे ही नहीं। और भगवान् उन्हें कभी उपवास करनेको कहेगा ही नहीं।"

बाने जवाब दिया: "यह तो मैं जानती हूँ, कि भगवान् उपवासके लिए नहीं कहेगा। लेकिन बापूजी मान लेंगे, कि भगवान् ही कह रहा है तो?"

बापूजी दोपहरको आधा घंटा ध्यानमें बैठते थे। वे ईश्वरसे मार्ग-दर्शनके लिए प्रार्थना करते थे। बा सुबह स्नान करके आधा-पौना घंटा तुलसी माताकी पूजामें बैठती थीं। वे ईश्वरसे अपने पतिकी दीर्घायुके लिए, प्राण-दानके लिए, प्रार्थना करती थीं।

इस चिन्ताके कारण बाकी कमज़ोरी बढ़ने लगी। बा, सरोजिनी देवी और मीराबहन हर शनिचरको महादेवभाईकी समाधि पर फूल चढ़ाने जाया करती थीं। लेकिन अब बाका जाना छूट गया। उनमें इतना

चलनेका भी उत्साह नहीं रह गया था। इससे हम सब बाके लिए चिन्तित हुए। सबके मनमें यह सवाल उठता था कि उपवासके दिनोंमें बाकी क्या हालत होगी? हमें लगता था कि आजकी हालतमें वे ऐसी कड़ी परीक्षाके लायक़ नहीं हैं। सरोजिनी देवीने तो ज़ोरदार शब्दोंमें बापूसे कहा: "बापू, आपका उपवास बाको खतम कर डालेगा।" बापू हँस दिये और बोले: "मैं बाको तुम लोगोंसे ज़्यादा पहचानता हूँ। तुम लोग बाकी बहादुरीका अन्दाज़ भी नहीं लगा सकते। उसे तुम पहचानते ही नहीं हो। आखिर मैंने बाके साथ बासठ साल बिताये हैं। मैं तुमसे कहता हूँ, कि बा तुम सबसे अधिक हिम्मत रखनेवाली है। मेरे हरिजन-उपवासके दिनोंमें, जब मैंने जीवनकी आशा छोड़कर अपना सब सामान अस्पतालवालोंको बाँट देनेका निश्चय कर डाला था, बाने दृढ़तापूर्वक, अपने हाथों, सारा सामान दूसरोंको बाँट दिया था और उस वक़्त उनकी पलक तक नहीं भीगी थी।"

सन १९३३ की बाकी डायरीके पन्नोंको उलटनेसे उसमें नीचे लिखा उल्लेख मिलता है:

"नहाकर अस्पताल गई। मथुरादास मेरे साथ थे। मैंने सामानकी बँधी टोकरी छोड़ी। फिर बापूजीने कहा: 'सारा सामान अस्पतालमें दे दो।' मैंने दे दिया। कल रात बापूजीको उल्टी हुई थी। सुबह बहुत कमज़ोरी आ गई थी। बोले, 'अब मैं इस बिछौनेसे नहीं उठूँगा। तू कोई फ़िकर न करना। तुझे तो इसका अभिमान रखना चाहिये। सत्य इसीका नाम है।' लेकिन ईश्वर दयालु है। उसने अपने भक्तोंको तारा है। फिर जो होना हो, सो हो।"

और बाका ईश्वरके प्रति यह विश्वास निरर्थक नहीं ठहरा। सरकारने उसी दिन बापूजीको छोड़ दिया। जिस दिन उपवास पूरा हुआ, उस दिनकी अपनी डायरीमें बाने लिखा है: "तीन बजे पर्णकुटी आये।" इस प्रकार बाकी श्रद्धा सफल हुई।

बाकी हिम्मतके बारेमें बापूजीका विश्वास सच्चा साबित हुआ। उसी शामको उन्होंने उपवासके बारेमें बासे बातें कीं। दूसरे रोज़ बा कहने लगीं: "जहाँ इतनी ज़्यादा झुठाई चल रही हो, वहाँ बापू चुप कैसे

बैठ सकते हैं ? सरकारके अत्याचारोंके प्रति अपना विरोध जतानेके लिए बापूके पास उपवासको छोड़कर दूसरा और साधन भी क्या है ?" हम सब दंग होकर चुपचाप सुनते ही रहे ।

मानसिक निश्चयके साथ बाकी शारीरिक शक्ति भी बढ़ी । उपवासके दिनोंमें उन्होंने सारा समय हिम्मतके साथ बापूजीकी सेवा की । उन दिनों एक दिनके लिए भी उनकी अपनी तबियत नहीं बिगड़ी ।

उपवास

१० फरवरी, १९४३को सुबह नाश्तेके बाद प्रार्थना करके बापूजीने उपवास शुरू किया । उस रोज़ वे सुबह-शाम घूमे । महादेवभाईकी समाधि पर भी गये । बा भी उनके साथ घूमीं । हमेशाकी तरह बाने फलाहार शुरू कर दिया । और इक्कीस दिन तक अन्न नहीं छुआ । बापूजीके पहलेके उपवासोंमें वे फलाहार भी दिनमें एक ही बार किया करती थीं । इस बार उनकी दुर्बल स्थितिको देखकर हम सबने उनसे आग्रह किया कि वे एक ही समय खानेका नियम न रखें । बड़ी अनिच्छाके साथ वे हमारे आग्रहके वश हुईं ।

दिनमें दो-तीन बार बा गरम पानी और शहद पिया करती थीं । उपवासके दिनोंमें बराबर बापूके पास ही रहनेकी उनकी इच्छा स्वाभाविक थी । वे शहदके पानीका गिलास लेकर बापूकी खाटके पास आ जातीं । कुछ काम रहता, तो गिलासको बापूजीके पास मेज़ पर रखकर काम कर लेतीं और फिर पानी पीने लगतीं । एक दिन डॉक्टर गिल्डरने कहा : "यह अच्छा नहीं लगता । मुमकिन है कि सरकारी आदमियोंके मनमें शक पैदा हो और वे समझें कि बा बापूको पिलानेके लिए ही पानीका यह गिलास लिए घूमा करती हैं ।" उन्होंने बासे भी यह चीज़ कही । बाने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया : "बापूजीके बारेमें कोई ऐसी शंका कर ही नहीं सकता ।"

उपवासके तीसरे दिन बापूजीको मतली आनी शुरू हुई । बाने कहा : "पानीमें थोड़ा मोसंबीका रस लीजिये न ?" बापूने इनकार किया । बोले : "मैं यों जल्दी-जल्दी रस नहीं लूँगा ।" उसके बाद तो उबकाईकी तकलीफ़ बढ़ गई । बापू पानी बिलकुल पी ही नहीं पाते थे । ख़ून गाढ़ा हो

गया । गुर्दोका काम ढीला पड़ गया, लेकिन बाने दुबारा उन्हें रस लेनेको नहीं कहा । वे बड़ी स्वाभिमानिनी थीं । वे यह भी महसूस करती थीं कि बापू करेंगे तो अपने मनकी ही, फिर बार-बार एक ही चीज़ कहकर उनकी शक्तिका दुर्व्यय क्यों किया जाय ?

जैसे-जैसे उपवासके दिन आगे बढ़े, बाकी तुलसी-पूजाका और बालकृष्णकी पूजाका समय भी बढ़ता गया । बापूजीकी हालत ज्यों-ज्यों गंभीर होती गई, बाकी पूजा अधिक लम्बी और अधिक अनन्य बनती गई । २२ फरवरीके दिन बापू जीवन और मरणके बीच झूल रहे थे । मीराबहन मुझे चुपकेसे बाहर बरामदेमें बुलाकर ले गईं । वहाँ बा तुलसी माताके सामने घुटने टेककर बैठी प्रार्थना कर रही थीं । उनके मुखका भाव इतना करुण और इतना दीन था, कि देखनेवालेकी आँखें डबडबा आती थीं । बा अपने ध्यानमें लीन थीं । उनको इस बातका कोई पता नहीं था, कि कौन उनके पास खड़ा है या उधरसे गुज़र रहा है ।

उपवासके तेरहवें दिन यानी २२ फरवरीको बापू दस मिनटके प्रयत्नसे आधा औंस पानी भी नहीं पी सके । थककर बेहाल हो गये, और खाटमें पड़ गये । नाड़ी कमज़ोर पड़ गई । बदन पसीनेसे तर हो गया । बोलना तो ठीक, इशारा तक करनेकी ताक़त न रह गई । बा प्रार्थनामें लीन थीं । बापूके कमरेमें अकेली मैं ही थी । मैंने डरते-डरते कहा : "बापूजी, क्या मोसंबीका रस लेनेका समय नहीं आया ?" सात मिनट तक विचार करनेके बाद बापूने इशारेसे मंज़ूरी दी । मैं फ़ौरन ही दो औंस रस और पानी मिलाकर लाई और बापूजीको पिलाया । चार औंस प्रवाहीके शरीरमें पहुँचते ही बापूजीके निस्तेज चेहरे पर जीवनकी किरण झलकने लगी । इतनेमें बा आ पहुँचीं । भगवान्‌ने उनकी प्रार्थना सुन ली थी ।

२२ फरवरी, १९४४को बाका देहान्त हुआ । किसीने कहा : "पिछले साल इसी दिन बापू यमराजके मुँहमें पड़े हुए थे । बाने सावित्रीकी तरह उन्हें छुड़ाया होगा और शर्त की होगी कि अगले साल इसी दिन मैं तुम्हारे साथ चलूँगी ।"

बापूजीके उपवासने आग़ाख़ान महलके दरवाज़े खोल दिये थे। दिन भर मुलाक़ातियोंका ताँता लगा रहता था। लोग बापूको तो सिर्फ़ प्रणाम करके ही बाहर निकल आते। बादमें वे बासे बातें करते। बा हिम्मतके साथ दिनभर काम करतीं। लड़कों-बच्चोंको देखकर वह बहुत ख़ुश हुईं। वे माँ थीं। सारी दुनियाको अपना चुकी थीं। लेकिन इसके कारण उनके नज़दीक अपने लड़कोंका स्थान घटा नहीं था। बापूने नियम बना दिया था कि उपवासके दिनोंमें किसी मुलाक़ातीको खानेपीनेके बारेमें न पूछा जाय। बाके लिए इस नियमका पालन बहुत कठिन था। लेकिन उन्होंने इसे अक्षरशः पाला।

२१ दिन पूरे हुए। सरकारने उपवास छोड़नेके समय सिर्फ़ पुत्रोंको ही पास रहनेकी इजाज़त दी, मित्रोंको नहीं। बापूके नज़दीक मित्र और पुत्रमें कभी फ़र्क़ नहीं रहा। इसलिए उन्होंने पुत्रोंको आनेसे रोक दिया। दो मार्चकी शामको जब मुलाक़ाती लौट रहे थे, बाकी आँखें सजल हो आई थीं। लक्ष्मीबहन खरेको और दूसरे मित्रोंका बिदा देते हुए उन्होंने कहा: "बहन, यह आख़िरकी राम-राम है।" मैंने कहा: "बा ऐसा क्यों कहती हैं? हम सब जल्दी ही बाहर जानेवाले हैं।" बाने उत्तर दिया: "हाँ, तुम सब जाओगे।"

उपवासके बाद

तीन मार्च, १९४३ को बापूके उपवास पूरे हुए। बादमें तीन-चार रोज़ तक सरकारने देवदासभाई और रामदासभाईको मिलने आनेकी इजाज़त दी। मगर जब देखा कि बापूजीको ताक़त आ रही है, और खतरेका समय निकल गया है, तो मुलाक़ात बन्द कर दी। लड़कोंका आना बाके लिए 'टॉनिक'का काम करता था। जेलके दरवाज़ोंके बन्द होनेके साथ ही बाकी शक्ति भी क्षीण होने लगी। अपनी संकल्प-शक्तिके बलपर ही बा उपवासके दिनोंमें इतना काम कर सकी थीं, और शरीरको भी टिका सकी थीं। लेकिन वही शरीर अब क्षीण होने लगा। बा सहज ही थकने लगीं। उदास भी रहने लगीं। १६ मार्चको हृदयकी धड़कनका दौरा हुआ, जो क़रीब दो घंटे रहा; उसके बाद २५ मार्चको, ९ दिन

बाद, फिर वही दौरा हुआ और क़रीब चार घंटे रहा। बस, तभीसे दवाइयाँ शुरू हुईं, और आखिरी दम तक साथ चलीं।

उपवाससे पहले बापूजी अक्सर कहा करते थे, कि ६ महीनोंमें कुछ-न-कुछ फ़ैसला हो ही जायगा। उपवासके बाद उन्होंने कहना शुरू किया, कि अब कम-से-कम सात साल जेलमें रहना होगा। बाको इस चीज़का बहुत धक्का लगा। उन्होंने बार-बार कहना शुरू किया: "मुझे तो महादेवके पास ही रह जाना है न? मैं कौन सात साल जीनेवाली हूँ?" लेकिन साथ ही बा बालककी तरह सरल भी थीं। अन्दरसे आशा बिलकुल नष्ट नहीं हो गई थी। वे कई बार बालकृष्णकी मूर्तिके सामने एकान्तमें प्रार्थना करती सुनी गईं: "हे बालकृष्ण, हमें जल्दी जेलसे बाहर ले चलो!"

एक रोज़ यों ही सिनेमाकी चर्चा चल पड़ी। अखबारमें 'भरत-मिलाप'का इश्तिहार था। बाको रामायणमें 'भरत-मिलाप'का प्रसंग बहुत प्रिय था। मैंने कहा: "बा, आप जब दिल्ली आयेंगी, तो आपको 'भरत-मिलाप' दिखा लायेंगे।" बाको यह विचार अच्छा लगा। कुछ देरके लिए वे भूल गईं कि वे जेलमें बैठी थीं और दिल्लीसे बहुत दूर थीं। कहने लगीं: "लेकिन बापूजी न जायँ, तो मैं कैसे जा सकती हूँ?" मैंने कहा: "नहीं बा, वह तो धार्मिक खेल है। रामायणकी कहानी है। बापू ख़ुद चाहे न जायँ, लेकिन आपको नहीं रोकेंगे। हम, तारा, रामू, मोहन* सबको साथ ले चलेंगे।" तारा, रामू, मोहन वग़ैराका नाम सुनकर बा मुसकराने लगीं और 'अच्छा' कहकर दूसरी बातोंमें लग गईं।

बापूके उपवासके दिनोंमें श्री जयसुखलाल गांधी बासे मिले। उन्होंने बताया कि उनकी लड़की मनु, जो १९४२की लड़ाईसे पहले बाकी देखरेखमें थी, अब नागपुर जेलमें है, और वहाँ उसकी आँखें बहुत ख़राब हो रही हैं। उन्होंने बासे कहा: "अगर मनु आपके साथ रहे, तो उसकी आँखें भी सुधर जायँ और आपकी सेवाका लाभ भी उसे मिले।" बाके मातृ हृदयको लड़कीकी आँखोंको बिगड़नेसे बचा लेनेका

* तारा श्री देवदासभाईकी लड़की और रामू व मोहन उनके लड़के हैं।

विचार बहुत महत्त्वका मालूम हुआ, और उन्होंने बापूजीसे कहा: "मुझे एक नर्सकी ज़रूरत तो है ही। हम मनुको बुला लें तो कैसा हो?" बापूजीने बातको टालनेकी कुछ कोशिश की। उन्हें डर था कि सरकार इनकार कर देगी, और वे सरकारको ऐसा कोई मौक़ा देना नहीं चाहते थे। लेकिन बा अपनी बात पर डटी रहीं। उन्होंने .खुद कर्नल शाह और कर्नल भंडारीसे कहा: "मुझे अपने लिए एक नर्सकी ज़रूरत है।" इसी दरमियान बाको फिर हृदयकी धड़कनका एक सख्त दौरा हुआ। डॉ० गिल्डरने और मैंने एक पत्रमें अपनी डॉक्टरी राय देते हुए लिखा, कि बाको नर्सके रूपमें एक साथीकी आवश्यकता है। सरकार चौंकी। सवाल उठा, कि मनु न आ सके, तो कौन आये? बाने मणिबहन पटेल और प्रेमाबहन कंटकके नाम दिये। सरकारको ये क्योंकर रुचते? बंबईकी सरकारने मध्यप्रान्तकी सरकारके साथ पत्र-व्यवहार किया और २३ मार्च '४३को मनु आगाखान महलमें आ पहुँची। उसी दिन हमारी अम्माजान — श्रीमती सरोजनी नायडू — मलेरियाके जन्तुओंके प्रतापसे रिहा हुईं।

मार्चके अन्तमें बाको निमोनियाका हल्का-सा हमला हो गया। अप्रैलके शुरूमें उनके पेशाबमें 'बी० कोलाई' (B. Coli)की पुरानी तकलीफ़ जाग उठी। उचित इलाजसे ये सब तकलीफ़ें दूर हो गईं।

मनुने बाकी सेवामें .खूब मदद की। कुछ दिनके लिए बाकी तबियत खासी अच्छी लगने लगी। खानेके समय वे खानेके कमरेमें आकर बैठतीं। डॉक्टर गिल्डर और मि० कटेली मांसाहारी थे। इसलिए वे अलग एक टेबल पर बैठते थे। मीराबहन ज़मीन पर आसन बिछाकर बैठतीं। मनु, भाई और मैं एक दूसरी मेज़ पर बैठते। बा सबके पास जातीं, सबके खानेका ध्यान रखतीं, और बातचीत करतीं। रसोई पीछेवाले बरामदेमें बनती थी। बा वहाँ जाकर बैठतीं, पकानेवालोंके साथ बातचीत करतीं और पकानेके बारेमें सूचनायें देतीं। मतलब यह कि उन्होंने वहाँ अच्छी तरहसे माताका स्थान ग्रहण कर लिया था। वे सारे हिन्दुस्तानकी माँ थीं। और इस छोटेसे परिवारकी माँ तो थीं ही। माँकी ही तरह वे सबकी सँभाल रखती थीं।

बापूजीको जैसे-जैसे ताक़त आती गई, वे अपना ज्यादा समय सरकारके साथ पत्र-व्यवहारमें लगाने लगे। बाको सिखानेका काम और दूसरे सब काम ढीले पड़ गये। बा नियमित रूपसे अपने आप अकेली बैठकर रामायण, गीताजी वग़ैरा पढ़तीं या मनुसे सुनतीं। मनुने उन्हें सारी वाल्मीकि-रामायण पढ़ सुनाई। बादमें पूरी भागवत सुना दी। बाको भागवत इतनी प्रिय थी, कि एक बार समाप्त करके उसे फिर सुनना शुरू किया था।

खेलका शौक़

इन सब कामोंके अलावा बा खेलोंमें भी काफ़ी रस लेने लगीं। सुबह-शाम जब हम लोग 'बैडमिण्टन' या 'टेनीकॉइट' खेलते, वे कुर्सी पर बैठकर देखा करतीं और उनमें .खूब दिलचस्पी लेतीं। अगर खेलमें कोई शैतानी या चालाकी करता, तो वे उसे डाँटतीं। रातमें मीराबहन और डॉ० गिल्डर वग़ैरा कैरम खेलते थे। बा कैरमका खेल देखने भी जातीं। धीरे-धीरे उन्होंने .खुद भी कैरम खेलना शुरू किया। उसमें उनको इतना रस आने लगा, कि रोज़ दो पहरको वे आधा घंटा कैरमका अभ्यास करने लगीं। मीराबहन कैरममें सबसे होशियार थीं। बा हमेशा उनके साथ रहतीं और इसलिए हमेशा जीत कर आतीं। इससे उन्हें बहुत .खुशी होती थी। अगर किसी दिन अकस्मात हार जातीं, तो उदास हो जातीं। आख़िर यह तय हुआ, कि कुछ भी क्यों न हो, आख़िरी खेलमें बाको जिताना ही चाहिये। बाको कैरमके खेलमें रानी ले लेनेका बहुत शौक़ था। रानी आ जाती, तो वे हारको हार न मानतीं। कैरममें बा इतनी लीन हो जाती थीं कि अपना दुःख, रोग सब भूल जातीं। आख़िरी बीमारीमें जब उनमें .खुद खेलनेकी ताक़त न रह गई, तब उनके पलंगके पास कैरम बोर्ड रखकर दूसरे लोग खेलते थे और यह उन्हें बहुत अच्छा लगता था। इस प्रकार मृत्युके दो-तीन दिन पहले तक वे खाट पर पड़ी-पड़ी कैरमका खेल देखतीं और उसमें रस लेती थीं। मीराबहन उनकी हमेशाकी साथिन थीं। इसलिए उनकी जीतको वे अपनी जीत और उनकी हारको अपनी हार मानती थीं। वे हम लोगोंसे आग्रह करती थीं कि हम लोगोंमेंसे कोई

मीराबहनके साथ खेले, ताकि डॉ० गिल्डर और उनके साथी अकेली मीराबहनको हरा न सकें। जब 'पिंगपाँग' शुरू हुआ, तो बाने उसे भी खेलना शुरू किया। लेकिन उससे साँस फूलती थी, इसलिए वह बन्द करवा दिया गया। उनका शरीर बूढ़ा हो गया था, लेकिन मन कई चीज़ोंके लिए बिलकुल ताज़ा था।

वात्सल्य

बच्चोंके साथ खेलना और उन्हें खिलाना-पिलाना बाको बहुत अच्छा लगता था। आश्रममें बाके पास दो-चार लड़के-बच्चे रहते ही थे। जेलमें यह सब कहाँसे आते? एक रोज़ बकरीने बच्चे दिये। मनु एक बच्चेको बाके पास उठा लाई। बा उसे गोदमें लेकर प्यार करने लगीं। उसको खिलाती रहीं। वे मानो यह भूल ही गईं कि वह बकरीका बच्चा था! वे उससे बातें करने लगीं: "भाई, तू हर रोज़ मेरे साथ खेलने आना।" कुछ दिनों तक मनु हर रोज़ उसे बाके पास लाती रही। एक दिन उसने बाके कपड़े बिगाड़ दिये। तबसे उसका आना बन्द हुआ।

बाका दुशाला

जब बाके साथ मैं बिड़ला हाऊसमें गिरफ़्तार हुई, मेरे पास कोई गरम कपड़ा न था। मैं तो चन्द रोज़के लिए बंबई आई थी। गर्मीके मौसिममें गरम कपड़े कौन साथ रखता है? बाने अपना सामान बाँधते समय एक दुशाला वापस भेजनेके खयालसे अलग निकालकर रख दिया था। उन्हें उसको अपने साथ लेनेकी ज़रूरत नहीं मालूम हुई। मुझे खयाल आया कि न जाने जेलमें कितने दिन लग जायँ। शायद कहीं गरम कपड़ेकी ज़रूरत पड़ ही जाय, इसलिए बासे पूछकर वह दुशाला मैंने साथमें रख लिया। जेलमें वह मेरे बहुतही काम आया। पूनामें खासी ठण्ड थी। सरकारका हुक्म था कि बाहरकी दुनियाके साथ हमारा कोई संपर्क न रहे। ऐसी दशामें वह दुशाला न होता, तो मुझे बहुत तकलीफ़ होती। बापूके उपवासके दिनोंमें माताजी (मेरी माँ) वहाँ आई थीं। बाने सोचा कि कहीं सुशीला गरम कपड़े मँगवाना भूल न जाय, इस

लिए उन्होंने .खुद ही माताजीसे कहा : " सुशीलाके पास शाल नहीं है। मेरा इस्तेमाल करती है। उसके लिए शाल वग़ैरा भेज दें।" माताजीने सोचा होगा, कि बाको अपने दुशालेकी ज़रूरत है, इसलिए वह उसी रोज़ अपनी शाल वहाँ मेरे लिए छोड़ गईं। दूसरे रोज़ बाने उसे देखा और पूछने लगीं : " यह किसकी है ?" मैंने कहा : "माताजी मेरे लिए छोड़ गई हैं।" बा इसे सह न सकीं। बोलीं : " माताजीका दुशाला उन्हें लौटा देना। तेरे पास तो मेरा है न ?" मैंने कहा : " बा, आपको उसकी ज़रूरत पड़ेगी न ?" इस पर बा बोलीं : " नहीं, नहीं, बहन, मुझे ज़रूरत नहीं है। मैंने माताजीसे कह दिया है, कि वे तेरे लिए दुशाला और गरम कपड़े भेज दें। जब वे आ जायँ, तो तू मेरा दुशाला भले मुझे लौटा देना," और उन्होंने आग्रहके साथ माताजीका दुशाला वापस करवाया। बाके दुशालेको मैंने संभालकर उनकी आलमारीमें रख दिया। बाकी मृत्युके बाद देवदासभाईने बाकी स्मृतिके रूपमें वह दुशाला मुझे साग्रह वापस दिया।

दीवालीके दूसरे दिन बहुतसे प्रान्तोंमें नया साल मनाया जाता है। इस रोज़ लोग एक दूसरेको भेंट वग़ैरा भी देते हैं। जेलमें भी पहली दीवालीके बाद नये सालके दिन श्रीमती नायडूने बाको एक साड़ी भेंट की। बाने उसे ब.खुशी पहना। बादमें बा मेरे लिए अपनी आलमारीसे एक साड़ी ढूँढ़ लाईं। राजकुमारी अमृतकुँवरने अपने हाथकते सूतकी एक साड़ी बुनवाकर बाको दी थी। उसकी किनार नीले रेशमकी थी। बा वही साड़ी लाईं और मुझसे कहने लगीं : " सुशीला, इसे तू पहनना। नई नहीं है बहन, एक दो बार मेरी पहनी हुई है। यहाँ मेरे पास नई साड़ी नहीं है।" मैंने कहा : " बा, नईकी तो आवश्यकता ही नहीं। आपके पहननेसे इसकी क़ीमत घटी नहीं, बढ़ी है। लेकिन आपके पास यहाँ साड़ियाँ कम हैं, इसलिए आप इसे रखिये। बाहर चलने पर दीजियेगा।" मगर बा बाहर न आईं। उनकी मृत्युके बाद देवदासभाईने मुझसे उनकी एक साड़ी ले लेनेको कहा। मैंने वही साड़ी उठा ली। बाकी वह साड़ी और उनका वह दुशाला ये दो आज मेरी क़ीमतीसे क़ीमती चीज़ें हैं।

खिलाने और खानेका शौक़

बा बहुत अच्छा खाना पकाना जानती थीं। लेकिन बापूजीने जबसे अस्वादव्रत दाखिल किया, बाकी यह कला निकम्मी-सी हो गई थी। तो भी कभी-कभी वे कुछ बना या बनवा लेती थीं। उन्हें अच्छा खाना खाने और खिलानेका शौक़ था। जेलमें वे डॉ० गिल्डर वगैराके नाश्तेके लिए अक्सर मनुसे कुछ-न-कुछ तैयार करवातीं। एक रोज़ उन्होंने 'पूरण पोली' बनवाई। कहने लगीं: "आज तो मैं भी खाऊँगी। बापूजीसे पूछो, वे खायेंगे क्या?" भारी चीज़के खानेसे बाको हृदयको धड़कनका दौरा हो आता था। मनु बापूजीसे पूछने गई, तो बापूने जवाब दिया: "बा न खाये, तो मैं खाऊँ।" बाको निश्चय करनेमें एक पलकी भी देर न लगी। बोलीं: "तो मैं नहीं खाऊँगी।" फिर पास बैठकर उन्होंने बापूजीके लिए और दूसरे सबके लिए 'पूरण पोली' बनवाई, सबको खिलाई, और ख़ुद चखी तक नहीं!

एक दिन बाको फिर हृदयकी धड़कनका हमला हुआ। बड़ी देर तक रहा। दूसरे दिन उन्होंने मनुसे कहा, कि वह उनके लिए घीमें बैंगन पका दे। मनु मुझसे पूछने आई। मैंने मना किया। कहा: "किसी तरह इसे टाल दो। अभी कल ही तो दौरा हुआ था। ऐसी चीज़ खाकर कहीं फिर बीमार न हो जायँ!" मनुने जाकर बासे कहा: "सुशीला बहनने बैंगनका शाक बनानेसे मना किया है।" बा चिढ़ गईं और बापूजीसे शिकायत की। बापू काममें थे। धीरजके साथ समझानेका समय न था। इसलिए उन्होंने कह दिया: "तुम्हें अपनी तबियतके खातिर इतना संयम पालना ही चाहिये।" लेकिन बा यों थोड़े ही समझनेवाली थीं। वे नाराज़ हो गईं। बोलीं: "बस, मुझे कुछ खाना ही नहीं है।" मैंने और मनुने बहुत मिन्नत की। कहा: "बा, आपकी तबियतके लिए ही इनकार करना पड़ा। नहीं तो आप जो कहें, सो बना दें।" लेकिन बा यों माननेवाली न थीं। "मुझे कुछ बनवाना ही नहीं है," उन्होंने कहा, और फिर तो क़रीब दस-पन्द्रह दिन तक वे सिर्फ़ दूध, फल और शहदका पानी लेती रहीं। मुझे और मनुको बहुत दुःख हुआ। बापूजीने हमें समझाया: "चिन्ता न करो।

इससे बाको कोई नुकसान नहीं होगा, फ़ायदा ही होगा।" सचमुच इस अरसेमें बाकी तबियत बहुत अच्छी रही। हम लोग बाको समझानेका प्रयत्न तो करते ही रहते थे। धीरे-धीरे बा बैंगनवाली बात भूल गईं और मामूली .खूराक लेने लगीं।

बाकी ज़िद

अन्तिम बीमारीमें, मृत्युसे दो रोज़ पहले, बाको खयाल आया कि उन्हें रेंडीका तेल लेना चाहिये। उस समय वे इतनी कमज़ोर हो गई थीं कि मुझे और डॉ० गिल्डरको लगा कि जुलाब देना ठीक न होगा। सुबह ही बाने मुझसे रेंडीका तेल माँगा। मैंने पहले तो समझानेकी कोशिश की। मगर जब बा नहीं मानीं, तो उन्हें टालकर चली गई। थोड़ी देरमें बापूजी आये। बाने उनसे भी रेंडीका तेल माँगा। बापूजीने भी उन्हें, समझाया कि ऐसी हालतमें रेंडीका तेल लेना ठीक नहीं, और कहा: "बीमारको कभी अपनी दवा .खुद न करनी चाहिये। और, मैं तो तुझसे कहता हूँ कि अब तू दवा छोड़ दे, सब भूल जा, मुझे भी भूल जा। राममें ही मनको पिरो दे।" मुझसे कह दिया: "बा समझ गई हैं। अब रेंडीका तेल नहीं माँगेगी।" मगर बा इतनी आसानीसे अपनी ज़िद छोड़नेवाली नहीं थीं। कुछ समय बाद डॉ० गिल्डर आये। बाने उनसे फिर रेंडीका तेल माँगा। उन्होंने भी इनकार किया। बाको बहुत दुःख हुआ। दुपहरमें जयसुखलालभाई मिलने आये, तो बा उनसे शिकायत करने लगीं: "ये लोग अपने क़ानून चलाते हैं। मुझे अरंडीका तेल भी नहीं देते।"

मैं सुबहके बादसे बाके पास गई नहीं थी। कहीं फिर अरंडीका तेल माँग बैठे तो? दो बजेके क़रीब गई। तब तर्जनी दिखा-दिखा कर बा मुझसे कहने लगीं: "तूने मुझे रेंडीका तेल नहीं दिया न? अब तो मैं कुछ भी नहीं लूँगी। तेरी कोई भी दवा नहीं लूँगी। मुझ पर भी अस्पतालका क़ानून चलाती है क्यों?" इस बालहठका क्या उपाय करना, यह एक समस्या ही थी। उनके दिलको दुखाना भी अखरता था। कहा: "बा, मुझे तो पता चला था, कि आप अब समझ गई हैं कि रेंडीका तेल नहीं लिया जा सकता।" "नहीं, नहीं, मुझे तो वह

लेना ही है," बाकी आवाज़में और उनके चेहरे पर एक तरहकी दीनता दीखती थी। मैंने सोचा, अन्तिम समयमें इन्हें क्यों आघात पहुँचाया जाय? और कहा: "आप आग्रह छोड़ ही न सकेंगी, तो मैं लाचार होकर आपको रेंडीका तेल दूँगी।" बाने कहा: "तो ला।" किसीने युक्ति सुझाई, कि 'लिक्विड पैराफीन'में थोड़ा रेंडीका तेल डालकर दे दो। ऐसा ही किया गया। बा उसे पीकर शान्त हो गईं।

'पीड़ पराई जाणे रे'

इस बारका जेल-जीवन अनोखा था। सरकार इतनी डर गई थी, कि मानो निःशस्त्र स्त्री-पुरुष उसे मिटा देंगे और कहीं जेलके अन्दर रहनेवालोंका बाहरवालोंके साथ किसी भी तरहका कोई संपर्क क़ायम हो गया, तो शायद आसमान ही फट पड़ेगा! अगस्त '४२ की 'पकड़-धकड़'के दिनोंमें सरकारका हुक्म था कि क़ैदियोंको न तो अख़बार दिये जायँ, न पत्र लिखनेकी इजाज़त दी जाय और न किसीसे मिलने दिया जाय। सरोजिनी देवी अपनी लड़कीको बीमार छोड़कर आई थीं। उन्होंने सरकारको लिखा: "मेरी लड़कीके समाचार तो मुझे भेजे जायँगे न?" बाको भी हर रोज़ अपने लड़कों-बच्चोंकी चिन्ता बनी रहती। मीराबहनके पास कपड़े कम थे। उन्होंने आई० जी० पी०से कहा: "मेरे कपड़े तो मँगवा देंगे न?" आख़िर कोई तीन हफ़्ते बाद आई० जी० पी० ने ख़बर दी कि घरेलू मामलोंके बारेमें सगे रिश्तेदारोंको पत्र लिखना हो, तो लिख सकते हैं। लिखकर पत्र सरकारके हवाले करने होंगे। वह उन्हें आगे भेज देगी। रिश्तेदार भी लिखना चाहें, तो पत्र सरकारके पते भेजें। सरकारको ठीक मालूम हुआ, तो क़ैदियोंको पत्र दिये जायँगे। कपड़े वग़ैरा मँगानेके बारेमें भी ऐसा ही नियम था। सरोजिनी देवीने अपने घर पत्र लिखा। मीराबहनने कुछ मित्रोंको पत्र लिखनेकी इजाज़त माँगी। उनके घरके लोग तो समुद्र पार थे। उन सबको छोड़कर वे यहाँ आई थीं। यहाँ मित्र ही उनके सगे-सम्बन्धी थे। बापूजीने लिखा: "मैंने तो आश्रम-जीवन अपनाया है। मेरे लिए घरका कौन और बाहरका कौन? महादेवभाईके लड़केको और पत्नीको न लिख सकूँ, तो और किसे लिखूँ? फिर, मेरे कोई घरेलू मामले तो

हैं ही नहीं। राजनैतिक विषयों पर न लिखूँ, लेकिन अगर दूसरे सार्वजनिक कार्योंके बारेमें भी न लिख सकूँ, तो पत्र लिखनेकी इजाज़त मेरे लिए कोई मतलब नहीं रखती।"

सरोजिनी देवीने और बाने मुझसे पूछा: "तूने माताजीको लिखा?" बापूजीने मुझसे कहा था: "मेरे पत्रका उत्तर आने दे, फिर देखेंगे कि तुझे क्या करना चाहिये?" बापूजीके पत्रके उत्तरमें सरकारने उन्हें रिश्तेदारोंके अलावा आश्रमवासियोंको पत्र लिखनेकी इजाज़त दे दी। लेकिन घरेलू बातोंके सिवा दूसरी बातोंके बारेमें लिखनेकी मनाही थी। इस पर बापूजीने किसीको भी पत्र न लिखनेका निश्चय किया और सरकारको अपना निश्चय लिख भेजा। इस बीच भाई (प्यारेलालजी) भी वहाँ आ गये थे। बापूने हमसे कहा: "मुझे लगता है, कि इन शर्तों पर हममेंसे किसीको भी पत्र नहीं लिखना चाहिये।" सरकारकी ओरसे हमें यह कहा गया था, कि जिन्हें पत्र लिखना चाहें, उनके नाम और पते दे दें। भाईने और मैंने जवाबमें लिख भेजा, कि "जब तक सरकार गांधीजीके लिए पत्र लिखना शक्य नहीं करती, तब तक हम कैसे लिख सकते हैं?" मुझसे कहा गया: "बापू तो महात्मा हैं, तुम्हें तो माँको पत्र लिखना ही चाहिये। इस तरह पत्र न लिखनेसे तुम कुछ महात्मा नहीं बन जाओगी।" मैंने जवाब दिया: "महात्मा बननेके लिए मैंने ऐसा नहीं किया।" मैंने बापूजीसे कहा: "बापूजी, मैंने तो आपकी सलाहसे सरकारको लिखा है। तब फिर मुझे इस तरहकी बातें क्यों सुनाई जाती हैं?" बापूजीने उत्तर दिया: "मैंने तो तुझे तेरा धर्म बताया है। बा, तू, प्यारेलाल, मुझमें समा जाते हो। मैं न लिखूँ, तो तुम कैसे लिख सकते हो? लेकिन वैसा करनेकी शक्ति न हो, या स्वतंत्र रीतिसे विचार करने पर तुझे लगे कि धर्म तो इससे उलटा ही है, तो तू सरकारको लिखा अपना पत्र लौटा ले और घर पत्र लिखना शुरू कर दे।" मुझे ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ी।

कुछ दिनों बाद बाने पत्र लिखना शुरू कर दिया। जेलमें किसीसे मिलना भी नहीं होता था, और पत्र भी न मिलें, तो बाको

बहुत कष्ट होता था। तिस पर वे .खुद पत्र न लिखें, तो उन्हें पत्र मिलें कैसे? इस विचारसे बाने पत्र लिखना शुरू किया। मुझे भी समझाने लगीं: "बापूजी तो साधु हैं। उन्होंने तो सब माया ममता छोड़ दी है। मगर हम लोगोंने तो ऐसा नहीं किया। तुझे भी माँको पत्र लिखना चाहिये।" बापूजीसे भी कहा: "सुशीलासे कहिये न, अपनी माँको पत्र लिखे।" बापू बोले: "मैंने उसे कब रोका है?" बा एक माँ थीं। वे समझती थीं, कि जिस तरह उनके बच्चोंके पत्र न आनेसे वे व्याकुल हो उठती थीं, उसी तरह माताजी भी हमारे पत्र न पाकर दुःखी होती होंगी।

जेलमें बापूजीका दूसरा जन्मदिन

२ अक्तूबर, १९४३को फिर बापूजीका जन्मदिन आया। बाकी तबियत नरम थी। तिस पर इस साल हमारी 'अम्माजान' नहीं थीं। सारी तैयारी हमीं लोगोंने की। बाने अपने हाथों क़ैदियोंको खाना बाँटा और भरसक काममें मदद की। बाके पास बापूजीके सूतकी एक साड़ी थी। सेवाग्राम छोड़ते समय बाने वह मनुको सौंपी थी। "लोग कहते हैं, आश्रम ज़ब्त हो जानेवाला है। यह साड़ी सँभाल कर रखना। कहीं यह खो न जाय! मेरे मरने पर मुझे इसी साड़ीमें जलाना।" उन्होंने कहा। जेलमें आकर बाने उस साड़ीकी तलाश करवाई। मगर कुछ पता न चला। जब मनु आग़ाख़ान महलमें पहुँची, तो उसने साड़ीका ठिकाना बताया और बाने साड़ी मँगवाई। अबकी बापूजीके जन्मदिन पर बाने वही साड़ी पहनी।

सहृदयता

अक्तूबरके अन्तमें मेरी भाभी शकुन्तलाके शस्त्रक्रिया द्वारा प्रसूति कराई गई और उन्हें लड़की हुई। नवंबरके शुरूमें एक हफ्तेकी बच्चीको छोड़कर वे चल बसीं। जेलके ढंग इतने निराले होते हैं, कि ऑपरेशनका और मरनेका तार एक ही साथ मिला। वह भी मृत्युके आठ-दस दिन बाद! इतनेमें पत्र भी आ गया। बीमारीमें वे सारा समय मुझे पुकारती रही थीं। माताजीने और मेरे भाईने सरकारसे मुझे पैरोल पर छोड़नेकी अर्ज़ी की थी। लेकिन चूंकि मैं गांधीजीके साथ थी, सरकारने मुझे पैरोल

पर बाहर भेजनेसे इनकार किया। बाका कोमल हृदय द्रवित हो उठा। बापूजीसे कहने लगीं: "सुशीलाको माँके पास जाना ही चाहिये।"

बापू हँस दिये: "सुशीला जायेगी, तो तेरी सेवा कौन करेगा?"

"मैं जानती हूँ, कि मुझे तकलीफ़ होगी; मगर मैं इतनी स्वार्थी नहीं हूँ, कि उसकी माँके दुःखको न समझ सकूँ।" फिर मुझसे बोलीं: "सुशीला, तुझे माताजीको और मोहनलालको पत्र लिखना चाहिये।"

मैंने कहा: "बा, मैं सरकारको एक बार लिख चुकी हूँ, कि पत्र नहीं लिखूँगी। अब मैं कैसे लिख सकती हूँ?"

बा बापूजीके पास पहुँचीं: "सुशीलाको समझाइये कि सरकारको लिख चुकी है तो क्या हुआ? उस समय थोड़े ही किसीको कल्पना थी, कि ऐसी आपत्ति आयेगी? भाई-बहन दोनोंको घर पत्र लिखना ही चाहिये।"

बापूजीने हमें बुलाकर कहा: "पत्र न लिखनेकी सलाह तो मेरी ही थी न? मुझे लगता है, कि विशेष परिस्थितिमें पत्र लिखनेमें हर्ज़ नहीं है। माताजीकी और मोहनलालकी शान्तिके लिए तुम्हें घर पत्र लिखना चाहिये।"

उसी रातको हम लोगोंने घर पत्र लिखे। मेरे भाईने जवाबमें लिखा, कि माताजी .खुद बीमार रहती हैं। ऐसी हालतमें शकुन्तलाकी आठ दिनकी बच्चीको कैसे संभालना, यह एक सवाल है। बापूजीने बासे कहा: "बेबीको यहाँ बुला लें। तू सँभाल लेगी न?" बाने कहा: "मैं क्या सँभालूँगी? मुझसे क्या होगा? मैं तो .खुद बीमार हूँ। लेकिन सरकार उसे आने दे, तो मुझसे जो बन पड़ेगा, करूँगी।" बापूजीने सरकारको पत्र लिखा: "घरमें उस बच्चीको संभालने लायक़ कोई नहीं है। या तो सुशीलाको पैरोल पर घर जाने दिया जाय, ताकि वह बच्चीके लिए मुनासिब बन्दोबस्त कर सके, या बच्चीको यहाँ भेज दिया जाय। सुशीला डॉक्टर है, लेकिन साथ ही हमारी लड़की भी है। कुछ दिनके लिए भी उसके जानेसे हमें तकलीफ़ तो होगी ही, इसलिए अगर बच्चीको ही यहाँ भेज दिया, तो ज्यादा अच्छा हो। ऐसा न हो, तो भले हमें तकलीफ़ सहनी पड़े, मगर सरकार सुशीलाको पैरोल पर

जाने दे।" सरकारका जवाब आया: "दोनों दरख्वास्तोंमेंसे एक भी मंजूर नहीं हो सकती।"

इसी समय मध्यप्रान्तकी सरकारने सब नज़रबन्द स्त्री-क़ैदियोंको छोड़ देनेका निश्चय किया। मनु मध्यप्रान्त सरकारकी क़ैदिन थी, सो हुक्म आया, कि मनु चाहे तो छूट सकती है। मनुने न छूटनेका निश्चय किया: "मैं तो बाकी सेवाके लिए आई हूँ। सेवा अधूरी छोड़कर कैसे जा सकती हूँ?" बा .खुश हुईं। देवदासभाईको पत्र लिखवाया। उसमें भी इसका ज़िक्र किया। देवदासभाईके यहाँ किसीने समझा, कि सरकारने सुशीलाको छोड़ा था, मगर उसने छूटनेसे इनकार किया। उनका पत्र आया: "सुशीलाको ऐसा नहीं करना चाहिये। उसकी माँको उसकी मददकी बहुत आवश्यकता है।" बाने सोचा, कि उन्हींके पत्रसे यह ग़लत-फ़हमी पैदा हुई है। उन्हें इसे दूर करना चाहिये। कहीं माताजी यह न सोच लें, कि उनकी तकलीफ़के दिनोंमें उनकी लड़की उनकी सेवा करनेसे इनकार करती है। यह ठीक न होगा। बा तुरन्त ही बापूजीके पास गईं। तार लिखवाया: "सुशीलाको नहीं, मनुको छोड़नेकी बात थी।" मैंने कहा: "बा, जाने दीजिये न। और अगर लिखना ही है, तो पत्र लिख डालिये।" मगर बा न मानीं। माँकी भावनाको वे अच्छी तरह समझती थीं। माँके प्रति बच्चोंके धर्मको भी वे ब.खूबी जानती थीं।

अन्तिम शय्या

चलते-फिरते बाकी साँस तो हमेशा फूल ही जाया करती थी। '४३ के नवम्बरमें उनकी यह शिकायत बहुत बढ़ गई। कैरम खेलते-खेलते भी उनका दम फूलने लगा। डॉ० गिल्डर कहने लगे, कि हमें कैरम बन्द कर देना चाहिये; लेकिन बाको कैरमसे इतनी दिलचस्पी हो गई थी, कि ऐसा करना ठीक न मालूम हुआ। एक दिन बा एनीमा लेकर निकलीं, तो उनका दिल बहुत घबराने लगा। मैंने जाकर देखा, तो उनके होंठ नीले-से हो रहे थे। नाड़ी बहुत तेज़ थी। मैंने दवा दी। थोड़ी देरमें तबियत कुछ सुधरी, लेकिन पूरी तरह सँभल नहीं पाई। दो-तीन रोज़ बुखार आया। तबसे जो खाट पकड़ी, तो वह छूटी ही

नहीं। घूमना-फिरना बन्द हो गया। उनके लिए पहियेदार कुर्सी मँगवाई गई। उसमें बैठाकर हम लोग बाको कुछ देर बरामदेमें घुमा लाते थे।

बीमारीमें बा एकादशी, संक्रान्ति, वग़ैराको न भूलीं। तिल संक्रान्तिके दिन कहने लगीं: "तिल मँगवाओ और उसके लड्डू बनाकर सब क़ैदियोंको दो।" बापूजीने टोका: "यह ठीक नहीं है। यह कौन हमारा घर है? ऐसे काम जेलमें नहीं, घर पर ही किये जा सकते हैं।" "लेकिन मुझे कौन अब घर जाना है?" बाने कहा। सो दूसरे दिन तिल मँगवाकर लड्डू बनाये गये। बाको पहियेदार कुर्सीमें बिठाकर बाहर ले गये। उन्होंने अपने हाथों सबको तिल दिये।

दिसंबरमें हालत और बिगड़ी। साँसके कारण लेटना कठिन हो गया। 'बेड रेस्ट' मँगवाया। कुछ दिनोंमें हालत और भी ज़्यादा खराब हुई। एक छोटी-सी मेज़ बनवाई, जिस पर सिर रखकर बा सो जाया करती थीं। अपने हाथोंमें सिर रखकर उस मेज़ पर पड़ी हुई बाका वह चित्र बहुत ही करुण था। बाकी मृत्युके बाद बापूजीने वह मेज़ अपने पास रखी। तबसे वह सब जगह बापूजीके साथ घूमती है। बापू खानेके वक़्त उसका इस्तेमाल करते हैं। बा भोजनके समय हमेशा बापूजीके पास आकर बैठा करती थीं। अब बाकी जगह उनकी मेज़ रहती है।

हालत और खराब हुई। 'ऑक्सीजन' मँगाकर रखा। पहले तो बा नलीको जल्दी ही नाकसे हटा लेती थीं, मगर बादमें तो ख़ुद माँगकर 'ऑक्सीजन' लेने लगीं। मैंने और डॉक्टर गिल्डरने सरकारको पत्र लिखा, कि डॅा० जीवराज मेहताको और डॉ० विधानचन्द्र रायको सलाहके लिए भेजा जाय। डॉ० जीवराज तो पूना ही में थे। एक दिन शामको चन्द मिनटोंके लिए वे लाये गये। उस वक़्त बापूजीको बाके पाससे हटा दिया गया था। सिर्फ़ डॉ० गिल्डरके साथ मैं हाज़िर थी। डॉ० विधानचन्द्र रायको नहीं भेजा गया। दुबारा याद दिलवायी, मगर कोई जवाब नहीं मिला।

जैसे-जैसे बीमारी बढ़ी, नर्सिंगका—तीमारदारीका—काम भी बढ़ा। दूसरी नर्सों के लिए लिखा गया, तो सरकारकी तरफ़से एक आया भेजी गई। वह एक हफ़्तेके अन्दर ही भाग गई। इसके आधार पर बाकी मृत्युके

बाद वहाँ धारासभामें यह कहा गया था कि बाकी सेवाके लिए तालीम-याफ़्ता नर्सें रखी गई थीं। फिरसे नर्सोंकी माँग की गई तब सरकारने बाहरसे किसी रिश्तेदारको बुला लेनेके लिए कहा। बाने कनु गांधी और प्रभावतीबहनके नाम दिये। लम्बे पत्र-व्यवहारके फलस्वरूप, पहली माँगके हफ़्तों बाद, सरकारने १२ जनवरीके दिन प्रभावतीबहनको भेजा और पहली फरवरीको कनुको आने दिया।

बापूजीने सरकारको लिखा था कि बाको और उनके साथ रहनेवाले दूसरोंको मुलाक़ातें मिलनी चाहियें। पहले तो उस पत्रका कोई असर न हुआ, मगर बाकी बीमारी बढ़ने पर सरकारने उनके दो लड़कोंको — रामदास गांधी और देवदास गांधीको — तार करके बुलाया। बा उन्हें मिलकर बहुत .खुश हुईं। हमें ऐसा लगा कि अगर बाको हर हफ़्ते कोई मिलने आ जाया करे, तो संभव है, उनको फ़ायदा हो। जेल उनकी बीमारीका एक बड़ा कारण था। वे अनेक बार जेल गई थीं। लेकिन इस बारकी यह अनिश्चित समयकी नज़रबन्दी उनको बहुत खटकती थी। फिर, दूसरे जेलोंमें उनके साथ बहुत-सी बहनें रहा करती थीं। लोग समय-समय पर मिलने भी आते थे। इससे वे .खुश रहती थीं। इस बार यह सब कुछ न था। तिस पर सबसे बड़ा बोझ अबकी उनके मन पर इस बातका था कि सरकारने इस बार बापूजीको और उनके साथ दूसरोंको बिना कारण पकड़ा है। बाके लड़कोंके लिए हर हफ़्ते वहाँ आना मुश्किल था। इसलिए दूसरे रिश्तेदारोंको भी आनेकी इजाज़त मिली। हुक्म आया कि मुलाक़ातके वक़्त बाके पास बापूजीके सिवा और कोई नहीं रह सकेगा। लेकिन बीमारीकी हालतमें नर्सके बिना काम कैसे चले? आख़िर एक नर्सको वहाँ हाज़िर रहनेकी इजाज़त मिली। मगर जैसे-जैसे बीमारी आगे बढ़ी, एक नर्ससे भी काम चलाना कठिन हो गया। बापूजीने फिर जेलके अफ़सरोंसे शिकायत की। फलतः हुक्म आया कि जेल सुपरिण्टेण्डेण्टको जितनी नर्सोंकी ज़रूरत मालूम हो, उतनीको रहने दें।

दिसम्बरमें ही बाने किसी वैद्यको बुलानेकी माँग की थी और नैसर्गिक उपचारक डॉ० दिनशा मेहताको भी बुलवाया था। मगर सरकारको एक दफ़ा कहनेसे काम थोड़े ही हो सकता है? बापूजीको फिर लम्बा

पत्र-व्यवहार करना पड़ा और सरकारी अफ़सरोंसे यहाँ तक कहना पड़ा, कि "अपनी पत्नीके इलाजके लिए मैं आवश्यक प्रबन्ध न कर सकूँ, तो कृपा कर आप लोग मुझे किसी दूसरे जेलमें ले जायँ, जिससे मुझे अपनी पत्नीकी वेदनाका मूक साक्षी न बनना पड़े।"

आखिर ५ फरवरी, १९४४को सरकारने डॉ० दिनशा मेहताको आने दिया। ज़बानी हुक्म सुनाया गया कि जब वे आवें, तब दो डॉक्टरोंके सिवा बाके पास कोई न रहे। बापूको बहुत दुःख हुआ। जिस समय यह हुक्म सुनाया गया, बापू स्नानको जा रहे थे। आम तौर पर मालिश और स्नानके समय बापू आराम करते थे, सो भी जाते थे। मगर उस दिन उस हुक्मको सुननेके बाद आराम करना असंभव हो गया। स्नानके टबमें पड़े-पड़े उन्होंने प्यारेलालजीसे सरकारके नाम पत्र लिखवाया। लिखवाते समय उनके हाथ और होंठ काँप रहे थे: "मृत्युशय्या पर पड़ी स्त्रीके बारेमें इस तरहकी शर्तें लगाना शोभास्पद न था। उसको पाखाने या पेशाबकी हाजत हो, तो क्या महज़ इसलिए कि डॉ० दिनशा मेहता वहाँ हैं, नर्सें उनके पास नहीं जा सकेंगी? मुझे डॉक्टरसे पूछना हो, कि मेरी पत्नीकी तबियत कैसी है, तो मैं किसी दूसरेके मारफ़त पुछवाऊँ? यह कैसी बात है? इस तरह बार-बार मुझे दुःखी करनेके बदले सरकार मुझको एकबारगी यहाँसे हटा दे तो अच्छा हो। फिर न मेरी पत्नी मुझसे कोई आशा रखेगी, और न मुझे ही उसकी वेदनाका मूक साक्षी बनना पड़ेगा?" दोपहरको जवाब आया: "हुक्मको समझनेमें आपकी कुछ ग़लती हुई है। नर्सें रह सकती हैं, और आपको भी डॉक्टरसे कुछ पूछना हो, तो पूछ सकते हैं।" इसीलिए बापूजीके उस पत्रको आगे भेजनेकी आवश्यकता नहीं रही।

डॉ० दिनशाको दिनमें एक ही बार आनेकी इजाज़त मिली थी। बा चाहती थीं, कि वे एकसे अधिक बार आवें। इसके लिए बापूजीको फिर पत्र-व्यवहार करना पड़ा। आखिर इजाज़त मिल गई।

इधर जनवरीसे ही बाने फिर वैद्यका इलाज करवानेकी माँगको ज़ोरोंसे दोहराना शुरू किया था। बापूजी, कर्नल भण्डारी, कर्नल शाह, हमारे जेलके सुपरिण्टेण्डेण्ट या जो भी कोई आता, उससे वे इसीकी चर्चा करतीं।

फरवरीके पहले हफ़्तेमें बाकी स्थिति और अधिक चिन्ता-जनक हो गई। बापूजीने भी फिरसे जेलके अफ़सरोंको आग्रहके साथ कहा कि वे वैद्यको बुला दें। वे लोग कहने लगे: "हमारे हाथमें नहीं है। बंबई सरकारसे फोन पर पूछते हैं।" बंबई सरकारने उत्तर दिया: "बात हमारे हाथकी भी नहीं है। हम दिल्ली सरकारको फोन करते हैं।" इस तरह दिन बीतने लगे। आखिर ११ फरवरीको बापूजीने इस बारेमें सरकारको एक कड़ा पत्र लिखा, लेकिन उस पत्रके डाकमें जानेसे पहले खबर मिल गई कि दिल्ली सरकारने डॉक्टर, हक़ीम, जिस किसीको भी बुलाना हो, उसे बुलानेकी इजाज़त देने न देनेकी बात जेलके अफ़सरों पर छोड़ दी है। बापूजीने तुरत पूनाके किसी वैद्यको बुलानेके लिए कहा। शाम तक जोशी नामके एक वैद्य आ गये। वे कुछ दवा दे गये। उनकी सूचना थी कि उनकी दवाके साथ दूसरी कोई दवा न दी जाय।

दूसरे दिन लाहौरके वैद्यराज पंडित शिवशर्माजी आ पहुँचे, और उनकी दवा शुरू हुई। रात बाको कुछ बेचैनी-सी होने लगी। वैद्यजीकी दवाके साथ दूसरी कोई चीज़ दी नहीं जा सकती थी, इसलिए सुपरिण्टेण्डेण्टसे कहा गया कि वे शर्माजीको खबर कर दें। उन्होंने फोन पर वैद्यजीको खबर दी। लेकिन बिना देखे वैद्यजी बेचारे क्या सलाह देते? उन्होंने मालिश वग़ैरा करनेको कहा। सो सब हम कर ही रहे थे। लेकिन उससे कोई फ़ायदा न था। बा क़रीब-क़रीब सारी रात जागीं।

जिन दिनों बीमारी कुछ कम थी, तब नींद न आनेकी हालतमें बा मेरे या मनुके पास आकर सो जाया करती थीं। उस परसे वे उस रात जो भी कोई उनके पास जाता, उससे कहतीं: "मुझे अपने कमरेमें ले चलो। मुझे मेरी खाट पर ले चलो।" उन्होंने मुझसे, भाईसे, बापूजीसे, डॉ॰ गिल्डरसे यानी एक-एक करके सबसे यही बात कही। लेकिन सर्दीमें बाको उनकी खटियासे हटाना किसीको मुनासिब न मालूम हुआ। आखिर थककर सुबह पाँच बजे क़रीब वे सो गईं।

आयुर्वेदकी दवासे बाको चिढ़ हो गई। वे डॉ॰ गिल्डरसे कहने लगीं: "अब मुझे वैद्यकी दवा न देना। अपनी ही दवा देना।" हम सबने समझाया: "बा, वैद्यजीकी दवा शुरू की है, तो दो-चार

दिन उसकी आज़माइश तो करनी चाहिये न?" वैद्यजीने भी फोन पर बासे दवा लेनेकी प्रार्थना की। आख़िर बा मान गईं। उन्होंने वैद्यजीकी दवा चालू रक्खी।

दूसरे दिन बाकी तबियत इतनी अच्छी मालूम हुई, कि शामको जब बापूजी घूमने गये, बा अपनी पहियेदार कुर्सीमें बैठकर सारे बरामदेमें घूमीं, और फिर 'बालकृष्ण' के पास पहुँचीं। बापूजीने नीचेसे देखा, तो ऊपर आ गये और दरवाज़े पर खड़े होकर देखने लगे। बा ध्यानमें लीन होकर प्रार्थना कर रही थीं। थोड़ी देरमें आँख खोली, तो बापूजीको देखकर शरमा गईं। हँसते-हँसते बोलीं: "आप घूमने जाइये। यहाँ क्या काम है?" बापू हँस दिये और फिर घूमने चले गये। हम सब बहुत .खुश हुए। आशाकी किरणें दिखाई देने लगीं। हममेंसे हरएकने महसूस किया कि एक दिनकी दवासे इतना फ़ायदा नज़र आता है, यह बहुत .खुशीकी बात है। आयुर्वेदका यह एक चमत्कार है। लेकिन रातमें फिर बेचैनी शुरू हो गई। एक बजे तक नींद नहीं आई। इसलिए फिर सुपरिण्टेण्डेण्ट साहबको जगाया। उन्होंने फोन पर वैद्यजीसे बात की। वैद्यजी आये। एक गोली दे गये और फिर बाको नींद आ गई।

बाकी हालत इतनी नाज़ुक थी कि जिनका इलाज चल रहा हो, उन्हें रात उनके पास ही रहना चाहिये था। मगर सरकार वैद्यजीको रात महलमें रहनेकी इजाज़त नहीं दे रही थी। आख़िर वैद्यजीने कहा: "मैं बाहर दरवाज़े पर मोटरमें सो रहूँगा, ताकि जब ज़रूरत पड़े, तुरत आ सकूँ।" सब पर उनकी इस कर्त्तव्यपरायणताकी गहरी छाप पड़ी। तीन दिन तक वैद्य शिवशर्माजी आग़ाखान महलके दरवाज़ेके बाहर मोटरमें सोये। तो भी जब-जब उन्हें बुलानेकी ज़रूरत पड़ती, पहले एक सिपाहीको जगाना पड़ता, सिपाही जमादारको जगाता, जमादार सुपरिण्टेण्डेण्ट साहबसे चाबी लेकर बाहर वैद्यजीको बुलाने जाता और फिर सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब वैद्यजीको लेकर भीतर आते। जब तक वैद्यजी अन्दर बाके पास रहते, तब तक सुपरिण्टेण्डेण्ट उनके साथ रहते। बादमें उन्हें बाहर पहुँचाकर .खुद सोने जाते। यह सब

बापूजीको बहुत अखरता था। १६ फरवरीके दिन मोटरमें वैद्यजीकी तीसरी रात थी। उस रात क़रीब १२॥ बजे उन्हें बुलाना पड़ा। १॥ बजेके क़रीब वे वापस मोटरमें सोने गये। बापू अपनी खटियामें पड़े-पड़े यह सब देख रहे थे। रात दो बजे उठकर उन्होंने अधिकारियोंको पत्र लिखा: "वैद्यजीको महलमें सोनेकी इजाज़त मिलनी ही चाहिये। उन्हें यह बिलकुल पसन्द नहीं, कि इस तरह हर रोज़ इतने आदमियोंको जागना पड़े। अगर कल रात तक, यानी १७ तारीखकी रात तक, इजाज़त नहीं मिली, तो वे वैद्यजीकी दवा बन्द कर देंगे। डॉक्टरोंकी तो बन्द हो ही चुकी थी, चुनाँचे बीमार बिना इलाजके पड़ा रहेगा।"

पत्रका असर हुआ। १७के दिन वैद्यजीको महलमें सोनेकी इजाज़त मिल गई। वैद्यजीने रातमें दो तीन-बार बाको देखा। नींदकी दवा दी, और रात और दिनोंसे अच्छी बीती।

१८ फरवरीको फिर बेचैनी शुरू हुई। वैद्यजी दिनभर शहरसे नई-नई दवाइयाँ ढूँढ़कर लाते और देते रहे, मगर बा बेचैनीकी वजहसे सारी रात सो नहीं सकीं। वैद्यजीकी दवासे जुलाब तो हुए, मगर पेशाब नहीं उतरा। रात थोड़ा बुखार भी था।

सुबह प्रार्थनाके बाद वैद्यजीने बापूजीसे कहा: "मुझसे जो हो सकता था, मैं सब कर चुका हूँ। मगर बाकी हालत सुधर नहीं रही; बिगड़ती ही जाती है। ऐसी हालतमें मैं समझता हूँ कि डॉक्टरोंको अपना इलाज आज़मानेका मौक़ा मिलना चाहिये।" अगले दिन बापूजीने मुझसे कहा था: "कल तक वैद्यजीकी दवासे फ़ायदा न हुआ, तो शायद वे चले जायँगे। उसके बाद केस तुम्हारे हाथमें आये, तो मेरी वृत्ति तो यह है कि दवा बन्द कर दी जाये। मगर यह तभी हो सकता है, कि जब तुम लोग मेरी बातको दिलसे समझो और स्वीकार करो।" लेकिन हम लोगोंके लिए यह समझना ज़रा कठिन था। सुबह डॉ० गिल्डरने और मैंने बाकी जाँच की और इलाज तय किया। दोपहरमें पेशाब लानेके लिए ½ सी० सी० 'सॅलिर्गेन'का इंजेक्शन दिया। इस आज़माइशी ख़ुराकसे भी शामको बाके क़रीब ५ औंस पेशाब उतरा।

हम सब .खुश हो गये । तीन-चार दिनके बाद इतना पेशाब हुआ था। वैद्यजी कहने लगे, कि इंजेक्शनोंसे पेशाब आता रहे, तो एक दफ़ा फिर मुझे मेरी दवा आज़माने दीजिये ।

मगर दूसरे दिन १९ फरवरीको 'सॅलिगॅन'की पूरी मात्राका इंजेक्शन दे देने पर भी कोई ख़ास असर नहीं हुआ । फेफड़ोंमें निमोनियाके चिह्न थे । उससे लहूका दबाव और भी गिर गया था । ऐसी हालतमें बेचारे गुर्दे क्या काम करते? निमोनियाके लिए अधिकारियोंसे पेनिसिलिन मँगवानेको कहा गया ।

१७ फरवरीको दोपहरके वक़्त हरिलालभाई आये थे । बा उन्हें देखकर बहुत .खुश हुईं । बादमें पता चला, कि उनको सिर्फ़ एक ही बार आनेकी इजाज़त मिली थी । यह सुनकर बा नाराज़ हो गईं । बोलीं : "यह क्या बात है? देवदासको तो हर रोज़ आने देते हैं, और हरिलाल एक ही बार आ सकता है? भंडारी मेरे सामने आयें, तो मैं उनसे कहूँ, कि दो भाइयोंमें इतना फ़र्क़ क्यों करते हो? यह बेचारा ग़रीब है, तो क्या अपनी माँसे भी नहीं मिल सकता?"

बापूजीने उन्हें शान्त किया और कहा : "मैं इसके लिए इजाज़त मँगवा लूँगा" दूसरे दिन सरकारकी ओरसे तो इजाज़त आ गई, मगर हरिलालभाईका कहीं पता न चला। बा हर रोज़ पूछतीं और हर रोज़ जवाब मिलता कि उनका कहीं पता नहीं है । जब बाकी हालत गंभीर हो गई, तो सरकारने उनके दोनों लड़कोंको ख़बर भेजी । हमें सँदेशा मिला, कि देवदास और रामदासको ख़बर दे दी गई है, और हरिलालको सरकार ढूँढ़ रही है ।

राम-नाम ही दवा है

१९ को बा रात भर 'ऑक्सीज़न'की नली नाकमें डालकर पड़ी रहीं । अच्छी तरह सोईं । लेकिन २० फ़रवरीको सुबह ५ बजेसे बेचैनी शुरू हो गई । मुँहसे बार-बारसे 'राम, हे राम' पुकारती थीं। सॅलिगॅनका पेशाब पर कोई असर न होनेसे वातावरणमें बड़ी निराशा छा गई थी । तिस पर बाकी बेचैनी सबको बेचैन बना रही थी । बापूजी आकर बाकी खाट पर बैठे । उनके कन्धे पर सिर रखकर बा कुछ शान्त हुईं ।

उसी तरह बैठे-बैठे बापूजीने सुबहकी प्रार्थना की। बारी-बारीसे सब लोग बाके पास बैठ कर रामधुन और भजन गाते थे। जब कोई गानेवाला न होता, तो ग्रामोफोन पर रेकार्ड बजाने लगते थे। 'श्रीराम भजो दुःखमें, सुखमें', यह भजन बाको बहुत प्रिय था। इसे सुनते समय वे क्षणभरके लिए अपनी वेदना भूल जाती थीं। ९। बजे 'क्लोराल' और 'ब्रोमाइड'की एक .खूराक दी। उसके बाद बा क़रीब डेढ़ घंटा सोईं। उठीं, तो तबियत अच्छी थी। बैठकर अच्छी तरह दतौन किया, मसूढ़ोंको ज़ोरसे घिसा, नाकमें पानी चढ़ाया। सबको आश्चर्य होने लगा, कि बामें इतनी ताक़त कहाँसे आ गई? फिर वे चाय पीकर आरामसे लेट गईं। दवा लेनेसे इनकार कर दिया। दिनमें एक बजे फिर बेचैनी शुरू हुई। 'राम, हे राम' पुकारने लगीं। उनकी आवाज़ इतनी करुण थी, कि सुनी नहीं जाती थी। जब वे बोलती थीं, तो ऐसा लगता था, मानो गले पर छुरी चलते समय बकरी मिमिया रही हो! गीतापाठ, रामधुन, भजन वग़ैराका सिलसिला तो ज़ारी ही था। इसके कारण बीच-बीचमें कुछ देरके लिए बा थोड़ी शान्त हो जाती थीं।

बापूजी दिनमें भी काफ़ी देर तक बाकी खाट पर बैठने लगे। उनके बैठनेसे बाको थोड़ी शान्ति मिलती थी। बापूजीने हमसे कहा: "अब बाकी दवा सिर्फ़ राम-नाम ही है। दूसरे सब इलाज छोड़ दो। मेरी वृत्ति तो यह है कि शहद और पानीके सिवा दूसरी कोई .खूराक भी मत दो। बा .खुद माँगे, तो बात दूसरी है। मैं दवामें नहीं मानता। अपने लड़कोंकी सख्त बीमारियोंमें भी मैंने उन्हें दवा नहीं दी। लेकिन बाके लिए मैंने वह नियम नहीं रक्खा। आज तो .खुद बाको भी दवासे अरुचि हो गई है। रामनामके सिवा उसे चैन नहीं पड़ता। यह दृश्य करुण है। किन्तु मुझे बहुत प्रिय है। रामके सिवा मैंने आज उसके मुँहसे कुछ सुना ही नहीं। ऐसे समय तो मैं दवाको छोड़ ही दूँ। ईश्वरको जिलाना हो, जिलाये; ले जाना हो, ले जाये। उसे बचाना होगा, तो वह यों ही बचा लेगा, नहीं तो मैं बाको जाने दूँगा।"

शामको बाने एनीमा माँगा। बापूजीने टालना चाहा: "अब राम-नाम ही तेरी दवा है।" मगर बा नहीं मानीं। मैंने बापूजीसे कहा:

"माँगती हैं, तो ले लेने दीजिये न। अन्त-अन्तमें जितना संतोष दे सकें, दें।" बापू मान गये। एनीमा लेनेसे मल ख़ूब निकला। उसके बाद बा दो घंटे आरामसे सोईं। उनकी हालत इतनी अच्छी लगने लगी कि मैंने बापूजीसे कहा: "बापूजी, दवा देनेकी इजाज़त दीजिये न? जब तक प्राण हैं, प्रयत्न क्यों न किया जाय?" लेकिन बापू मेरी क्यों सुनने लगे?

सबकी माँ

रातको डॉ० दिनशा मेहताको भी वहीं सोनेकी इजाज़त मिली। जबसे स्थिति गंभीर हुई थी, मैं आधीसे भी ज़्यादा रात तक बाके पास बैठती थी। कनु, प्रभावती, मनु, भाई, सभी बारी-बारीसे बैठते थे। हमेशा एक साथ दो आदमियोंके बैठनेकी ज़रूरत रहती थी। जब मैं न होती, तब डॉ० गिल्डर अपने बिस्तरसे उठकर बीच-बीचमें बाको देख जाते थे। उनकी तबियत बहुत अच्छी नहीं थी, इसलिए उनको ज़्यादा तकलीफ़ देना ठीक नहीं मालूम होता था। लेकिन डॉक्टर दिनशाको जगानेमें संकोच रखनेकी ज़रूरत न थी। इसलिए उनको बाके पास बैठाकर मैं रात दो बजे सोने चली गई। सुबह उठने पर पता चला कि चार बजेके क़रीब बाकी नाड़ी बहुत ख़राब हो गई थी, और डॉ० गिल्डरको जगाया गया था। बादमें जब मैं बाके पास पहुँची, तो देखा कि डॉ० गिल्डर बाके पास कुर्सी लगाये बैठे थे। उस समय बाकी नाड़ी ठीक थी। बा रेंडीका तेल माँग रही थीं, जिसका ज़िक्र पहले आ चुका है।* डॉक्टर साहबने कहा: "बा, रेंडीके तेलसे कमज़ोरी बढ़ेगी। वह नहीं लेना चाहिये।" बाने कहा: "बढ़ने दीजिये न! मुझे तो अब मसानमें ही जाना है न?"

डॉक्टर साहबने कहा: "बा, आप ऐसा क्यों कहती हैं? अभी तो आपके लड़के आनेवाले हैं; आज देवदास आयेंगे, रामदास आयेंगे। इन सबसे मिलना है न?"

बा मुसकराने लगीं। फिर गंभीर होकर कहने लगीं: "उन्हें क्यों बुलाते हैं? आप सब मेरे लड़के ही हैं न? मर जाऊँ, तो जला देना।

---

* देखिये पृष्ठ १७०

रामदासको तो आनेसे रोक ही देना। किराया बहुत लगता है और गाड़ियोंमें भीड़ बेहद रहती है।"

बा हर रोज़ हरिलालभाईके बारेमें पूछा करतीं। सब उनकी तलाशमें भी रहते थे, मगर वे कहीं मिलते न थे। तारीख़ बीसको स्वामी आनन्दने उन्हें ढूँढ़ निकाला। हरिलालभाईने फोन पर सुपरिण्टेण्डेण्ट साहबसे कहा कि वे दिनमें आना चाहते थे मगर सो गये थे, इसलिए आ न सके। हम लोग समझ गये कि इस तरह 'सो' जानेका मतलब क्या था। बाको .ग़ुस्सा आ गया। बापूने उन्हें समझाकर शान्त किया। २१ फरवरीको दुपहरमें हरिलालभाई आये। उनकी हालत देखकर बा बहुत दुःखी हुईं, और मारे दुःखके अपना सिर पीटने लगीं। हरिलाल-भाईको उनके सामनेसे हटा दिया गया।

इतने श्रमसे बाकी छातीमें दर्द होने लगा था। सुबह बाने रेंडीका तेल लेनेका आग्रह किया था। उस परसे मैंने बापूजीसे पूछा: "क्या ऐसी हालतमें आप बाको दूसरी दवा देनेकी इजाज़त न देंगे?" बापूजीने कहा: "बाने रेंडीका तेल आग्रहपूर्वक लिया है, इसलिए मैं विरोध कर ही नहीं सकता। जो मुनासिब समझो, दो।" इस पर मैंने बाको हृदयके रोगकी दवा दी और रामधुन शुरू की। बा शान्त होकर सुनने लगीं।

बापूजीकी पत्नी-भक्ति

बापू रातमें कई बार बाके पास आते थे। बा उन्हें ज़्यादा देर तक बैठने नहीं देती थीं। दिनमें भी बापू काफ़ी देर तक बाकी खाट पर बैठते थे। बा खाटका सहारा लेनेके बदले हम लोगोंमेंसे किसीका सहारा लेकर बैठना ज़्यादा पसंद करती थीं। जब बापूजी उनके पास बैठते, तो उनका सहारा लेतीं। डॉ० गिल्डरने मुझसे कहा: "ज़रा ध्यान रखना चाहिये। निमोनियाके जन्तु काफ़ी ज़हरीले होते हैं। बापूका मुँह बाके मुँहके बहुत नज़दीक रहता है। यह अच्छा नहीं है। उन्हें बाके पास ज़रा कम ही बैठने देना अच्छा होगा।" लेकिन इस बारेमें बापूजीसे कुछ कहना आसान न था।

कमज़ोरी बढ़ जानेके कारण बा जब-जब भी थूकती थीं, तब-तब पास बैठी नर्सको उनका मुँह पोंछना पड़ता था। हम लोग कपड़ेके

टुकड़ेसे मुँह पोंछकर उसे फेंक देते थे। बाकी मृत्युसे तीन-चार दिन पहले बापूजी रातको उनके पास आये। उस समय उन्होंने हमसे कुछ छोटे-छोटे नये रूमाल बना लेनेको कहा। दूसरे दिन मैंने और मनुने चार रूमाल बनाये। बापूजी जब रातमें या दिनमें बाके पाससे गुज़रते, तो मैला रूमाल उठाकर धोनेको ले जाते। पहले दिन मैंने कहा: "बापूजी आप रहने दें। हम धो लेंगे।" बापूने जवाब दिया: "मुझे करने दो। मुझे यह सब करना अच्छा लगता है।" उस दिनके बाद फिर मैंने कभी बापूजीसे बाकी सेवाका काम नहीं माँगा।

इसी तरह एक दिन दुपहरको खानेके बाद बापूजी बाके पास जाकर बैठ गये। बा सोनेकी तैयारीमें थीं। अगर वे बापूजीका सहारा लेकर सो जाती हैं, तो फिर जब तक जागें नहीं, बापू उठ नहीं सकते थे। बापूजीका अपना भी वही सोनेका समय था। वे काफ़ी थके हुए भी थे। मैंने कहा: "बापूजी, अभी आप मुझे बाके पास बैठने दें। सो लेनेके बाद आप आ जाइये।" बापूजी चले तो गये। मगर अपनी गद्दी पर जाकर कहने लगे: "मुझे थोड़ी देर और बैठने दिया होता, तो क्या बिगड़ता?" मैंने बताया कि क्यों मुझे उनको उस समय बाके पाससे उठनेकी सूचना करनी पड़ी थी। लेकिन बात ख़ुद मुझहीको अखरी। भले कुछ दिनके लिए बापूका आराम कम हो, लेकिन जिस कामसे उनके मनको शान्ति मिलती है, उसमें मैं बाधा क्यों डालूँ? बाका यह अन्तिम समय था। ऐसे समय उन्हें चाहे निमोनिया हो या और कुछ, किसकी हिम्मत चल सकती थी, कि वह बापूसे कहे कि वे बाके नज़दीक कम बैठा करें? इस पर डॉ० गिल्डर बोले: "बापू पास चाहे बैठें मगर मुँह बाके मुँहके पास न रखें।" लेकिन उस वक़्त तो उनसे इतना कहनेकी भी किसीकी हिम्मत न थी। फिर बापू तो छूत वग़ैराको बहुत मानते भी नहीं। इसलिए चुप रहना ही मुनासिब समझा। डॉ० साहब भी समझ गये। बोले: "हाँ, ठीक है। एक साथ ६२ वर्ष बितानेके बाद आज जुदाईकी घड़ीको सामने देखते हुए बापू किस तरह बासे दूर रह सकते हैं, और कैसे हम इस विषयमें उनसे कुछ कह सकते हैं?" कहते-कहते उनकी आँखें सजल हो आईं।

अपनी अन्तिम बीमारीके शुरू होनेसे कई दिन पहले बाको पाखाने और पेशाबमें जलन होती थी। उन्होंने बापूजीसे कहा: "मैं तो पानीका इलाज करूँगी।" बापूने मंजूर किया और दूसरे दिनसे उन्हें ठण्डा और गरम 'टब-बाथ' देने लगे। इसमें बापूजीका क़रीब एक घंटा चला जाता था। काफ़ी थक भी जाते थे। एक दिन बाने कहा: "आप जाइये। सुशीला मुझे बाथ दे देगी। आपको बहुत काम है।" बापू बोले: "तुम इसकी फिकर न करो।" और वे बाथ देते रहे। एक दिन मैंने भी कहा: "बापूजी, आपको वक़्तकी इतनी ज़्यादा तंगी रहती है, और मैं तो आप जब कहें तभी बाकी सेवा करनेके लिए तैयार ही रहती हूँ। इसलिए आप जब चाहें तभी बाथ वग़ैरा देनेका एक घंटा बचा सकते हैं।" बापूजीने इस तरह घंटा बचानेसे इनकार किया। बोले: "तू बाकी सेवा करनेको तैयार है, सो तो मैं जानता हूँ। लेकिन उत्तरावस्थामें ईश्वरने मुझे इस तरह बाकी सेवा करनेका यह जो अवसर दिया है, उसे मैं अमूल्य मानता हूँ। जब तक बा मेरी सेवा लेगी, मैं ख़ुशी-ख़ुशी उसके लिए एक घंटा निकालता रहूँगा।"

बाकी मृत्युके दो तीन दिन पहले ही बापू इस बातकी चर्चा कर रहे थे, कि बा किसकी गोदमें आखिरी साँस लेंगी! उन्होंने कहा था: "किस भाग्यशालीकी सेवा इतनी एकनिष्ठ होगी, कि बा उसकी गोदमें देह छोड़े? इसे तो एक भगवान् ही जानता है।" और यह भाग्य उनके सिवा दूसरे किसका हो सकता था!

अंतिम रात

शामको ६॥ बजेके क़रीब देवदासभाई, मनु (हरिलालभाईकी लड़की) और संतोकबहन आ पहुँचीं। बा उन्हें मिलकर रो पड़ीं। हरिलालभाई पर उनका रोष अभी तक बना हुआ था। देवदासभाईको देखकर बोलीं: "अब तू सबको सँभालना। बापूजी तो साधु हैं। उन्हें तो सारी दुनियाकी चिन्ता है। हरिलालको तो तू जानता ही है। इसलिए अब परिवार तुझीको सँभालना है।"

मनुने बाको भजन सुनाये। बाकी इच्छा थी कि संतोकबहन और मनु रात उनके पास रहें। मगर सरकारने इजाज़त नहीं दी। देवदासभाईको

रहनेकी इजाज़त थी। वे इन लोगोंको छोड़ने बाहर गये। बा मेरी गोदमें सो गईं। मगर आजकी नींदसे मुझे खुशी नहीं थी। पेशाब न उतरनेके कारण अब नशा-सा रहने लगा था। यह नींद ताज़गी लानेवाली नींद न थी। रात साढ़े ग्यारह बजे मैं उठी। प्रभावतीबहन बाके पास आकर बैठीं। बाने उनसे कहा: "चलो, हम दोनों सो जायँ।" इतनेमें उन्हें ज़ोरकी खाँसी आई। मैं दवाकी ख़ूराक लेकर बाके पास पहुँची। बाने दवा तो नहीं ली, लेकिन मुझे खाटके पाससे बदबू आई। बत्ती जलाकर देखा, तो खाटमें दस्त हो गया था। बाको इसका पता भी न था। मुझे लगा, यह जानेकी तैयारी है। खाटके कपड़े बदले और बाको लिटाया। इतनेमें देवदासभाई आ गये। वे खड़े पैरों बाकी चाकरीमें लग गये। मैं बत्तीके पास ज़मीन पर बैठकर बाके स्वास्थ्यकी डायरी लिखने लगी। देवदासभाई धीरे-धीरे बाका सिर दबा रहे थे। उन्होंने समझा, कि बा सो गई हैं, सो दबाना बन्द कर दिया। बाने मुझे पुकारा: "सुशीला, तू भी थक गई क्या?" मैंने कहा: "बा, मैं क्यों थकने लगी?" और मैंने सिर दबाना शुरू कर दिया। बाके सिरमें दर्द हो रहा था। चक्कर आ रहे थे। विचारोंमें कुछ अस्पष्टता आ गई थी। 'यूरीमिया'के चिह्न प्रकट होने लगे थे। दो बजे बा सो गईं। पौने तीन बजे मैं सोनेके लिए उठी। देवदासभाई पाँच बजे तक बाके पास खड़े रहे थे। उनके चेहरेसे करुणा और प्रेम टपक रहा था। इस आशंकासे कि माँ जानेकी तैयारीमें है, उनका दिल बालककी तरह रो रहा था। वहाँ खड़े हुए वे माँके प्रति पुत्रके प्रेमकी मूर्ति-से दिखाई पड़ते थे।

२२ फरवरी, १९४४

तारीख २२को सुबह ७ बजे मैं उठकर भीतर आई। मुँह-हाथ धो रही थी, कि बाने पुकारा: "सुशीला!"

मैंने पास जाकर पूछा: "क्या है बा?"

बा बोलीं: "सुशीला, मुझे घरमें ले चल। मेरी सार-सँभाल कर।"

मैंने उनकी खाटके पास ही लटकता हुआ 'हे राम'का चित्र उन्हें दिखाया और कहा: "बा, आप तो घर ही में हैं। यह देखिये, यह रहा आपका प्यारा चित्र!"

कुछ देर बाद बा फिर बोलीं : “ मुझे घरमें ले चल । बापूजीके कमरेमें ले चल । ”

मैंने कहा : “ लेकिन बा आप तो बापूजीके कमरेमें ही हैं । ” फिर मुझे खयाल आया कि शायद बा बापूजीको बुलाना चाहती हैं । वे पासके कमरेमें नाश्ता कर रहे थे । मैंने उन्हें कहलवाया कि घूमने जानेसे पहले ज़रा बाके पास हो जायँ ।

बा मेरी गोदमें पड़ी थीं । एकाएक बोल उठीं : “ सुशीला, कहाँ जायँगे ? क्या मर जायँगे ? ” पहले जब कभी बा ऐसी बातें करतीं, तो मैं उनसे कहती थी : “ बा, आप ऐसा क्यों कहती हैं ? हम सब साथ ही घर जायँगे । ” लेकिन आज ऐसा कुछ कहनेकी हिम्मत न हुई । मैंने कहा, “ बा, एक दिन तो हम सबको मरना ही है न ! आगे पीछे सबको जाना है । इसमें है क्या ? ” बाने सिर हिलाया, मानो ‘ हाँ ’ कहती हों । फिर शान्त होकर आँखें बन्द कर लीं और मेरे सहारे आधी लेट-सी गईं ।

कुछ देर बाद बापूजी आ पहुँचे । थोड़ी देर बाके पास खड़े रहे और फिर बोले : “ अब मैं घूमने जाऊँ ? ” हमेशा जब बापू बाके पास बैठना चाहते थे, तो बा कहती थीं, ‘ नहीं, आप घूमने जाइये ’ या कहतीं, ‘ सो जाइये । ’ लेकिन आज बापूजीने घूमने जानेको पूछा, तो बाने मना किया । बापू उनके पास खाट पर बैठ गये । बा उनकी छाती पर सिर रखे, उनका सहारा लिए, आँख बन्द करके पड़ी थीं । उस समय दोनोंके चेहरे पर अपूर्व शान्ति और संतोष दिखाई दे रहा था । वह दृश्य इतना पवित्र और इतना दिव्य था, कि हमलोग दूरसे ही देखकर दबे पाँव पीछे हट गये । बापूजी दस बजे तक वहीं बैठे रहे । बीच-बीचमें बाको राम नामका सहारा लेनेके लिए कहते थे । उन्हें खाँसी वग़ैरा आती, तो उनको सहलाते थे ।

भाई, मैं और देवदासभाई खानेके कमरेमें बैठे बातें कर रहे थे । देवदासभाईने कहा कि एक सरकारी अफ़सरने उन्हें साफ़-साफ़ बताया था कि सरकार बाको क्यों नहीं छोड़ रही । उसने कहा : “ अगर हम उन्हें

छोड़ते हैं, और बाहर आने पर उनकी हालत ज़्यादा गंभीर होती है, तो लोग तुम्हारे पिताजीको छोड़नेकी माँग करेंगे और उस वक़्त हमने उन्हें न छोड़ा, तो हमें राक्षस कहेंगे।"

दस बजे बाने बापूजीको जानेकी इजाज़त दी। उनकी जगह मैं बैठ गई। अकेली बैठी थी। मनमें ख़याल आया: "बासे अपनी जाने-अनजानेकी सब भूलोंके लिए क्षमा तो माँग लूँ।" मगर बोलनेकी कोशिश करने पर गला रुँध गया और मुँहसे शब्द न निकला। सुबह सात बजे बाने कहा था: 'क्या मर जायँगे?' उन्हें फिरसे इस विचारकी याद दिलाना भी मुझे ठीक नहीं मालूम हुआ। बीच-बीचमें बा कुछ ग़ाफ़िल हो जाती थीं। आज पहला ही दिन था, कि उन्होंने दतौन वग़ैरा नहीं किया था। मैंने 'बोरो ग्लिसरीन'से मुँह साफ़ करनेके लिए पूछा, तो उन्होंने मना कर दिया।

पेनिसिलिन कलकत्तेसे हवाई जहाज़में भेजी गई थी। कर्नल शाह और कर्नल भण्डारी खबर लाये कि पेनिसिलिन आ गई है। बापूजीने तो सब दवा ही बन्द करवा रखी थी। बाको भी दवा लेनेकी कोई इच्छा नहीं थी। ऐसी हालतमें सवाल यह था कि किया क्या जाय? देवदासभाई चाहते थे कि पेनिसिलिनका उपयोग किया जाय। डॉ० गिल्डरसे और मुझसे इस बारेमें बातें करके वे बाहर किसी मिलिटरी डॉक्टरसे चर्चा करने जा रहे थे। डॉ० दिनशा मेहता उनके साथ जानेवाले थे। इतनेमें बाने पुकारा: "मेहता कहाँ हैं? मेरी मालिश वग़ैरा करें!" डॉ० दिनशा अभी सीढ़ी पर ही थे। उन्हें बुलाया गया। ऐसी हालतमें बाकी मालिश करनेका कोई उत्साह उनमें न था, मगर बाका आग्रह देखकर १५ मिनट तक पाउडरसे थोड़ी मालिश कर दी और फिर चले गये। बा आधी बेहोशीकी हालतमें मेरी गोदमें पड़ी थीं। कुछ देरके बाद फिर बोलीं: "मेहता कहाँ हैं? वे सब करेंगे।" अपने अंतिम समयमें बाका इस तरह डॉ० मेहताको याद करना, उनके प्रति बाकी श्रद्धाका एक प्रमाण था। मैंने गीले कपड़ेसे बाका मुँह वग़ैरा साफ़ कर दिया। इतनेमें कर्नल भण्डारी आये। देवदासभाईने बाकी फोटू लेनेकी इजाज़त माँगी थी। कर्नल भण्डारी यह जानने आये थे, कि इस बारेमें बापूजीकी क्या इच्छा

थी। बापूजीने कहा: "मुझे तो इन चीज़ोंकी परवाह नहीं है। मगर लड़के और रिश्तेदार वगैरा चाहते हैं, तो सरकारको इजाज़त देनी चाहिये।"

प्रभावतीबहनको बाके पास बैठाकर मैं स्नान करने गई। मेरी गैरहाज़िरीमें डॉक्टर गिल्डर बाके पास थे। बाकी नाड़ी बहुत अनियमित चल रही थी। कभी बिलकुल ग़ायब हो जाती और कभी फिर चलने लगती। कल रातसे बीच-बीचमें नाड़ीकी यही हालत हो रही थी। सबको लगता था कि अब बात दिनोंकी नहीं, घंटोंकी ही है। बापूजीने मुझसे कहा था: "तुझे ज़्यादा नहीं, तो कम-से-कम १५ मिनट तो घूम ही आना चाहिये।" इसलिए नहानेके बाद मैं १५ मिनट घूमने निकल गई। घूमते समय मैं प्रार्थना कर रही थी:

'मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥"

आज हृदयसे बार-बार यही श्लोक निकल रहा था। क्या वह माधव अब भी बाको बचा नहीं सकता? लेकिन मनुष्यकी अपेक्षा भगवान् ही अधिक अच्छी तरह जानता है कि मनुष्यके लिए क्या अच्छा है और क्या नहीं! और वह वैसा ही करता है। फिर बाको किसी-न-किसी रोज़ तो जाना ही है न? स्वतंत्रताके अहिंसक युद्धमें जेलके अन्दर मृत्यु पाना और स्वतंत्राकी वेदी पर बलि होकर शहीद बनना बिरलोंके ही नसीबमें होता है। बाकी आजीवन तपस्याके बाद उन्हें यह सौभाग्य प्राप्त न होता, तो और किसे होता? भगवान्‌ने उनको जिस महान् पदके योग्य पाया था, उसे वह मेरे समान मोहग्रस्त व्यक्तिकी प्रार्थनाके कारण थोड़े ही बदल देनेवाला था?

इधर कई दिनोंसे बापू अपनी ख़ुराकमें सिर्फ़ प्रवाही पदार्थ (पतली चीज़ें) ही लेते थे। उन पर बाकी बीमारीका इतना बोझ था कि खाना कम किये बिना वे अपनी तबियतको ठीक नहीं रख सकते थे। दूसरे, उन दिनों खानेमें आध-पौन घंटा खर्च करना उन्हें अखरता था। स्नानके बाद १० मिनटमें खाना पूरा करके वे बाके पास आ बैठते थे। एक दफ़ा बैठनेके बाद फिर उठनेकी इच्छा नहीं होती थी। इसलिए आम तौर पर अपने सब कामोंसे निपटकर ही वे बाके पास आते थे। जब मैं

वापस आई, तो बापूजी बाके पास बैठे थे। एकाएक बा खाट पर सीधी लेट गईं। दमेकी वजहसे इधर महीनों हुए, वे चित सो नहीं पाती थीं। पीठकी तरफ़ मनुष्यका या खटियाका सहारा लेकर बैठती थीं, या सामने टेबल पर सिर रखकर पड़ जाती थीं। आज उन्हें अचानक इस तरह लेटते देखकर सब चौंक उठे। देवदासभाईको सँदेशा भेजा गया। वे लेडी ठाकरसीके घर सोने जानेकी तैयारी कर रहे थे। खबर पाते ही मनुके साथ आ पहुँचे। डॉक्टर दिनशा मेहता भी आ गये। बापूजीने बासे पूछा: "रामधुन या भजन सुनोगी?" बाने इनकार किया। बादमें बापूजीने पासके कमरेमें धीमे स्वरसे गीता पाठ शुरू करवाया। कनु, देवदासभाई, प्यारेलालजी वग़ैरा सब बारी-बारीसे गीतापाठ करने लगे, ताकि बाके कानोंमें गीताजीकी ध्वनि रह जाय।

रात हीसे बाको कुछ निगलनेमें कष्ट होता था। पानी पीनेकी भी इच्छा नहीं होती थी। दुपहरको देवदासभाई गंगाजल लाये। उसमें तुलसीके टुकड़े डाले। बापूजीने कहा: "देवदास गंगाजल लाया है।" बाने मुँह खोल दिया। बापूजीने चम्मच भरकर डाला। बा झटसे पी गईं। उन्होंने फिर मुँह खोला। बापूने एक चम्मच और डाला। फिर बोले, "अब थोड़ी देर बाद लेना।" बा शान्तिसे आँखें बन्द करके लेट गईं। बेचैनीमें वे 'हे गंगाजी' भी पुकारती थीं। गंगाजलका पान करके उन्हें अपूर्व शान्ति मिली थी। दूसरे रिश्तेदारोंको बाके पास बैठनेका मौक़ा देनेके लिए बापूजी बाके पाससे उठकर नज़दीक ही अपनी गादी पर जा बैठे। थोड़ी देरमें संतोकबहन, केशुभाई और रामीबहन (हरिलालभाईकी बड़ी लड़की) आ पहुँचीं। न जाने कहाँसे बामें शक्ति आ गई। वे उठकर इन सबसे बातें करने लगीं। संतोकबहनसे कहने लगीं: "देवदासने मेरे लिए बहुत चक्कर खाये हैं; मेरी बहुत सेवा की है।" फिर देवदासभाईसे बोलीं: "तूने मेरी बहुत सेवा की है। अब तू सबको सँभालना और अपना कर्त्तव्य पूरा करना।" देवदासभाईने कहा: "बा, मैंने क्या सेवा की है? मैं तो कल ही रातको आया हूँ। सेवा तो तुम्हारे इन साथियोंने की है।" किन्तु अंतिम समयमें देवदासभाईको देखकर बा परम संतुष्ट हुई थीं। उनकी एक रातकी सेवा बाके निकट सबसे ज्यादा मूल्यवान थी।

देवदासभाईने कहा: "बा रामदासभाई आ रहे हैं।" बा बोलीं: "क्या काम है?" रामदासभाईको तकलीफ़ देना उन्हें बहुत अखरता था।

बा बापूजीकी ओर देखकर कहने लगीं: "मेरे मरनेका दुःख क्या? मेरी मौत पर तो लड्डू झड़ने चाहियें।" इसके बाद आँखें बन्द करके और हाथ जोड़कर वे ईश्वरसे प्रार्थना करने लगीं: "हे भगवन्, ढोरकी तरह पेट भर-भरकर खाया है। माफ़ करना। अब तो तेरी ही भक्ति चाहिये। तेरा ही प्रेम चाहिये।" उनके चेहरे पर अपूर्व शांति थी। उन्होंने उस समय सब मोह-माया छोड़ दी थी। उनकी वृत्ति पूर्णतया सात्त्विक हो गई थी।

कनुने बाके कुछ फोटो लिये। सब चाहते थे कि बाके साथ बैठे हुए बापूजीका फोटो लिया जा सके, तो अच्छा हो। मुझसे कहा गया कि मैं बापूको बाके पास बैठाऊँ। मेरे सामने सवाल था कि मैं उनसे कैसे कहूँ। बापूजीको फोटोसे चिढ़ है। अचानक कोई उनका फोटो ले ले तो बात अलग है। मगर फोटोके लिए वे कभी बैठते नहीं।

बापूजी आग्रह करते थे कि सबको थोड़ा-थोड़ा आराम लेना चाहिये। इसकी बिना पर मैंने चार बजे उनसे कहा: "बापूजी, मैं थोड़ा आराम करने जाती हूँ। आप बाका 'चार्ज' लें।" कनुको आशा थी कि जब बापू 'चार्ज' लेकर बाके पास बैठेंगे, तब वह फोटो ले लेगा। मगर बापूजीने कहा: "चार्ज तो मैं लेता हूँ, पर यहीं बैठे-बैठे। दूसरे सब बाके पास बैठे हैं; उन्हें बैठने दो। बा मुझे बुलावेगी, तब मैं उसके पास चला जाऊँगा।"

साढ़े पाँच बजे कर्नल शाह और कर्नल भण्डारी पेनिसिलिन लाये। बापूजीसे पूछा। उन्होंने कहा: "डॉ॰ गिल्डर और सुशीला देना चाहें, तो दीजिये।" डॉ॰ गिल्डर बापूजीके विचारोंको जानते थे। इसलिए वे पेनिसिलिन देनेसे झिझकते थे। देवदासभाईसे बातें हुईं। दो सवाल सामने थे। एक तो यह कि मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई बाको अब इंजेक्शन देनेसे क्या फ़ायदा? ईश्वरके भरोसे पड़ी रहने दो और शांतिसे जाने दो। यह था बापूजीका मत। उसमें काफ़ी सचाई थी। दूसरा यह कि जब तक प्राण हैं, आशा क्यों छोड़ी जाय? प्रयत्न क्यों छोड़ा

जाय? यह था साधारण, तटस्थ, डॅाक्टरी मत। देवदासभाई दूसरे मतके थे। डॅा० गिल्डरने उनसे कहा: "आप चाहते हैं, तो हम बाको पेनिसिलिन देनेको तैयार हैं।" उन्होंने मुझे इशारा किया और मैंने पिचकारी उबालनेको रखी। इतनेमें बापूजीने मुझे देखा और पूछा: "तुम लोगोंने क्या तय किया है?" मैंने कहा: "पेनिसिलिन देंगे।" बापूने पूछा: "तुम दोनों मानते हो कि देना चाहिये? इससे फ़ायदा होगा?" इसका उत्तर मैं 'हाँ'में कैसे दे सकती थी? मैंने कहा: "आप डॅाक्टर गिल्डरसे बात कर लें।"

बाकी हालत कुछ अच्छी मालूम होती थी। शायद पेनिसिलिनसे फ़ायदा हो; आशाकी इस किरणसे मेरे मनका बोझ कुछ हलका हुआ। सुबहसे खाना नहीं खाया था। इसलिए मैं खाने गई। क़रीब-क़रीब सभी खाने बैठे। बापू डॅा० गिल्डरको समझाकर देवदासभाईको समझाने गये। डॅा० गिल्डरने मुझसे कहा: "बापूको पता न था, कि कई इंजेक्शन देने होंगे। अब पता चला है, तो पेनिसिलिन देनेसे मना किया है।" मैंने पिचकारी उठाकर बंद कर दी। मनमें थोड़ी निराशा हुई। साथ ही इस विचारसे थोड़ी शान्ति भी हुई कि ऐसी हालतमें मुझे बाको सुई नहीं टोचनी पड़ेगी।

बापू देवदासभाईको समझा रहे थे: "तू ईश्वर पर विश्वास क्यों नहीं रखता? मृत्यु-शय्या पर पड़ी माँको भी दवा क्यों देना चाहता है?" वग़ैरा। इस चर्चाके कारण उन्हें घूमने जानेमें देर हो गई। हर रोज़ वे ६॥ बजे नीचे घूमने चले जाते थे। उस रोज़ क़रीब ७। बज रहे थे। बात पूरी करके वे नीचे जानेके लिए तैयार होनेके खयालसे ग़ुसलखानेमें आये। इतनेमें बा बोलीं, "बापूजी!"

प्रभावती बहन पास बैठी थीं। उन्होंने बापूजीको बुलाया। वे आकर बाके पास बैठ गये। मगर कनुको फोटो लेनेसे मना कर दिया।

बाको बहुत बेचैनी थी। दो बार उठकर सीधी बैठीं। फिर लेट गईं। बापूजीने पूछा: "क्या होता है?" नये देशके किनारे खड़े भोले बालककी तरह उन्होंने अत्यन्त करुण स्वरसे तुतलाते हुए कहा: "कुछ समझ नहीं पड़ता।" मैंने नाड़ी देखी। वह बहुत कमज़ोर थी।

लेकिन दिनमें कई दफ़ा कमज़ोर हो चुकी थी। इसलिए मेरी समझमें नहीं आया कि अब सिर्फ़ मिनटोंका खेल बाक़ी है। बाके दरवाज़ेके पास बरामदेमें कनु और मैं बात कर रहे थे: "बापूजीने मना न किया होता, तो कितना अच्छा फोटो मिल सकता था! हमेशा तो कोई बिना बताये फोटो ले लेता, तो बापू रोकते नहीं थे। आज क्यों रोका?" उस समय हम यह नहीं समझ सके थे कि बापूजीके लिए बाके पासकी वे अन्तिम घड़ियाँ अत्यन्त पवित्र थीं। फोटोसे वे उनकी पवित्रताको कम नहीं करना चाहते थे। बापूने पेनिसिलिन देनेसे रोका, उसका भी हमें अफ़सोस हो रहा था।

इतनेमें बाके भाई माधवदासजी आये। बाने उन्हें पहचाना। आँखें भर आईं। पर बात नहीं कर सकीं। मैं अंदर आई। बाने अन्त-अन्तमें उठनेकी कोशिश की, किन्तु बापूजीने कहा: "अब तुम पड़ी रहो।" बाने बापूजीकी गोदमें सिर डाल दिया। उनकी आँखें पथराने लगीं। उन्होंने दो-चार हिचकियाँ लीं। गलेसे मौतके समयकी घरघराहट भरी आवाज़ निकलने लगी। मुँह खुल गया। दो-चार श्वास लिए, और बाकी आत्मा इस दुनियाके बन्धनसे मुक्त हो गई। बापूने कहा था: 'बा किसकी गोदमें देह छोड़ेगी? वह सौभाग्य किसका होगा?' बापूजीके सिवा वह और किसका हो सकता था? उस दिन अचानक घूमने जानेमें उन्हें देर न हो गई होती, तो वे अंतिम समयमें बाके पास पहुँच ही न पाते। लेकिन ईश्वर उन्हें बाके प्रतिकी उनकी वफ़ादारी और भक्तिका फल देना क्योंकर भूलता?

बापूजीने बाके सिरके नीचेसे तकिये निकाल लिए। खाटको भी सीधा किया। मीराबहनने दोपहरसे ही खाटकी दिशा उत्तर-दक्षिण कर दी थी। सब लोग रामधुन गाने लगे। मैं जड़की तरह खड़ी देख रही थी। डॉक्टर होते हुए भी, और कई मौतें देखनेके बाद भी, ऐसी मृत्युको तटस्थताके साथ देखना मैं अभी सीखी न थी।

ठीक ६ बजकर ३५ मिनट पर बाकी आत्मा मुक्त हुई। देवदासभाई बाकी खाट पर सिर रखकर बालककी तरह 'बा—बा' पुकारते हुए फूट—फूट कर रोने लगे। बापूजीकी आँखके कोनोंसे भी दो मोती चू

पड़े । आखिर बापू उठे । उन्होंने कमरा खाली करनेको कहा । जेलके फाटक पर मथुरादासभाई अपने परिवारके साथ खड़े थे । उन्हें अंतिम दर्शनके लिए अन्दर आनेकी इजाज़त नहीं मिली थी । सरकारको डर था, कि बाहर बाकी मृत्युके समाचार पहुँचते ही कहीं कोई दंगा वग़ैरा न हो जाय । आखिर बापूजीने उनके लिए इस शर्त पर अन्दर आनेकी इजाज़त हासिल की, कि जब तक सरकार मंजूरी न दे, तब तक हममेंसे कोई बाहर न जायगा ।

बापूजीने, मैंने, मनुने और संतोकबहन वग़ैराने मिलकर बाको स्नान कराया । बाल धोकर कंघी की । शवको पोंछकर सूखा किया और बापूजीके हाथके सूतकी जिस साड़ीको बाने अपनी अंतिम यात्रामें पहननेके लिए सँभाल कर रखा था, उसमें उसे लपेटा । लेडी ठाकरसीने गंगाजलमें भिगोई हुई एक दूसरी साड़ी भेजी थी, वह बापूजीवाली साड़ीके ऊपर डाली गई । संतोकबहनने बापूजीके सूतकी बनी चूडियाँ बाको पहनाईं । गलेमें तुलसीकी कंठी डाली और माथे पर चन्दन और कुंकुमका लेप किया।

मनु और कनुने बापूजीवाले कमरेको, जहाँ बाने प्राण छोड़े थे, साफ़ किया । मीराबहनने शवके लिए चूनेका एक लंब-चौरस चौक पूरा और सिरकी तरफ़ सुन्दर ॐ व पैरोंके पास सुन्दर स्वस्तिक बनाया । बादमें शवको वहाँ लाकर रखा गया । मीराबहनने बाके बालोंमें फूल सजाये । बाके चेहरे पर मन्द मुसकानके साथ-साथ अपूर्व शान्ति थी । वे सोई हुई मालूम पड़ती थीं । सबने बैठकर प्रार्थना की । गीताजीका पारायण किया । डेढ़ घंटेमें यह सारी विधि पूरी हुई ।

शान्तिकुमारभाईने दाह-क्रियाके लिए चन्दनकी लकड़ी लानेका प्रस्ताव किया । बापूने इनकार करते हुए कहा : "बा ग़रीबकी पत्नी थी । ग़रीब आदमी चन्दन कहाँसे लाये ?" हमारे सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब बोल उठे : "मेरे पास चन्दनकी लकड़ी है ।" बापूने जवाब दिया : "आप (यानी सरकार) तो जिस चीज़का भी चाहें, उपयोग कर सकते हैं । आपसे चन्दनकी लकड़ी लेनेमें मुझे कोई एतराज़ हो ही नहीं सकता ।" फिर तो एक समूचे चन्दनके झाड़की लकड़ी वहाँ आ पहुँची ।

मृत्युके बाद तुरंत ही कर्नल भण्डारी सरकारकी तरफ़से बापूजीको यह पूछने आये कि शवके अग्निसंस्कारके बारेमें उनकी क्या इच्छा है। बापूजीने तीन रास्ते सुझाये :

१. शव उनके लड़कों और रिश्तेदारोंको सौंप दिया जाय। इसका मतलब यह होगा कि सार्वजनिक रीतिसे, आमजनताके बीच, अग्निसंस्कारकी क्रिया की जायगी और सरकार उसमें किसी तरहकी दस्तंदाज़ी नहीं करेगी।

यह न हो सके तो,

२. महादेवभाईकी तरह महलके सामने ही अग्निसंस्कार किया जाय और रिश्तेदारों व मित्रोंको हाज़िर रहनेकी इजाज़त दी जाय।

अगर सरकार सिर्फ़ रिश्तेदारोंको ही आने देना चाहती हो, और मित्रोंको आनेकी इजाज़त न दे, तो वे चाहेंगे कि कोई भी हाज़िर न रहे। जेलके अपने साथियोंकी मददसे वे अकेले ही अग्निसंस्कार कर लेंगे।

बापूने खास तौर पर यह बिनती की थी कि सरकार जो भी कुछ करे, ढंगसे करे, ताकि उसमें संघर्षकी कोई गुंजाइश न रहे। यदि अन्त्येष्टि-संस्कार आम जनताकी उपस्थितिमें किया जायगा, तो वे इतना कहनेको तैयार थे, कि सरकारको अशान्ति या उपद्रवका डर रखनेकी कोई ज़रूरत नहीं। "मेरे लड़के वहाँ मर जायँगे, मगर कोई उपद्रव नहीं होने देंगे।"

उनसे पूछा गया: "यदि बाहर अग्नि-दाह किया जाय, तो क्या आप ख़ुद वहाँ जाना चाहेंगे?"

बापूने जवाब दिया: "नहीं, मेरे लड़के, मित्र और रिश्तेदार सब कर लेंगे। मैं बाहर नहीं जाऊँगा।"

लेकिन सरकार एक बड़े जुलूसका जोखिम उठानेको तैयार न थी। इस बहाने भी लोगोंमें जागृति आये और जोश पैदा हो, यह सरकारको स्वीकार न था। इसलिए उसने दूसरी शर्त मंजूर की और मित्रों व सगे-संबंधियोंकी हाज़िरीमें महलके सामने ही अग्नि-संस्कार करनेकी इजाज़त दी।

गीतापाठके समाप्त होने पर यानी रातके कोई ग्यारह बजे, देवदासभाई, मनु और संतोकबहनको छोड़कर बाक़ी सबको बाहर जानेका हुक्म मिला। हम सब बारी-बारीसे शवके पास बैठे। सुबह शवके पास ही सबने प्रार्थना की। बापूजीने शवके सिरहाने ही अपना आसन लगाया था।

२३ फरवरीको सबेरे ७ बजेसे लोग आने शुरू हो गये । क़रीब डेढ़सौ मित्र और सगे-सम्बन्धी आ पहुँचे थे । मनुने शवकी आरती उतारी । और सबोंने शवको प्रणाम किये । फूलोंका एक बड़ा-सा ढेर लग गया था । हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, अंग्रेज़, सभी क़ौमोंके दोस्त हाज़िर थे । जिन ब्राह्मणोंने महादेवभाईकी क्रिया करवाई थी, वे भी आ पहुँचे थे । सारी क्रिया देवदासभाईके हाथों करवाई गई ।

शवको चिता पर रख देनेके बाद बापूजीने एक छोटी-सी प्राथना करवाई, जिसमें हिन्दू, ईसाई, पारसी, इस्लाम सभी धर्मोंकी प्रार्थना शामिल थी । देवदासभाईने आग दी । कुछ ही मिनटोंमें ज्वालायें भड़क उठीं । बाने 'करेंगे या मरेंगे' मंत्रका पूरी तरह पालन करके दिखाया था । अब वे स्वतंत्र थीं । कौनसी सल्तनत अब उन्हें बन्धनमें रख सकती थी ?

चिता महादेवभाईकी समाधिके बाजूहीमें रची गई थी । माँने सोचा होगा कि बेटेको अकेला छोड़कर कैसे जाऊँ, इसलिए वे उसके पास ही रह गईं ।

शान्तिकुमारभाईने दिनभर पुत्रकी तरह काम करके देवदासभाईका बोझ हलका किया । शवके नीचेकी लकड़ियाँ कुछ कम पड़ीं । जलती चितामें ऊपरसे लकड़ियाँ डालते समय कनुकी पलकें थोड़ी झुलस गईं ।

बाके शरीरसे पानी बहुत निकला । इसलिए दहनक्रिया शामको चार बजे पूरी हुई । तब तक बापूजी चिता-स्थान पर ही हाज़िर रहे । कई बार मित्रोंने कहा : "आप थक जायँगे ।" लेकिन बापूने वहाँसे हटनेसे इनकार ही किया । उन्होंने हँसकर जवाब दिया : "६२ वर्षके साथीको क्या अब इस तरह छोड़ सकता हूँ ? इसके लिए तो बा भी माफ़ न करेगी !" किन्तु उनके हृदयमें तीव्र वेदना हो रही थी । वे ज्ञानी हैं, मगर साथ ही मनुष्य भी हैं । सबके चले जानेके बाद रातको खाट पर पड़े-पड़े कहने लगे : "बाके बिना मैं जीवनकी कल्पना ही नहीं कर सकता । मैं चाहता था कि बा मेरे रहते चली जाय, ताकि मुझे चिन्ता न रहे, कि मेरे बाद उसका क्या होगा । लेकिन वह मेरे जीवनका अविभाज्य अंग थी । उसके जानेसे जो सूनापन पैदा हो गया

है, वह कभी भर नहीं सकता।" फिर कहने लगे: "ईश्वरने भी मेरी कैसी कसौटी की? मैं तुम लोगोंको पेनिसिलिन देने देता तो भी वह तो जाने ही वाली थी। लेकिन वैसा करनेसे ईश्वरके प्रतिकी मेरी श्रद्धामें न्यूनता आ जाती। मैं देवदासको समझाकर आता ही हूँ, पेनिसिलिन न देनेकी बात पक्की होती है, और बा चलनेकी तैयारी कर देती हैं, यह भी एक योग ही है। और बा मेरी ही गोदमें गई, इससे तो मेरे हर्षका पार न रहा।"

रामदासभाई शामको पहुँच पाये। चिता अभी जल ही रही थी। देवदासभाई और रामदासभाईको तीन दिन तक महलमें रहनेकी इजाज़त मिली। चौथे दिन चिताकी राख और फूल इकट्ठा करके वे बिदा हुए। नर्सें भी एक-एक करके बिदा हो गईं। किसीने कहा: "बाने अपने प्राण देकर एक बार तो जेलका दरवाज़ा खुलवा ही दिया! वे त्यागमूर्ति थीं। अपना जीवन देकर उन्होंने इतने लोगोंको बापूके दर्शनोंका सुवर्ण अवसर प्रदान किया!"

बाके चितास्थान पर एक कच्ची समाधि बनाई गई। महादेवभाईकी समाधि पर छोटे-छोटे शंखोंसे ॐ लिखा गया था। बाकी समाधि पर शंखोंसे 'हे राम' लिखा गया। रोज़ सुबह-शाम हम सब समाधिकी यात्रा करते और फूल चढ़ाते थे। सबेरे गीताजीके बारहवें अध्यायका पाठ भी किया जाता था। बापूजीने महादेवभाईकी समाधि पर फूलोंका क्रॉस (सूली) बनाना शुरू किया था। बाकी समाधि पर स्वस्तिक बनानेका निश्चय हुआ। यह कुछ मरे हुओंकी मूर्तिपूजा नहीं थी; बल्कि उनके गुणोंका स्मरण था। उन गुणोंके प्रति श्रद्धांजलि थी। ईश्वरसे प्रार्थना थी, कि उन दो महान् व्यक्तियोंके — माँ-बेटेके — गुणोंका हम भी अनुसरण कर सकें!

बाकी बीमारीके दिनोंमें बापूजीको बहुत श्रम पहुँचा था। वे काफ़ी दुर्बल हो गये थे। आखिर वे मलेरियासे बीमार पड़े। सरकार नहीं चाहती थी, कि आग़ाखान महलमें तीसरी मृत्यु हो। ६ मईको हमारे जेलके फाटक खुल गये और बापूजी और उनके सब साथी रिहा कर दिये गये।

रिहाईसे पहले बापूजीने सरकारको पत्र लिखा, कि समाधिका स्थान पवित्र स्थान है; उसका दूसरा कोई उपयोग नहीं होना चाहिये, और लोगोंको समाधिके पास जानेकी इजाज़त होनी चाहिये ।

आख़िरी दिन सुबह सात बजे हम सब दोनों समाधियोंसे बिदा लेने गये । पूरे ९३ हफ़्ते बापूजी उस जेलमें रहे थे । वह हमारा घर-सा बन गया था, और अपने दो साथियोंको वहीं छोड़कर जाना सबको अखरता था । लेकिन वे दो तो देशके और बापूके सच्चे सेवक थे । देशकी और बापूकी सेवामें उन्होंने अपने प्राण अर्पण किये थे । और, क्या जेलके दरवाज़े खुलवानेमें भी उनका हाथ न था ? जीवनकी तरह मृत्युमें भी उन दोनोंने बापूजीकी अर्थात् देशकी ही सेवा की थी । कौन कह सकता है कि आज भी वे दो आत्मायें बापूजीकी रक्षा और सेवा नहीं कर रहीं ?

२२–७–'४५

अन्त्येष्टि

मेरे पते, और नज़रबन्दोंकी छावनीके पते, मेरे पिताजीके नाम सीधे भेजे गये भ्रातृभाव और समवेदना व्यक्त करनेवाले असंख्य सन्देश सार्वजनिक रीतिसे कृतज्ञता प्रकट करनेके उपरान्त भी कुछ अधिककी अपेक्षा रखते हैं। उनमेंसे कुछ तो बहुत परिश्रमपूर्वक और विस्तारसे लिखे गये हैं, और फिर भी वे उनके लेखक जितना कुछ कहना चाहते हैं, सो सब व्यक्त नहीं करते। जो शोक प्रकट किया गया है, वह इतना तो हृदय-द्रावक है कि वह शोककर्त्ताओंकी और प्रत्यक्ष रीतिसे वियोगके दुःखमें डूबे हुओंकी सहानुभूतिको पारस्परिक बना देता है। मेरे लिए यह उचित न होगा कि मैं अपनी माताके अंतिम क्षणोंके अमूल्य और पवित्र संस्मरणोंको अपने ही पास रख छोड़ूँ और मेरे साथ दुःखी बने हुए एक बड़े जनसमूहको सार्वजनिक रीतिसे, जिस हद तक संभव हो, उस हद तक उसमें अपना भागीदार न बनाऊँ। मेरे शोकका आवेग अभी शान्त नहीं हुआ है, और मैं मानो दैव परका अपना विश्वास खो बैठा होऊँ, ऐसी एक विचित्र भावना मुझे व्यथित कर रही है। मुझे विश्वास है कि यह थोड़े समयकी ही चीज़ है। मैं अचानक मातृहीन बन गया हूँ। लेकिन अपनी इस मानसिक स्थितिसे झगड़कर मैं इससे उबरनेकी आशा रखता हूँ।

वे (बा) अंतिम क्षण तक पूरी तरह बेहोश तो कभी हुई ही नहीं। शनिवारके दिन सरकारी वक्तव्यमें उनकी स्थितिके गंभीर होनेकी बात कही गई थी। तब भी, बिलकुल निराशाजनक परिस्थितिमें भी, यह आशा रक्खी जा रही थी कि उनकी बीमारीकी इस अंतिम हालतमेंसे भी सहीसलामत पार हुआ जा सकेगा। हृदयकी क्रियाके मन्द हो जानेके कारण पिछले कुछ दिनोंसे उनके गुर्दोंने काम करना छोड़ दिया था, और बिना बुखारके त्रिदोष (निमोनिया) के कारण हालत और भी नाज़ुक

हो गई थी। खूनका दबाव घटकर ठेठ ७२–५२ पर जा टिका था। अब डॉक्टरोंने उनके बचनेकी आशा छोड़ दी थी, और इलाज बन्द कर दिया था। सोमवारकी शामको जब मैं वहाँ पहुँचा, वे बहुत ही कष्टमें थीं। उनके साथी नज़रबन्दोंकी प्रेमपूर्ण शुश्रूषा ही उनके इस कष्टको ऊपर ऊपरसे कुछ हलका बना सकती थी। डॉक्टरोंका खयाल नहीं था कि वे रात निकाल सकेंगी। उनके पार्थिव जीवनकी वह अंतिम रात थी। सारी रात उन्हें प्रतिपल अपने साथियोंकी और गांधीजीकी अखंड सेवा-शुश्रूषा मिलती रही।

आधी बेहोशीकी हालतमें वे सवालोंके जवाब 'हाँ'–'ना'से अथवा धीरेसे अपना सिर हिलाकर देती थीं। एक बार जब गांधीजी उनके पास आये, तो उन्होंने अपना हाथ उठाकर उनसे पूछा: "ये कौन हैं?" और जब गांधीजी क़रीब एक घंटे तक उनकी सेवामें बैठे रहे, तो ऐसा लगा कि बाको उससे बहुत ही राहत मिली। उनके पास बैठे हुए गांधीजी उनके मुक़ाबिले उमरमें बहुत छोटे दीखते थे, यद्यपि उनके हाथ काँप रहे थे। इस दृश्यको देखकर मुझे बत्तीस साल पहलेकी आफ्रीकाकी एक घटना याद हो आई। उस समय बा तीन महीनोंकी सज़ा काटकर बाहर आई थीं। और, वे बहुत ही कमज़ोर हो गई थीं। एक रेलवे स्टेशन पर मेरे माता-पिताको देखकर एक परिचित यूरोपियन सज्जनने पूछा: "मि० गांधी, क्या ये आपकी माँ हैं?"

सुबह उनकी हालत ज्यादा खराब मालूम होती थी। लेकिन वे शान्त और स्वस्थ थीं। सोमवारको उन्हें अपने जीवनकी कुछ आशा थी। मंगलवारको मुझे ऐसा लगा कि वे उस आशाके बन्धनसे मुक्त हो गई हैं। यूरेमियाका प्रभाव बढ़ता जाता था, फिर भी उनका मन अधिक शान्त और स्पष्ट था।

सोमवारसे उन्होंने किसी भी तरहकी दवा और पानी तक लेना बन्द कर दिया था। लेकिन मंगलवारको दोपहरके समय गंगाजलकी एक बूँद लेनेके लिए उन्होंने अपना मुँह खोला था। इससे उन्हें कुछ समयके लिए शान्ति मिली। बादमें तीन बजे उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और कहा: "मैं जाती हूँ। एक-न-एक दिन तो मुझे जाना ही है, तो

फिर आज ही क्यों न जाऊँ?" मैं उनका सबसे छोटा लड़का ठहरा। स्पष्ट ही उनका जी मुझमें लगा हुआ था। लेकिन ऊपरके शब्द कहकर और दूसरे मीठे और प्यारभरे शब्दोंका उच्चारण करके अन्य सबोंकी उपस्थितिमें उन्होंने बलपूर्वक मेरे प्रतिकी अपनी आसक्तिको खींच लिया। उनकी वाणी इतनी स्पष्ट मैंने पहले कभी सुनी नहीं थी, और उनके शब्द इतने मीठे और चुनकर कहे हुए मुझे कभी लगे नहीं थे।

इसके बाद तुरंत ही उन्होंने अपने हाथ जोड़े और बिना किसीकी मददके वे उठ बैठीं। फिर अपना सिर झुकाकर जितने उच्च स्वरसे वे बोल सकती थीं, उतने उच्च स्वरसे उन्होंने कुछ मिनट तक प्रार्थना की: 'हे ईश्वर, हे मेरे आधार, मैं तेरी दया चाहती हूँ।" ये हृदय-वेधक शब्द बार-बार उनके मुँहसे निकलते रहे। मैं अपने आँसू पोंछनेके लिए कमरेसे बाहर निकला और उसी समय आगाखान महलके ओसारेमें पेनिसिलिन आ पहुँचा। डॉक्टर इस दवाकी आज़माइश करना नहीं चाहते थे। त्रिदोष (निमोनिया) तो केवल एक पूरक वस्तु थी। मूत्र-पिण्डकी (गुर्दोंकी) काम करनेकी अंतिम अक्षमता पेनिसिलिनसे दूर नहीं की जा सकती थी। और अब तो इसका समय भी बीत चुका था। फिर भी निमोनियाकी इस चमत्कारिक दवाको देनेकी तैयारी की गई।

क़रीब पाँच बजे मैंने फिर बाके पास जानेकी हिम्मत की। इस बार वे तनिक मुसकराईं। यह वह मुसकान थी, जिसने ४३ वर्षों तक मेरे लाड़ लड़ाये थे। लेकिन साथ ही, वह मरनेवाली माताका अपने पुत्रको आश्वस्त करनेवाला विषादपूर्ण अंतिम हास्य भी था।

मेरी माँ मानवताकी प्रतिमूर्ति थीं। उन्होंने मेरे प्रति जो विशेष प्रेम दिखाया था, उसके लिए मैं उनके निकट परिचयमें आये हुए सब किसीसे उनकी ओरसे क्षमा माँगता हूँ। जिस माँने अन्य प्रकारसे ईश्वरकी सृष्टिको उज्ज्वल बनाया है, उस माँकी त्रुटियोंको वे अवश्य ही क्षमा कर देंगे।

लेकिन उस हास्यने पेनिसिलिन-विषयक मेरी दिलचस्पीको फिरसे जगा दिया और उसके बारेमें आगेकी कार्रवाई करनेके लिए डॉक्टरोंके साथ सलाह–मशविरा करना मुझे अपना फ़र्ज़ मालूम हुआ। डॉक्टर उसका प्रयोग करनेके लिए तैयार थे। लेकिन उन्होंने उसके सफल होनेकी कोई

आशा नहीं बँधवाई। जब गांधीजीको पता चला कि बाको तकलीफ़ पहुँचानेवाले इंजेक्शन देनेके विचारसे मैं सहमत हुआ हूँ, तो उन्होंने शामको बग़ीचेमें घूमने जानेका विचार छोड़ दिया और वे मुझसे इसकी चर्चा करनेके लिए आये: "तू कैसी ही चमत्कारिक औषधि क्यों न लाये, अब तू अपनी माँको चंगा नहीं कर सकेगा। तू आग्रह करेगा, तो मैं अपनी बात छोड़ दूँगा, लेकिन तेरा आग्रह बिलकुल ग़लत है। इन दो दिनोंमें उसने किसी भी तरहकी दवा या पानी लेनेसे इनकार किया है। अब तो वह ईश्वरके हाथमें है। तेरी इच्छा हो, तो तू उसमें दख़ल दे; लेकिन तू जो रास्ता लेना चाहता है, मेरी सलाह है कि उस रास्ते तू मत जा। और, याद रखना कि चार-चार या छह-छह घंटेसे इंजेक्शन दिलाकर तू अपनी मरती हुई माताको शारीरिक पीड़ा पहुँचानेका काम कर रहा है।" अब मेरे लिए दलीलकी गुंजाइश नहीं रह गई थी। डॉक्टरोंने भी छुटकारेकी साँस ली। अपने पिताजीके साथकी मेरी यह सबसे मीठी चख-चख ज्यों ही खतम हुई, त्यों ही संदेशा आया कि बा उन्हें बुला रही हैं। वे फ़ौरन ही वहाँ पहुँचे। और जो लोग बाको आराम पहुँचानेके लिए उन्हें अपना सहारा देकर उनके पास बैठे थे, उनकी जगह ख़ुद बैठ गये। उन्होंने बाको अपने कंधे पर टिका लिया और जितना आराम वे उन्हें पहुँचा सकते थे, पहुँचानेकी कोशिश की। दूसरोंकी तरह मैं भी बा पर निगाह रखता हुआ सामने खड़ा था। इतनेमें मैंने देखा कि बाके मुँह परकी छाया ज़्यादा घनी होती जा रही थी। लेकिन इसी समय वे बोलीं और ज़्यादा आराम पानेके लिए उन्होंने अपना हाथ इधरसे उधर बदला।

इतनेमें अचानक उनका अंत समय आ पहुँचा। अनेक आँखोंसे आँसू बहने लगे। गांधीजीने तो अपने आँसू रोक रखे। सब उनके आस-पास गोलाकारमें खड़े हो गये और आज तक उनके साथ जिन भजनोंको गाते आये थे, उन्हें गाने लगे। दो मिनटमें वे निश्चेष्ट हो गईं! जैसा कि हममेंसे एक भाईने मुझसे कहा था, बा मानों हमारे ब्यालू कर चुकनेकी राह ही देख रही थीं। नज़रबन्दोंकी छावनीमें छह बजे ब्यालू किया जाता है। सात बजकर पैंतीस मिनट पर बाने अपनी देह छोड़ी।

उनके फूलके साथ इलाहाबाद जाते हुए रास्तेमें मैं यह लिख रहा हूँ। सोमवारको त्रिवेणीमें वे प्रवाहित किये जायँगे। माँकी ये अस्थियाँ इतनी छोटी-छोटी हैं कि एक मुट्ठीमें समा जायँ। नज़रबन्दोंकी छावनीमें रहनेवालोंने शुक्रवारके दिन चिताकी भस्ममेंसे इन अस्थियोंको विधिपूर्वक चुना था। ये केलके पत्ते पर रक्खी गईं और इन पर फूल, सिंदूर और दूसरे सुगंधी द्रव्य चढ़ाये गये। बादमें पवित्र संस्कारकी विधि की गई और फिर इन्हें अन्तिम यात्राके लिए तैयार किया गया। इस तरह मैं अपनी माताके साथ यात्रा कर रहा हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि कलके बाद मैं फिर कभी उनके साथ यात्रा नहीं कर सकूँगा।

गांधीजीका यह स्पष्ट निर्णय था कि इन फूलोंको ठंडा करनेकी क्रिया दो महान् नदियोंके संगम-स्थान पर की जाय। उन्होंने मुझसे कहा: "करोड़ों हिन्दू जो धार्मिक विधि करते हैं, वह तेरी माताको भी प्रिय होगी।" इस निर्णयको तब और भी बल मिला, जब पूज्य मालवीयजीने भी अपने तार द्वारा ऐसा ही करनेकी अपनी इच्छा व्यक्त की। अधिकांश भस्म तो, जैसी कि उधर प्रथा है, पूनाके पास इन्द्रायणी नदीमें प्रवाहित कर दी गई थी। विज्ञानकी दृष्टिसे इस दूसरी चीज़के औचित्यके बारेमें मुझे शंका है। उसके विनियोगकी दूसरी किसी रीतिका मैं स्वागत करता, लेकिन दूसरा कोई उचित मार्ग सोचा नहीं गया था, इसलिए रूढ़िकी ही विजय हुई।

मुझे, और शुक्रवारको सूर्योदयसे पहले मेरे साथ नदी पर आनेवाले एक छोटे-से जन-समूहको, यह क्रिया ऊपर उठानेवाली थी।

अग्निसंस्कारके बाद दूसरे दिन इकट्ठी की गई भस्मका थोड़ा हिस्सा नज़रबन्दोंकी छावनीमें सँभालकर रखा गया है। उसमें चिताके साथ जलने पर भी अखंडित रही हुई और बादमें मिली हुई पाँच चूड़ियाँ भी शामिल हैं।

मेरी माताजीकी बीमारी नज़रबन्दोंकी छावनीमें सितम्बर, १९४२से शुरू हुई थी। उसी समय पहली बार हृदय-रोगके चिह्न प्रकट हुए थे। यद्यपि पिछले चार-पाँच सालसे उनकी तबियत खराब रहने लगी थी, तो भी इससे पहले हृदय-रोगका आक्रमण कभी नहीं हुआ था। यह कहनेमें

ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं हो रही, कि कारावासके कष्ट सहनेकी शारीरिक या मानसिक ताक़त उनमें नहीं रह गई थी। इससे पहले वे कई बार जेल जा चुकी थीं। विशेषतः राजकोट राज्यके एक ऐसे गाँवमें, जो राज्यके अंदरके हिस्सेमें है, उनको एकांत क़ैदकी भी सज़ा दी गई थी, और तब एक बार तो वे मरते-मरते बची थीं। लेकिन यह अंतिम कारावास तो शुरूसे आख़िर तक उनके लिए सबसे कठिन कसौटी बन गया था। और वहाँ रहते हुए उनकी आत्मा और देह दोनों मुरझाने लगी थीं। महलका और महलके आस-पासका वातावरण उस वातावरणसे बिलकुल ही उलटा था, जिसकी वे आदी थीं। कँटीले तारोंके अहातेने और चौकी-पहरेने इस चीज़को और भी असह्य बना दिया। पिछले साल उन्होंने मुझसे सेवाग्रामके जिन घरोंका नीचे छप्परोंवाली झोंपड़ीके रूपमें वर्णन किया था, उनमें वापस जानेके लिए वे तरसा करती थीं। सर्व-साधारणके सामने आज इस बातको प्रकट करके मैं अपनी प्रिय माताकी स्मृतिको कोई हानि पहुँचा रहा हूँ, ऐसा मुझे नहीं लगता। अपनी बे-मियाद नज़रबन्दीका तो उन पर इससे भी ज्यादा असर हुआ और वहाँ उनको मिलनेवाले सभी शारीरिक सुख उनके मन या उनकी आत्माको शांति न दे सके। उनकी तरह दूसरे भी हज़ारों लोग — जिनमेंसे कईके साथ उनका निकट परिचय था — नज़रबन्दीके ऐसे ही कष्ट उठा रहे थे, इस हक़ीक़तने उनके दुःखको अधिक तीव्र बना दिया, और पिछले डेढ़ सालसे तो वे हमेशा मन-ही-मन यह प्रार्थना किया करती थीं कि उन्हें और बापूजीको हमेशाके लिए नज़रबन्द रखकर और सबोंको छोड़ दिया जाय।

जिस समय उनकी बीमारीने गंभीर स्वरूप धारण किया, उस समय यदि उन्हें क़ैदसे छोड़ दिया जाता, तो क्या वह हितकारक होता? छोड़नेके साथ ही, वे चाहें तब फिर जेलमें वापस आ सकनेकी आज़ादी भी उन्हें दी जाती, तो उससे उन्हें ज़रूर फ़ायदा होता। यदि ऐसा किया जाता, तो वह एक संपूर्ण उदारताका काम होता। लेकिन हक़ीक़त तो यह है कि अपने सरजनहारकी तरफ़से किये गये अन्तिम करुणापूर्ण प्रस्तावके सिवा मुक्तिके दूसरे किसी भी प्रस्तावका उन्हें इतना भी लाभ नहीं

मिला कि जिससे उनके मनको समाधान होता। इसलिए जब मैंने भारत-सरकारके अमेरिका-स्थित एजेण्टका यह वक्तव्य पढ़ा कि भारत सरकारने तो उन्हें कई बार छोड़ना चाहा था, लेकिन उन्होंने इस 'ऑफर'से लाभ उठाना स्वीकार नहीं किया, तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और आघात पहुँचा। इस विषयमें हिन्दुस्तानमें सरकारकी ओरसे जो घोषणायें अधिकृतरूपसे निकली हैं, उनसे भी यह भिन्न है। और अमेरिकामें यह चीज़ अलग ढंगसे क्यों पेश की गई, इसका कोई खुलासा अभी तक मेरे देखनेमें नहीं आया।

जिन्होंने हमें आश्वासनके सन्देशे भेजे हैं, और जो मूकभावसे हमारे शोकमें शामिल हुए हैं, उन सबका मैं अपने तीनों भाइयों और दूसरे रिश्तेदारोंकी ओरसे हार्दिक आभार मानता हूँ। इस वियोग-दुःखमें जो करोड़ों स्वजन हमारे ही समान दुःखी बने हैं, उनको छोड़कर हमारे दूसरे भाई-बहन नहीं हैं।

जिन्हें यह लगता हो कि इस सार्वजनिक वक्तव्य पर मैंने ज़रूरतसे ज्यादा समय बरबाद किया है, और अखबारोंकी भी ज़रूरतसे ज्यादा जगह रोकी है, उनसे मैं नम्रतापूर्वक क्षमा चाहता हूँ। यह अवसर सहिष्णुताके योग्य है। मैं इस भावनाको रोक नहीं सकता कि आश्वासन और समवेदनाके सन्देशों द्वारा और दूसरी तरह हमारे प्रति प्रकट की गई सहानुभूतिको सार्वजनिक रीतिसे साभार स्वीकार करनेमें मैं चूका होता, तो हमारे दुःखमें हिस्सा बँटानेवाले अपने करोड़ों देशबन्धुओंके उचित उलाहनेका मैं पात्र बनता।

गांधीजीने इस कसौटीको किस तरह पार किया, इस सम्बन्धमें मुझे दो शब्द कहने चाहियें। अपने जीवनकी यह करुण क्षति उनको खटकती है, क्योंकि उनके निर्माणमें बाका बड़ा हाथ था। किन्तु वे तत्त्वज्ञकी-सी शांति रक्खे हुए हैं, और जैसी कि हम उनसे अपेक्षा रखते हैं, वे अपनी भावनाको सचेत बनाये हुए हैं। उनके आसपासका वातावरण खिन्नताहीन उदासीका था, और जब शुक्रवारको मेरे भाई और मैं उनसे बिदा हुआ, तब आँसूके बदले उन्होंने अपनी हमेशाकी आदतके अनुसार विनोद ही किया। मैं मानता हूँ कि उनकी तबियत अच्छी है।

बा

बाके बारेमें कुछ कहना या लिखना बहुत कठिन है। वे मानव-हृदय और मानव-चित्तकी शुचिता और सरलताकी प्रतीक-सी थीं। जिस व्यक्तिको ख़ुद ही पता न हो कि वह किस भूमिका पर विचर रहा है, उसका वर्णन करनेमें वाणी असमर्थ है। बा तो बा ही थीं। बिलकुल सीधी-सादी, लेकिन धीर और वीर। दूसरेका दोष तो उनके मनमें कभी स्थान पाता ही न था। आश्रममें या बाहर किसीने कुछ बुरा किया हो, और उसकी चर्चा चले, तो बा बोल उठती थीं: "लेकिन उसने ऐसा किया क्यों?"

बाके बारेमें बहुतोंका यह ख़याल है कि वे नरम स्वभावकी ग़रीब हिन्दू पत्नी थीं — अपने पतिकी छाया-मात्र! किन्तु यह बात ज़रा भी सच नहीं। बाका भी बापूके समान ही स्वतंत्र व्यक्तित्व था। सिर्फ़ बुद्धिसे ही नहीं, बल्कि आन्तरिक प्रेरणासे भी वे सचाईको पहचान लेतीं, और स्वतंत्र रीतिसे अपने निर्णय करती थीं। अपने बल पर ही वे अपनी उच्च कक्षाको पहुँची थीं। बापू स्वयं इतने महान् हैं और स्त्रीत्वके भी इतने बड़े पुजारी हैं, कि वे किसीको भी ज़बरदस्ती अपने साथ घसीटेंगे नहीं। सैकड़ों बरसोंकी रूढ़ परम्पराओंको छोड़ते हुए बाको सहज ही कठिनाई तो मालूम हुई होगी। साबरमती आश्रममें अस्पृश्यताके महान् कलंकके बारेमें बाको समझानेमें बापूको भी वक़्त लग गया था। लेकिन एक बार बाको यक़ीन हो गया और वे समझ गईं, उसके बाद तो हरिजन उनके लाड़ले बन गये।

अपनी मृत्युसे दो साल पहले सेवाग्रामकी अपनी झोंपड़ीके पश्चिमवाले चबूतरे पर बैठी हुई बाका चित्र मेरी आँखोंके सामने खड़ा हो जाता है। देशके कोने-कोनेसे बापूको मिलने आनेवालोंको बापूकी कुटिया तक जानेके लिए इस चबूतरेके सामनेसे गुज़रना पड़ता था। उनमेंसे कई बाको भी प्रणाम करने जाते, और उनके हँसते हुए चेहरेके दर्शनोंका आनन्द लूटते। बा सबसे प्रेम और ममताके दो मीठे शब्द कहे बिना न रहतीं। उनके उस शान्त और मधुर दर्शनको कोई भी नहीं भूल सकता। मैं तो बाकी आवाज़को कभी भूल ही नहीं सकती। उस आवाज़में एक विलक्षण मार्दव

था — पक्षीके मधुर कूजन-सा कुछ था। बा जब किसी पर चिढ़तीं या नाराज़ होती थीं, तब भी उनके स्वरकी मृदुता नष्ट नहीं होती थी। कांग्रेसकी कार्यकारिणी समितिके सदस्य गांधीजीके साथ घंटों चर्चा करके कितने ही क्यों न थक गये हों, फिर भी उस चबूतरे पर बासे मिले बिना वे कभी जाते न थे। बासे मिलनेका हरएकका ढंग जुदा होता था। वल्लभभाई तो नन्हें, नटखट 'कहाना'को ही चिढ़ाते और उसके साथ 'धूमा मस्ती' करने लगते। कहाना भी वल्लभभाईको चपलता-भरे जवाब देकर हँसाता। मौलाना साहब तो गंभीर भावसे बाके पास आकर बैठते और उनकी तबियतके समाचार पूछकर व सलाम करके चले जाते। जवाहरलाल जब मौजमें होते, तो कोई क्रान्तिकारी बात कहकर बाको चिढ़ानेकी कोशिश करते। वे सोचते कि बा गुस्सा होकर विरोध करेंगी। लेकिन बा तो अपनी मीठी हँसी हँसकर धीमेसे कहतीं: "नहीं, तुम्हारी बात ठीक नहीं है। तुम कुछ भूले हो।" अगर जवाहरलाल थके होते, तो बाको दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करते, और कुशल-समाचार पूछकर चले जाते। लेकिन बाको यह अच्छा न लगता। उस दिन वे बापू पर सवालोंकी झड़ी लगा देतीं: "आज जवाहर उदास क्यों दीखता था? आपने उसे कुछ कहा तो नहीं?" बापू हँसकर जवाब देते: "तू भी जवाहरकी तरह मौजी तो नहीं बन गई है? आज तो हमारे बीच कोई मतभेद ही नहीं हुआ!" राजेन्द्रबाबूके साथ तो कभी कोई चकमक होती ही नहीं थी। शायद इसलिए कि दोनोंके स्वभाव एक ही-से थे। दोनोंके दिलमें कड़ुवाहट नामकी तो कोई चीज़ थी ही नहीं। और, विलक्षण व्यक्तित्ववाले वे महान् पठान खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां! उनके दिलमें तो युद्ध और हिंसाके प्रति गांधीजीके समान ही तीव्र अरुचि है। वे तो बाके पास ही जाकर बैठते और पश्चिमके अस्त होते हुए प्रकाशको देखा करते। कार्यकारिणीके दूसरे सब सदस्य शामको वर्धा जाते, लेकिन खान साहब तो सेवाग्रामहीमें रहते।

बाको और सरोजिनी देवीको देखकर ही हमें इस बातका अन्दाज़ हो सकता है कि नारीत्वमें कितना गौरव और कितना वैभव रहा है: कितनी विविधता, कितनी तेजस्विता और कितना सनातन यौवन! अपने

माने हुए आदर्शोंके लिए, दिलमें लेशमात्र भी कड़ुवाहट न रखते हुए, कष्ट सहनेकी कितनी तैयारी, कितना धैर्य, कितनी अटल श्रद्धा और कितनी शक्ति! इन दो स्त्रियोंको देखनेसे क्या हमें इस बातका दिव्य दर्शन नहीं होता कि हमारी भारतभूमि नारियोंकी भूमि है। ये नारियाँ ही मानवप्रेम और मानवसेवाके गांधीजीके महान् आदर्श पर डटी रहेंगी और बाज़ारोंकी, फ़ौजोंकी और हुकूमतकी होड़में कभी शामिल नहीं होंगी।

बापूकी भाँति दूसरे भी कई होंगे, जो बाकी शान्त हुई आवाज़को सुननेके लिए तरसते होंगे। लेकिन इस शोकके पीछे एक अमर आशा यह रही है कि बा-जैसे व्यक्ति कभी मरते ही नहीं। अमरताके सच्चे उत्तराधिकारी (वारिस) वे ही हैं।

क्या कभी यह संभव था कि हिन्दुस्तानको छोड़कर दूसरे किसी देशमें बाका और बापूका जन्म होता? मुझे तो इस सवालका जवाब साफ़ 'ना' में मिलता है। मैं मानती हूँ कि इस देशमें उनको जितना प्रेम और पूजा मिली है, उतनी दूसरे किसी देशमें न मिलती। इस विचारसे हमें आश्वासन मिलता है। हमारी जो प्राचीन संस्कृति पुराणोंके कालसे चली आ रही है, मानवके रूपमें बा और बापू उसके अवतार-समान हैं। हो सकता है कि आज हमारी उस संस्कृति पर विकृतिकी कुछ लकीरें खिच गई हों। फिर भी मूलतः हमारी संस्कृति शान्ति और ज्योतिकी संस्कृति है। वह मनुष्यको ईश्वरका ही अंश मानती है। दूसरी कोई संस्कृति मनुष्यके सामने इतनी शक्ति और इतनी स्वतंत्रताकी आशा उपस्थित नहीं करती। यद्यपि आजकी दुनियाकी करतूतोंको देखते हुए तो शक्तिका अर्थ भी बहुत-कुछ बदल जाता है। आज तो जो अपने विरोधियोंको ज़्यादा-से-ज़्यादा नुकसान पहुँचा सकते हैं, वे अपनेको अधिक-से-अधिक शक्तिशाली समझते हैं। लेकिन शक्तिके संबंधमें गांधीजीकी और हमारे देशकी व्याख्या इससे बिलकुल भिन्न है: दिलमें किसी तरहका द्वेष न रखकर जो अधिक-से-अधिक कष्ट सहनेके लिए तैयार होता है, शक्ति उसके चरणोंमें आकर बैठती है। भौतिक सत्ता प्राप्त करनेके लिए महान् युद्ध शुरू करके आज दुनिया अपनी विरासतमें आग और अंगारे ही छोड़े जा रही है, यह कितना करुण और कितना मूर्खता-

पूर्ण हैं! दुनियाके विचारशील लोगोंके दिलमें तो तनिक भी शंका नहीं है कि जो लोग आज मदसे चूर हैं, उनको पीछे हटना ही पड़ेगा, और आधुनिक जगत्का पुरुषोत्तम अपनी जिस शान्ति-वीणाको पत्थरकी दीवारोंके पीछे बैठा बजा रहा है, उसे सारी दुनियाको सुनना ही होगा। इस मदोन्मत्त दुनियाके सामने खड़े होकर यह कहना कि "तुम सब ग़लती पर हो, और अकेला मैं ही सचाई पर हूँ; संभव है, कि तुम्हारा हृदय-परिवर्तन होने तक मैं ज़िन्दा न रहूँ, तो भी आनेवाला समय और आनेवाली पीढ़ियाँ मेरे इन वचनोंकी साक्षी देंगी," किसी साधारण हिम्मतवाले आदमीका काम नहीं! हमारी बा ऐसे एक पुरुषकी जीवन-संगिनी थीं। वे सारे जीवन-भर उनके साथ रही हैं। आज बापूकी विरह-वेदनाका अंदाज़ कौन लगा सकता है? किसीको उसका पता भी नहीं चलेगा, क्योंकि बापू तो अपने जीवनको गहन वेदनाओंको मौन रहकर ईश्वरके सान्निध्यमें ही भोगते हैं।

बहुत साल पहले जब बापूने अस्पृश्यताके कलंकके विरुद्ध युद्ध छेड़ा था, तब बाके विचारोंको बदलनेमें उनको बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा था। अथाह धैर्यके साथ बापू बाको समझाते रहते। रोज़ घंटों चर्चा करते। एक दिन तो हरिजनोंको रसोईघरमें दाखिल करके रसोई बनाने देनेके लिए बाको समझाते-समझाते वे थक गये और बोले: "बाको यह चीज़ समझाना बहुत मुश्किल है।" लेकिन इन शब्दोंके उच्चारणके साथ ही वे बहुत गंभीर हो गये और फिर दूरकी कोई बात सोच रहे हों, इस तरह कहने लगे: "इतने पर भी यदि मुझे जन्मजन्मान्तरके लिए अपना साथी पसन्द करना हो, तो मैं बाको ही पसन्द करूँगा।" बापूके इन शब्दोंसे बढ़कर और कौनसे शब्द होंगे, जिनसे बाके सच्चे स्वरूपका वर्णन किया जा सके?

भाषा द्वारा हम बाका विचार कर ही नहीं सकते। इसके लिए तो उनकी मूर्तिको, उनके चित्रको, आँखोंके सामने खड़ा करना चाहिये। उनकी चाल, उनका घूमना-फिरना, उनकी कोमल आवाज़ और इन सबसे बढ़कर उनकी मीठी, निर्मल मुसकान हमें उस महान् विभूतिकी शुचिता और वीरताका सच्चा दर्शन कराती है। यों देखें, तो बा बहुत उग्र नहीं थीं। दक्षिण अफ्रीकामें और यहाँ आज़ादीकी लड़ाईमें वे कई

बार जेल गई थीं। लेकिन उन्होंने यह कभी नहीं दिखाया कि जेल जाकर वे कोई असाधारण काम कर आई हैं। देशके लिए उन्होंने जो बड़े-बड़े बलिदान किये, स्वेच्छापूर्वक ग़रीबीको अपनाया, अपने सर्वस्वको छोड़ा, अपने प्रिय पतिके सहवास तकका त्याग किया, सो सब उन्होंने अपने सहज भावसे और निरभिमान वृत्तिसे ही किया।

पिछली बार जब बा जेल गईं, मैं वहीं थी। पुलिस अफ़सरके आने पर वे उतनी ही मिठाससे अपना सामान बाँधनेमें लग गईं। पहले दिन ऐलान किया था कि ९ अगस्तको शिवाजी पार्कमें सभा होगी, और बापू उसमें भाषण करेंगे। बापूकी गिरफ्तारीके बाद बाने उस सभामें जाने और बापूका संदेश सुनानेका निश्चय किया था। उस दिन बाकी गिरफ्तारी एक बहुत अजीब ढंगसे हुई। पुलिसका एक बड़ा क़दावर अफ़सर, जो अलबत्ता हिन्दुस्तानी था, बाके सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहा और ज़रा झुककर बासे पूछने लगा: "आप घर ही रहेंगी या सभामें जायँगी? आपका क्या हुक्म है?" उसे भी अटपटा तो लगा होगा कि उसके जैसा अल्पात्मा शरीरसे इतना मोटा-ताज़ा है और बाके जैसी महान् आत्मा इतने नन्हे और नाज़ुक शरीरवाली है! बाने तो अपनी उसी मीठी मुसकानके साथ फ़ौरन जवाब दिया: "मैं सभामें तो जाऊँगी ही।" अफ़सर बेचारा सोचमें पड़ गया। आखिर बोला: "तो आप इस मोटरमें बैठेंगी? मैं आपको बापूके पास ले जाऊँगा।" इस तरह बाकी गिरफ्तारी हुई। आश्रमके एक छोटे लड़केको इच्छा हुई कि वह बाकी साड़ी पर 'करेंगे या मरेंगे'का एक बिल्ला लगा दे! वह लगाने गया। बाने हलकेसे उसे हटा दिया और कहा: "मुझे यह नहीं फबता।" यह थी बाकी अंतिम यात्रा। वहाँसे वे वापस न आईं। उन्होंने तो उक्त सूत्रका पालन बिना किसी आडम्बरके कर दिखाया। मैंने सुना है कि आग़ाखान महलके उस मनहूस वातावरणमें उनको अच्छा नहीं लगता था। आश्रमकी सादी किन्तु साफ़ कुटियामें रहनेका उन्हें अभ्यास हो गया था। महलका वह फर्नीचर, जिसके अन्दर ढेरों धूल भरी रहती थी, उन्हें बिलकुल न रुचता था। वहाँका वातावरण तो प्रतिकूल था ही। तिस पर वहाँ कुछ ही दिनों बाद महादेवभाईकी मृत्यु हो गई!

बापूके पिछले उपवासके दिनोंमें मैंने बाको आखिरी बार देखा था। १९४३की १७वीं फरवरीका वह दिन था। वह पहला दिन था, जब बापूकी तबियत ना.जुक हो गई थी। रविवार ता० २१ फरवरीके दिन बापूकी तबियत बहुत ही ना.जुक हो उठी। उस दिन बाके चेहरे पर विषादकी हृदय-विदारक घटा छाई हुई थी। वे सारे देशके — ग़रीब-अमीर सबके — हृदयमें व्याप्त दुःखकी प्रतिमूर्ति-सी लगती थीं। ऐसा प्रतीत होता था, मानो समूचे देशकी ओरसे बा विनय कर रही हों, कि "नहीं, नहीं, भगवन्! इतनी बड़ी कुर्बानी नहीं हो सकती। इस अँधेरे और भयावने बियाबानमेंसे हमारे देशको प्रकाश और शन्तिके मार्ग पर ले जानेके लिए इस नेताको बचा!" बापू तो शान्त थे और कहते थे: "कोई घबराओ नहीं। इस पार या उस पार सब एक ही है। मैं तैयार हूँ।" इस परित्याग और ऐसी ईश्वर-श्रद्धाके सामने शोकका कोई स्थान ही नहीं हो सकता। किन्तु अपनी वीरतापूर्ण मुसकानके पीछे बा जिस दुःखको छिपाये हुए थीं, वह तो असह्य ही था। आग़ाखान महलके सामने बैठाई गई दो-दो चौकियोंको पार करके बाहर निकलते समय मैं और मेरे साथी तो रो ही पड़े। शायद बापू न रहेंगे, इसके दुःखकी अपेक्षा यह विचार अधिक दुःखदायी था कि बाका क्या होगा? इस अन्तिम चित्रको भूलनेकी मैं बहुत कोशिश करती हूँ। राष्ट्रीय तूफ़ानके कुछ दिन पहले मैं सेवाग्राम गई थी। उस समयकी बाके उस चित्रको अपने मनमें अंकित कर रखना मुझे बहुत अच्छा लगता है। प्रार्थनाके चौकसे लगे अपनी कुटियाके चबूतरे पर बा बैठी हैं, उनके आसपास बहनोंका दरबार जुड़ा है और बा अपने विलक्षण व अनुपम ढंगसे सबके साथ बात कर रही हैं। उस समयकी बाकी मुसकानसे मिलनेवाला प्रकाश जितना अद्‌भुत था, उतना ही अद्‌भुत था कइयोंके लिए काम कर-करके थकी हुई बाका दोनों हाथ जोड़कर सबका स्वागत करना या सबको बिदा देना! अब तो वे अमर और विभूतिमय भारतीय नारी-मण्डलके बीच सीता और सावित्रीके बराबर जा बैठी हैं। हज़ारों वर्षों तक वे भारतवासियोंके लिए आश्वासन और धैर्यका धाम बनी रहेंगी!

गांधीजीनां गुजराती पुस्तको

आत्मकथा	२—०—०
,, हाथ. कागळमां	३—०—०
अनासक्तियोग	०—४—०
आश्रमवासी प्रत्ये	०—२—०
एक सत्यवीरनी कथा	०—२—०
अहिंसा	
केळवणीनो कोयडो	
खरी केळवणी	
गीताबोध	०—३—०
गीतापदार्थकोष	०—४—०
गो सेवा	
गामडानी वहारे	०—२—०
गांधीजीनो सरकार साथेनो पत्रव्यवहार	२—८—०
त्यागमूर्ति	१—०—०
दक्षिणआफ्रिकानो इतिहास	
देशीराज्योनो प्रश्न	१—८—०
धर्ममंथन	१—८—०
नीतिनाशने मार्गे	०—८—०
मंगळप्रभात	०—३—०
येरवडाना अनुभव	
राष्ट्रभाषा विषे विचार	०—१२—०
व्यापक धर्मभावना.	२—०—०
वर्णव्यवस्था	०—१२—०
हिंद स्वराज	०—४—०
सो टका स्वदेशी	१—४—०
सर्वोदय	०—३—०

हमारे अन्य हिंदी प्रकाशन

एक धर्मयुद्ध	०—८
गांधीजी	०—६
गोरक्षा कल्पतरु	
निर्भयता	०—२
मरुकुंज	१—४
सयानी कन्यासे	०—८
हिन्दुस्तानी कहानियाँ — १ (नागरी)	०—६
हिन्दुस्तानी कहानियाँ — १ (उर्दू)	०—६
हिन्दुस्तानी पाठावलि पहली किताब (नागरी)	०—७
हिन्दुस्तानी पाठावलि पहली किताब (उर्दू)	०—१२
हिन्दुस्तानी बालपोथी	०—१२
,, बाल-कहानियाँ	०—६
उर्दू लिपि शिक्षिका	०—१२